संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला का ९४वाँ पुष्प

अध्यापक शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ

सम्पादक

प्रो. भास्कर मिश्र

कुलपति (प्रभारी) एवं संकायाध्यक्ष

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

(मानित विश्वविद्यालय)

नई दिल्ली - 110016

संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला का 94वाँ पुष्प

अध्यापक शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ

शिक्षा शास्त्र विभाग द्वारा आयोजित

संगोष्ठी कार्यवृत्त

(Seminar Proceedings)

28 फरवरी से 1 मार्च 2013

सम्पादक

प्रो. भास्कर मिश्र

कुलपति (प्रभारी) एवं संकायाध्यक्ष

सह-सम्पादक

प्रो. नागेन्द्र झा

प्रो. रमेश प्रसाद पाठक

डॉ. रचना वर्मा मोहन

डॉ. अमिता पाण्डेय भारद्वाज

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

(मानित विश्वविद्यालय)

नई दिल्ली - 110016

प्रकाशकः
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानित-विश्वविद्यालयः)
कुतुब सांस्थानिकक्षेत्रम्
नवदेहली-११००१६

आई.एस.बी.एन : 81-87987-67-7

प्रकाशन वर्ष - 2014

मूल्यम् : ₹ 280/-

मुद्रकः
अमरप्रिंटिंगप्रैसः
8/25 विजयनगरम्, देहली-११०००९
दूरभाषः : 9871699565, 8802451208

सम्पादकीय

किसी भी राष्ट्र या समाज के लिए शिक्षा एक ऐसा प्रकाशपुञ्ज है जो उसके अतीत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों को प्रकाशित करता है। वर्तमान भारत की यह अनिवार्य आवश्यकता है कि भारतीय वाङ्मय, दर्शन एवं चिन्तन परम्परा की अटल गहराईयों से शैक्षिक सिद्धान्तों तथा उनके व्यावहारिक आयामों को शोध कार्यों द्वारा अन्वेषित, उद्घाटित, प्रकाशित एवं कार्यान्वित किया जाये। शिक्षा मानव निर्माण तथा सर्जन की प्रक्रिया है। मनुष्य के पाशविक स्वरूप को मनुष्यत्व से देवत्व की ओर रूपान्तरित करने वाली है। साथ ही शिक्षा की उदीयमान प्रवृत्तियों से सामञ्जस्य बनाने हेतु, अध्यापकों में समझदारी, भागीदारी, जिम्मेदारी तथा ईमानदारी को अनिवार्य बनाने की संकल्पना आवश्यक है।

शिक्षण अधिगम में तकनीकी का प्रयोग शिक्षण को रुचिकर बनाता है। मल्टी मीडिया आधारित अधिगम की नितान्त आवश्यकता है। इसके द्वारा कठिन सम्प्रत्ययों को विभिन्न सोपानों में प्रस्तुत किया जा सकता है। अध्यापक शिक्षा की उदीयमान प्रवृत्तियों में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन का भी विशेष स्थान है। मूल्यांकन के माध्यम से सम्प्रेषित सूचनाओं, कौशलों तथा उनके अनुप्रयोग की क्षमता का आकलन होता है। निदानात्मक परीक्षा, उपचारात्मक शिक्षण आदि पर विशेष बल होना चाहिए। विद्यार्थियों की शैक्षिक व सहशैक्षिक उपलब्धियों का मूल्यांकन आवश्यक है, जिससे सभी पक्षों की उपलब्धियों को जाना जा सके।

साथ ही शैक्षिक अनुसन्धान अध्यापक शिक्षा के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अनुसन्धान जीवन ज्ञान को ही प्रकाश में नहीं लाता बल्कि पहले की भ्रान्त धारणाओं में सुधार करता है। इसके द्वारा प्राप्त ज्ञान विवेकपूर्ण समझ व अनुभव पर आधारित होता है

जिसका सत्यापन सम्भव है। शिक्षा अनुसन्धान का क्षेत्र बहुत व्यापक है। शिक्षा के सैद्धान्तिक पक्ष के साथ-2 उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में महान् व्यक्तियों के विचारों व तथ्यों की विवेकपूर्ण समझ तथा व्याख्या तथा शैक्षिक प्रशासन व संगठन शैक्षिक अनुसन्धान की विषय वस्तु हो सकते हैं।

अध्यापक शिक्षा में उत्तरदायित्व को विशेष महत्व देते हुए आधुनिक तथा परम्परागत धारा में निहित शैक्षिक तत्त्वों के एकीकरण पर बल देना चाहिए क्योंकि वर्तमान सन्दर्भ में श्रद्धावान व निष्ठवान अध्यापक बनाने की नितान्त आवश्यकता है। उदारीकरण भूमण्डलीकरण के इस दौर में मूल्यों व संस्कृतियों के परिवर्तन हो रहे हैं अतः शिक्षा का यह दायित्व और गुरुतर हो जाता है कि अध्यापक शिक्षा की उदीयमान प्रवृत्तियों के साथ सांस्कृतिक मूल्यों तथा परम्पराओं को साथ लेकर चले तभी निश्चित रूप से शैक्षिक प्रगति होगी तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को समुन्नत बनाया जा सकेगा। इन्हीं विचार-बिन्दुओं को आधार बना कर "अध्यापक शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ" विषय पर शिक्षाशास्त्र विभाग द्वारा संगोष्ठी का आयोजन किया गया है। निःसन्देह इस वैचारिक मन्थन से प्राप्त निष्कर्ष अध्यापक शिक्षा से जुड़ी सभी उदीयमान प्रवृत्तियों यथा गुणात्मक शोध, पाठ्यक्रय, भाषा शिक्षण में नवाचारिक प्रयोग, मूल्यांकन, शान्ति शिक्षा, आपदा प्रबन्धन आदि के पुनर्रीक्षण में हमें उचित दिशानिर्देश प्रदान करेंगे जिससे इन्हें और अधिक अर्थ पूर्ण बनाया जा सकेगा।

मैं सभी लेखकों को भी धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने अपने सारगार्भित लेखों को प्रस्तुत कर इस संगोष्ठी को सफल बनाया।

श्रावणी पूर्णिमा
10 अगस्त, 2014

प्रो. भास्कर मिश्र
कुलपति (प्रभारी) एवं संकायाध्यक्ष
आधुनिक ज्ञान विज्ञान संकाय
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

प्रतिवेदन

अध्यापक शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ

शिक्षाशास्त्र विभाग द्वारा आयोजित द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी– अध्यापक शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ नामक विषय पर छह सत्रों में सम्पन्न हुई। अतिथियों का स्वागत शिक्षा विभागाध्यक्ष **प्रो. भास्कर मिश्र** ने किया। अपने स्वागत भाषण में उन्होंने इस संगोष्ठी के उद्देश्य व प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला तथा विद्यापीठ की सांस्कृतिक परम्परा एवं वैभव को बताते हुए अध्यापक शिक्षा की उदीयमान प्रवृत्तियों पर भी अपने विचार व्यक्त किये। उद्घाटन सत्र के **मुख्य अतिथि प्रो. के. पी. पाण्डेय जी** (पूर्व कुलपति, मा.गा.का. विद्यापीठ, वाराणसी) तथा **सारस्वत अतिथि प्रो. शरदेन्दु जी** (पूर्व अध्यक्ष, एन.सी.टी.ई., नई दिल्ली) तथा **अध्यक्ष प्रो. भवेन्द्र झा** (कुलपति, श्री ला.ब.शा.रा.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली) थे। मुख्य अतिथि **प्रो. के.पी. पाण्डेय जी** ने अपने सम्बोधन में कहा कि शिक्षा मानव निर्माण और सर्जन की प्रक्रिया है जो अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। मनुष्य का वास्तविक स्वरूप पाशविक प्रवृत्तियों से युक्त होता है जिसे शिक्षा आच्छादन द्वारा मनुष्यत्व और इसी क्रम में देवत्व की ओर रूपान्तरित करती है। शिक्षा के इस बदलते हुए वैश्विक परिप्रेक्ष्य में ऐसे अध्यापकों की आवश्यकता है जो ज्ञानवान के साथ–साथ क्रियायोगी हों जिसके आधार स्तम्भ महर्षि पातंज्जलि के योगसूत्र 'ईश्वरप्राणिधानः' में वर्णित तप, स्वाध्याय, एवं ईश्वर प्राणिधान के रूप में रेखांकित किये। इसके साथ–साथ आज अध्यापक शिक्षा में समझदारी, भागीदारी, जिम्मेदारी और ईमानदारी को अंगीभूत करने की परम आवश्यकता पर प्रकाश डाला। सारस्वत अतिथि के रूप में **प्रो. शरदेन्दु** ने अपने वक्तव्य में जीवन पर्यन्त अधिगम तथा ज्ञान आधारित समाज पर विवेचना करते हुए संविधान में वर्णित शिक्षा

अधिकार 2009 मौलिक अधिकार, शान्तिशिक्षा, सूचना प्रौद्योगिकी, क्रियात्मक शोध को अध्यापक शिक्षा में समाविष्ट करने की अपरिहार्य आवश्यकता बताई। सत्र के समापन पर सभी अतिथियों का धन्यवाद शिक्षा विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष **प्रो. नागेन्द्र झा** द्वारा ज्ञापित किया गया। सत्र का संचालन **प्रो. आर. पी. पाठक** ने किया।

तकनीकी सत्र - I, के मुख्य वक्ता **प्रो. श्रीधर वशिष्ठ जी** (पूर्व कुलपति, श्री ला.ब.शा.रा.सं.वि. नई दिल्ली) ने अध्यापक शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु नवीन प्रवृत्तियों एवं नवाचारों की आवश्यकता पर बल दिया। इस सत्र में विभाग की **डा. रचना वर्मा मोहन** ने अध्यापक शिक्षा के बदलते परिदृश्य में गुणात्मक शोध में उभरती प्रवृत्तियों पर अपने विचार प्रस्तुत किये। इस क्रम में विभाग से ही **डा. विमलेश शर्मा** ने शिक्षण विधियों की उदीयमान प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला। तद्पश्चात विभाग से ही **डा. एम. जयकृष्णन** ने भारतीय दार्शनिक प्रणाली में शिक्षणशास्त्र में ज्ञान-अभ्यांतर तथा बाह्ययांतर बिन्दुओं पर बल दिया। इस सत्र में शोध छात्र **नवल किशोर** तथा शिक्षाचार्य के **राघवेन्द्र, कपिल** एवं **दीपक** ने अपने पत्रकों में गुरूकुल शिक्षा प्रणाली की उपादेयता के सन्दर्भ में अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये। सत्र के अध्यक्षीय भाषण में **प्रो. के. पी. पाण्डेय जी** ने सभी प्रस्तुत पत्रकों के सार को बताते हुए गुरूकुल शिक्षा को एक आदर्श व्यवस्था माना जोकि एक मजबूत सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमि में प्रतिष्ठित थी। उन्होंने इन आदर्श गुणों को आत्मसात करके एक नयी कल्पना एवं संकल्पना के साथ पाठ्यक्रम के नये आयामों के गढ़ने पर प्रकाश डाला। इसके साथ-साथ शोध की अवधारणा के विकासक्रम की भी विवेचना की। इस सत्र के संचालक **डा. के. भारतभूषण** ने सत्र के अध्यक्ष एवं सभी प्रतिभागियों को धन्यवाद ज्ञापित किया।

तकनीकी सत्र-II, प्रो. श्रीधर वशिष्ठ जी की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ। मुख्य वक्ता के रूप में **प्रो. सुरक्षा पाल,** (पूर्व विभागाध्यक्ष, चौ. च. सिंह वि.वि., मेरठ) ने अपने वक्तव्य में शोध की नवीन प्रवृत्तियों में गुणात्मक शोध मुख्य रूप से मेटा विश्लेषण,

त्रिकोणीकरण उपागम व शोध, प्रवृत्ति विश्लेषण, नीति शोध, मूल्यांकन, व्याख्यात्मक शोध आदि पर विस्तारपूर्वक चर्चा की। विभाग से **डा. अमिता पाण्डेय भारद्वाज** ने अध्यापक शिक्षा के सन्दर्भ में पाठ्यक्रम विकास के स्वरूप एवं आधार के संरचनात्मक बिन्दुओं से सम्बन्धित आयामों पर प्रकाश डाला। तद्पश्चात **प्रशान्त, दीपा रानी, सरिता** (शोध छात्र), कर्मपाल (विशिष्टाचार्य) एवं राजवीर (शिक्षाचार्य) ने गुरूकुल पद्धति की प्रासंगिकता व भाषा शिक्षण में नवाचार से सम्बन्धित उपविषयों पर पत्रक प्रस्तुत किये। सत्र के अध्यक्ष **प्रो. श्रीधर वशिष्ठ** जी ने सभी प्रस्तुत पत्रकों पर अपने सारगर्भित विचार दिये। अन्त में इस सत्र की संयोजिका **डा. रजनी जोशी चौधरी** ने धन्यवाद ज्ञापित किया। चायपान के उपरान्त इसी तकनीकी सत्र - II की अध्यक्षता **प्रो. सुरक्षा पाल** ने की। मुख्य वक्ता के रूप में **डा. सुधाकर दत्त शर्मा** जी ने अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यो का निर्धारण देश, काल और परिस्थितियों के अनुरूप निर्धारित करने की आवश्यकता पर बल दिया और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा के परिवर्तित स्वरूप पर विचार प्रस्तुत किये। विभाग से **डा. सुरेन्द्र महतो** ने भाषा शिक्षण में नवीन प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला। तद्पश्चात् शोध छात्र **शिवदत्त, विपिन** और शिक्षाचार्य के **कन्हैया व सीमा, देशबन्धु** व **मनोज** (संयुक्त प्रस्तुति), सनत कुमार और ज्ञानेश्वर ने अपने पत्र प्रस्तुत किये। अध्यक्षीय भाषण में **प्रो. सुरक्षा पाल जी** ने सत्र में प्रस्तुत पत्रकों पर अपने विश्लेषणात्मक विचार व्यक्त किये। सत्र का संचालन **डा. मीनाक्षी मिश्र** ने किया।

दूसरे दिवस के प्रातः **तकनीकी सत्र-III** की संयोजिका **डा. अमिता पाण्डेय** भारद्वाज ने सभी विशेष अतिथियों तथा प्रतिभागियों का स्वागत एवं अध्यक्षता **प्रो. सुरक्षा पाल** की स्वीकृति द्वारा सत्र आरम्भ किया। इस सत्र की प्रथम प्रस्तुति विभाग के आचार्य **प्रो. आर.पी. पाठक** ने की। उन्होंने अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में दक्षता विकास, सम्प्रेषण विकास, आपदा प्रबन्धन प्रशिक्षण, शिक्षण सामग्री निर्माण, सूचना एवं सम्प्रेषण तकनॉलाजी आदि प्रवृत्तियों के व्यावहारिक अनुप्रयोग पर बल देने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। इसी क्रम में विभाग से

डा. रजनी जोशी चौधरी ने अध्यापक शिक्षा एवं जेन्डर अभिज्ञता पत्रक में जेन्डर शिक्षा व जेन्डर बजटिंग आदि सम्प्रत्ययों की अवधारणा को अध्यापक परिप्रेक्ष्य में विवेचित किया। इसके पश्चात् शोध छात्रा **सविता राय, शानू जैन** और शिक्षाचार्य के छात्र **भरणी प्रकाश** व **राकेश** व **विकास, आशा** व **प्रवीण** एवं **नविता** व **दयानिधि** ने संयुक्त प्रस्तुतियों के रूप में अपने पत्रक प्रस्तुत किये। इस सत्र के अध्यक्षीय भाषण में **प्रो. सुरक्षा पाल** ने सभी प्रस्तुत पत्रकों के विश्लेषित स्वरूपों को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत किया। अन्त में धन्यवाद ज्ञापन **डा. अमिता पाण्डेय भारद्वाज द्वारा** किया गया।

तकनीकी सत्र–IV सत्र की अध्यक्षता **प्रो. के.पी.पाण्डेय** जी ने की। मुख्य वक्ता **प्रो. आर. पी. श्रीवास्तव जी** (पूर्व विभागाध्यक्ष, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली) ने अपने वक्तव्य में अध्यापकों में समर्पण एवं अभिप्रेरणा के अभाव को चिन्तनीय विषय बताते हुए अध्यापक शिक्षा में मूल्य एवं नैतिक शिक्षा की अपरिहार्य आवश्यकता पर बल दिया जोकि हमारे जीवन के भौतिक, मानसिक, संवेगात्मक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों से जुड़ी है। अगले वक्ता **डा. के. भारतभूषण** ने भाषा शिक्षण अधुनातन प्रवृत्तियों मुख्यत: संगणक एवं मोबाइल आधारित शिक्षण की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। इस सत्र में शोध छात्र **कुमुदानन्द झा, हर्षवर्धन वशिष्ठ**, विशिष्टाचार्य की छात्रा मीनाक्षी और शिक्षाचार्य की छात्रा **सुमनलता व रूपम कुमारी, कल्पेश्वर बहुगुणा** एवं **हितेश नारायण मुद्गल** ने गुरूकुल शिक्षा की सार्थकता, शैक्षिक शोध की उपादेयता तथा भाषा शिक्षण में नवाचार आदि उपविषयों पर अपने शोध पत्र प्रस्तुत किये। अध्यक्ष **प्रो. के.पी. पाण्डेय जी** ने अन्त में इस तकनीकी सत्र में प्रस्तुत किये गये सभी शोध पत्रों के मुख्य बिन्दुओं पर आधारित सारगर्भित विचार प्रस्तुत किये। उनके अनुसार युगसर्जन के लिए एक व्यक्ति ही पर्याप्त है। शिक्षा केवल चार दीवारी में ही नहीं है हर जगह सम्भव है। अध्यापक को यह तय करना है कि वह आकाशधर्मी बने या शिलाधर्मी। इसके साथ-साथ सम्पूर्ण अध्यापक शिक्षा में स्वमूल्यांकन, स्वप्रबन्धन,

स्वपर्यवेक्षण की आधार भूमि पर सिंचित कर उसे सही दिशा, गति एवं व्यवस्थाओं को एक चमक प्रदान की जा सकती हैं। इस तकनीकी सत्र का संचालन **डा. रचना वर्मा मोहन** ने किया।

तकनीकी सत्र – V, की अध्यक्षता **प्रो. आर. एल. यादव जी** (पूर्व विभागाध्यक्ष) ने की। मुख्य वक्ता **प्रो. शशिप्रभा जैन** (पूर्व कुलपति, श्री. ला.ब.शा.रा.सं.वि., नई दिल्ली) ने अपने वक्तव्य में क्षमता आधारित अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में उदीयमान प्रवृत्तियों को समझने की आवश्यकता पर बल दिया। वर्तमान बदलते परिवेश में अध्यापक की क्षमता, प्रतिबद्धता और इच्छा शक्ति को मुख्य रूप से अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में समाविष्ट करने की अनिवार्यता पर बल दिया। इस क्रम में विभाग से **डा. मीनाक्षी मिश्रा** नें अध्यापक शिक्षा में निदानात्मक मूल्यांकन विषय पर अपना पत्र प्रस्तुत किया। तदोपरान्त इस सत्र में उपस्थित अन्य वक्ताओं में **जितेन्द्र कुमार** (सिम्स, गाजियाबाद), **अजय कुमार शर्मा** (मेवाड़ विश्वविद्यालय) विद्यापीठ के शोध छात्र **चेतन, श्याम बिहारी चौधरी, विकास, मायाराम** शिक्षाचार्य के छात्र **योगेश, देशबन्धु** एवं **प्रेमलता** ने अपने पत्रक प्रस्तुत किये। सभी पत्रों के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् सत्र के अध्यक्ष **प्रो. आर. एल. यादव जी** ने प्रस्तुत पत्रों के मुख्य बिन्दुओं को रेखांकित करते हुए अध्यापक शिक्षा में समग्र उपागम पर विशेष बल देने की आवश्यकता बताई। इस सत्र का संचालन **डा. विमलेश शर्मा** ने किया।

संगोष्ठी के **समापन सत्र** का आरम्भ वैदिक मंगलाचरण से हुआ। इसके बाद आमन्त्रित अतिथियों द्वारा दीप प्रज्ज्वलन और सरस्वती पूजन किया गया। अतिथियों का स्वागत विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष आचार्य **नागेन्द्र झा जी** के द्वारा किया गया। तद्पश्चात इस द्विदिवसीय संगोष्ठी में मुख्य वक्ताओं द्वारा प्रस्तुत विचारों व विभिन्न सत्रों के क्रियाकलापों को संगोष्ठी प्रतिवेदन के रूप में **डा. अमिता पाण्डेय भारद्वाज** ने प्रस्तुत किया। अपने समापन सम्बोधन में **प्रो. के.पी.पाण्डेय जी** ने कोलमैन रिपोर्ट (1964) का सन्दर्भ देते हुए बताया कि विद्यार्थियों की उपलब्धियों के अनेक कारक होते हैं जिनमें मुख्य रूप

से चार कारक चिन्हित किये हैं- विद्यालय शैक्षिणिक व्यवस्था, शिक्षक, पारिवारिक परिवेश एवं सामाजिक आर्थिक कारक। इनमें सबसे महत्वपूर्ण शिक्षण शिक्षक कारक को माना गया है। इसके लिए उन्होंने शिक्षक की जानकारी, सम्प्रेषण एवं प्रवीणता की क्षमताओं में विकास की आवश्यकता पर बल दिया। **सारस्वत अतिथि** के रूप में **प्रो. श्रीधर वसिष्ठ** ने अपने वक्तव्य में अध्यापक और शिष्य की वृहद परम्परा पर प्रकाश डाला। उन्होंने भारतीय समाज में शिक्षा की मर्यादा, विद्या और चिकित्सा क्षेत्र क़ो दान का क्षेत्र मानते हुए भारतीय चिंतन की व्यापकता पर विचार व्यक्त किये। **मुख्य अतिथि** के रूप में **प्रो. रामानुज देवनाथन जी** (कुलपति, रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर) ने अध्यापक शिक्षा में जबावदेही, एवं उत्तदायित्व पर बल दिया। उन्होंने संस्कृत वाङ्मय तथा आधुनिक धारा में निहित शैक्षिक तत्वों के सम्मिलित स्वरूप को स्वीकार करने और साथ ही साथ श्रद्धावान, निष्ठावान युक्त अध्यापक बनने के प्रयास की आवश्यकता पर बल दिया। संकाय अध्यक्ष **प्रो. भास्कर मिश्र** जी ने संगोष्ठी में आमन्त्रित सभी विद्वानों, कर्मचारियों, अतिथियों तथा विद्यार्थियों को धन्यवाद ज्ञापित किया। इस सत्र का संचालन **प्रो. नागेन्द्र झा** जी ने किया।

इस द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी मे वैचारिक मंथन से उद्दीप्त अध्यापक शिक्षा की उदीयमान प्रवृत्तियाँ अधोलिखित हैं-

• शिक्षण शास्त्र के क्षेत्र में आई.सी.टी समर्थित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सम्प्रेषण के उपकरणों के अनुप्रयोग एवं प्रशिक्षण पर बल।

• गुणात्मक शोध उपागम जैसे प्रवृत्ति विश्लेषण, नीतिगतशोध, मेटा विश्लेषण, व्याख्यात्मक शोध, त्रिकोणीकरण उपागम आदि पर बल।

• अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम को क्रिया व अनुभव उन्मुख बनाना।

• भाषा शिक्षण में नवाचारिक प्रयोग जैसे संगीत पद्धति, अधिगमकर्त्ता केन्द्रित-विधियाँ, भाषा सूत्रों का प्रयोग आदि,

• निकष एवं मानक संदर्भित परीक्षणो की निर्माण प्रक्रिया व अनुप्रयोग पर बल।

• व्यापक एवं सतत् मूल्यांक, संरचनात्मक एवं निदानात्मक मूल्यांकन के व्यावहारिक अनुप्रयोग पर बल।

• जेन्डर संवेदनशीलता, शान्ति शिक्षा, आपदा प्रबन्धन आदि प्रवृत्तियों का अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रमों से समन्वय।

उपरोक्त विचारणीय बिन्दु अध्यापक शिक्षा से जुड़े सभी पाठ्यक्रमों के पुनर्रीक्षण में हमें उचित दिशानिर्देश देंगे जिससे पाठ्यक्रमों को अर्थपूर्ण आकृति प्रदान की जा सकती है।

विषय सूची

संस्कृतम्

हिन्दी

English

भाषाध्यापने उदीयमान प्रवृत्तयः

डॉ. के. भारतभूषण
उपाचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

भाषा नाम भावसञ्चारकमाधनम् अथवा उपकरणं भवति। मानवाः स्व विचाराणाम् अभिव्यक्ति करणार्थ भाषाम् उपकरणत्वेन उपयुज्यन्ते। मानवसभ्यतायाः संस्कारस्य प्रतिनिधित्वरूपेण भाषायाः प्रयोगः विद्यते। कस्यापि देशस्य संस्कारस्य परिचयः तत्रत्य साहित्यानामध्ययनेन अवगन्तुं शक्यते। संस्कारस्य प्रदर्शनार्थ अवगमने उपयुज्यते। बालकः स्व बालय कालादेव भाषायाः सहाय्येन स्वाभिप्रायप्रकटनं करोति। अतः क्रमशः मानवप्रगति मध्ये ज्ञानस्य मूलभूत-कारणमस्ति। ज्ञानस्यप्राप्तिः तत्रत्य ग्रन्थानां द्वारा लभ्यते। ग्रन्थाः भाषामवलम्य विद्यतेति कारणात् मानवानां तथा विश्वस्य विकासकार्ये भाषायाः मुख्यमङ्गं विद्यतेति कथने संशयलेशोऽपि नास्ति। शिक्षाद्वारा मानव निर्माणं भवति। मानवे मानवत्व-मानयनार्थ शिक्षायाः प्रयोगः क्रियते। पशुत्वात् मानवत्वं, मानवत्वात् दैवत्वप्राप्रिरेव अस्माकं मुख्यमुद्देश्यं भवति। शिक्षायाः कतिपयोद्देश्येषु मानवनिर्माणमपि अन्यतममस्ति। अतः शिक्षा द्वारा मानव निर्माणं भवति, एवं मानवे निहित शक्तीनां बहिरानयनेन विश्वासपूर्ण जीवनयापनं भवितुमर्हति। विश्वासस्य परित्यागेन मानवस्य नष्टमेव सम्भवति। अतः शिक्षा द्वारा विश्वासानां प्राप्तिः तेन विश्वासेन सुनियोजित जीवनमपि संभवति। शिक्षा द्वारा अर्न्तनिहितशक्तीनां बहियनयनमपि संभवति। मानवे विद्यमान शक्तीनां परिचयेनैव उपग्रहवाचपर्यन्तं जनाः यतन्ते। मानव क्षमतायाः प्रकाशार्थम् एवम् उचित रूपेण मार्ग दर्शनार्थ शिक्षा बहुधा उपकरोति। जीवनस्य मूल्यमपि शिक्षा द्वारा एव अवगन्तुं शक्यते। मानवजन्मस्तु बहुदुर्लभेन प्राप्तमस्ति। अतः प्राप्त मानवजनस द्वारा सामाजिकोन्नतेः चिन्तनार्थ वैयक्तिक शक्तीनाम् उचिते सन्मार्गे प्रदर्शनार्थ शिक्षायाः भूमिका विद्यते।

शिशु आबालयात् एव परिवारे तत्रत्य सदस्यानां द्वारा क्रमशः श्रवण कौशलेन अवगच्छन्ति एवं कालान्तरे भाषणरूपेण ज्ञानविषयान् श्रावयति, पुनः कालक्रमेण विद्यालयादि सामाजिकपरिवेशे यदा प्रविशति तदा गृहात्प्राप्त पूर्वज्ञानस्याधारेण समाजे नूतन परिस्थितौ आत्मानं स्थापयति। कतिपयप्रक्रियाणामाधारेण बालकः आत्मानं समाजे प्रतिष्टापनाय प्रयतति।

मानवः श्रृष्टिकालादारभ्य उपग्रहवासकालपर्यन्तम् अनुभूयमान प्रगतेः कारणं भवति अवगमनम्, अवबोधाः तदपि भाषाया आधारेण अभिव्यक्तिकरण द्वारा सर्वम् अवगच्छति अभिव्यक्तीकरणञ्च करोति। अतृ प्रपञ्चे माट भाषापेक्षया कतिपय भाषायाः ज्ञानस्य आवश्यकता विद्यते। कतिपयभाषाज्ञानेन उत्तमपदप्राथ वा विश्वस्तरे उत्तमव्यवसाय प्रत्यर्थ वा इति कथनम् अवर्थमेव भवति, तदपेक्षया कतिपयभाषाज्ञानस्याधारेण कतिपयकौशलागं प्राप्तिः भवति। भाषाध्यापनसन्दर्भे विदेशे प्रायः सर्वत्र आङ्गलभाषायाः प्रयोगः दृश्यते यद्यपि French, Aratric इत्यादय अपि प्रचारे विद्यन्ते। Latin, Greek आदि भाषायाः प्रयोगः यद्यपि अनुभवामः परन्तु अतिसंकुचितमात्रायामेव विद्यन्ते। पा श्चात्यदेशेषु भाषाध्यापनाय कतिपयविधमः प्रचारे विद्यन्ते। विंशतिशताब्यः मध्यकाले तद्नन्तरकाले च भाषाप्रयोगशालायाः प्रयोगः कृतः। विभिन्न संस्कारयुक्त छात्राणां निर्दिष्ट स्वाभाविक प्रतिक्रियायाः प्राप्त्यर्थ भाषा प्रयोगशाला प्रयोगे आसम्। भाषा प्रयोगशालायामपि प्रायः भाषायाः प्राथमिक कौशलानां सम्पादनाय उपयुक्ताः दृश्यन्ते। श्रवण, भाषण, पठन लेखनादि कौशलानां सम्पादनार्थ प्रथमं प्रयोगे आसीत्। भाषावगमने अध्ययने च वयः न समीक्ष्यते। यः कोऽपि भाषावगमनार्थ प्राथमिक कौशलानामवगमनेनैव आवगमनं कर्तुं शक्यते। अतः प्राथमिक कौशलानामध्यापनार्थ भाषाप्रयोगशालायाः प्रयोगः कृतः। भारतदेशे पारम्परिकविधिः अधिकतया उपयोगे आसीत्, क्वचित् इदानीं प्रचारे अपि विद्यन्ते। गुरूकुलेष, परम्परागतपद्धत्या भाषाध्यापनं प्रचलति। प्राय अनुकरणपद्धत्या छात्राः भाषायाः प्राथमिककौशलानाम् अवगमनम्, अनुप्रयोमपि कुर्वन्ति। भारते गुरूकुलेषु, वेदाभ्यासादि सन्दर्भे कण्ठपाठस्यैव प्राधान्यं दीयते। तत्र गुरूमुखात् सम्यक् अवलोकनेन अनुवाचनरूपेण वेदाभ्यासः क्रियते। एवं कण्ठपाठद्वारा अनुकरणेन भाषायां विद्यमान प्राथमिक कौशलानां प्राप्तिः भवति। अत्र अध्यापकः सावधानेन पदच्छेदेन

कतिपयवारम् अभ्यासरूपेण श्रावयति छात्राः श्रद्धया अनुकरणरूपेण श्रावयन्ति। छात्राः श्रद्धया अनुकरणरूपेण श्रवणकौशलस्य विकासेन सह भाषण कौशलस्यापि विकासः जायते। कतिपयवार अभ्यासादनन्तरं कणर्याकर्मकर्णपरम्परया कण्ठस्थविषयान् स्वयमेव अदृष्टवा अभ्यासेन आजीवनं स्थापयति। आजीवनं स्मरणार्थं वारं वारम् अभ्यासमपि करोति। प्रगतिमार्गे भाषाध्यापनमपि वैज्ञानिकपद्धत्या प्रवृत्तमस्ति। वैज्ञानिकप्रवृत्तिविकशने मनोविज्ञानस्याधारेण आविष्कृत अभिक्रमिताध्ययन पद्धतिः तद्वारा अध्यापकानाम भावेऽपि स्वेच्छाया यदाकदापि, यत्रकुत्राऽपि, स्वीयप्रयत्नेन अधिगन्तुं प्रयासः प्रारब्धः। क्रमश अतिसंकुचिते समये भाषाकौशलेषु एकस्मिन् सन्दर्भे एकस्य कौशलस्य अवबोधनार्थ सूक्ष्मशिक्षणस्य प्रयोगः प्रारब्धः। तस्मिन्नेव क्रमे संगणक सहकृत बोधनेन अद्य विश्वे सर्वत्र अध्ययनमध्यापनं संगणकमाध्यनेन प्रारब्धः। तत्र सहयोगार्थं विभिन्न मृदुलोपागमानां प्रयोगेन स्वत एव भाषाध्ययने प्रयासः प्रचारे विद्यते। विश्वे उपग्रहवासार्थ सिद्धाः सन्ति परन्तु तादृश वैज्ञानिक ज्ञानस्य बोधनार्थ भाषैव सूक्ष्मतया उपयुज्यते। संगणक यन्त्रे केवलं निर्दिष्टभाषैव उपयुज्यतेति कथनस्य प्रयासः व्यर्थ एव भवति। यन्त्रस्तु यन्त्रैव, परन्तु वैज्ञानिकाः विश्वे विद्यमान भाषासु संस्कृतमेव संगणकाय सर्वोत्तममिति अङ्गीकुर्वन्ति, प्रयोगा एव अवशिष्टाः सन्ति।

संगणककालमिति कथने प्रायः युवका एव मार्गदर्शकाः सन्ति। ते वैज्ञानिक प्रवृत्तिं स्वाभाविकरूपेण स्वीकुर्वन्ति, तत्र सरलतया परिचिताः सन्तीतिकारणात् ज्येष्टा अपि सन्देह निवारणार्थं युवकानां साहाय्यं स्वीकरिष्यन्ति निःशंशयेन कथितुं शक्यते वैज्ञानिक ज्ञाने प्रापणे युवका अतीव भावातमक अभिवृत्तियुक्ताः दृश्यन्ते। अतः भाषाध्यापने अपि वैज्ञानिकप्रवृत्ती नामाधारेण तेषां रूचे अभिवृध्यर्थ संगणकद्वारा भाषाध्यापनं रूचिकरं स्यादिति प्रायः विश्वे सर्वे अङ्गीकुर्वन्ति। गुणवत्तायाः स्थापनार्थं विश्वस्तरे युवकाः स्वीययोग्यतायाः प्रदर्शनार्थं, परिवर्तमानसन्दर्भानुगुणम्, आवश्यकतानुसारञ्च समाजे भाषाध्यापकानां कर्तव्यमस्ति यत् ते अपि विश्वस्तरे इतर विषय विशेषज्ञाः विज्ञानादि विषयानां शिक्षणे वैज्ञानिकप्रवृत्तीनां प्रयोगं यथा कुर्वन्ति तथैव भाषाध्यापका अपि वैज्ञानिकप्रवृत्तीनामाधारेण भाषाध्यापनं कर्तव्यम्। तत्र मुख्यकारणमस्ति यत् भारते विश्वस्तरीय

विश्वविद्यालयानां क्षेत्रीय अध्ययन केन्द्राणां प्रारम्भः प्रचारे विद्यते। यदा विश्वस्तरीय छात्रा अध्ययनार्थ तत्राऽपि विशिष्टरूपेण भाषाध्ययनार्थ तत्राऽपि शास्त्राध्यापनेन सुसाध्यं भविदमर्हति। भारतादि वर्धात्यमानदेशेषु संगणकमिति कथने सर्वेषां आर्थिक व्यवस्था तदा न भवेदिति कारजात् प्रायः सर्वेषां पार्श्वे जङ्गमदूरभाषाविधते, तस्माधारेण छात्रस्तरे कल्पनातीत विषयान्, उत्तमसन्दर्भात् तत्क्षणे स्वीय जङ्गमदूरभाषायन्ने चित्ररूपेण अथवा चलनचित्ररूपेण वा चित्रणं कृत्वा कक्षायां दृश्यश्रव्यसामग्रीमाध्यमेन पाठयन्ते। अतः [Computer Assisted Language Learning or Mobile Assisted language Learning] संगणक सहकृत भाषाध्ययनं प्रचारे विद्यते। अध्यापकाश्रिताध्ययनस्थाने यन्त्रारोपित शिक्षणस्य काल आगतः इति वक्तुं शक्यते। इदानीं छात्राःस्वीय क्षमतानुगुणं प्रायोजनादि कार्येण प्रदर्शनमचि कुर्वन्ति। वैज्ञानिकरीत्या क्रियतेति कारणात् अति संकुचिते समये अतिवेगेन, अधिकपरिश्रमं विना पूर्णज्ञानप्राप्तिः भवितुमर्हति। वैज्ञानिकरीत्या अधीयमान छात्राणां वृत्ति सम्बन्धित समस्याः न भवेत् इतरभाषाया अवगमने काठिन्यं न स्यात् संगणकादि साधनानां प्रयोगे क्षमतायुक्ताः भवितुमर्हन्ति। उत्तमाध्यापकानां द्वारा वैज्ञानिकमाध्यमेन भाषाध्यापनं क्रियते चेत् उत्तमोत्तमाभिवृत्तिः संभवति। विश्वे प्रायः भाषाध्यापकाः मनोवैज्ञानिनः, दार्शनिकाः, वैज्ञानिकाः स्वाभिप्रायप्रकटनार्थ भाषायाः साहाय्यं स्वीकृतवन्तः। यद्यपिसत्यं लोकविरूद्धमपि प्रायः जनाः चिन्तयेयु अथाऽपि भाषाद्वारा एव प्रारम्भः प्रगतिः प्रदर्शनं तथा भाषा द्वारा एव विमोचनमपि संभवति।

शिक्षणाभ्यासः शिक्षणविधिः

डॉ. सुरेन्द्र महतो

अतिथि व्याख्याता, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

"वन्दे विचित्र शब्दार्थौतुंगपीनघनस्तनीम्।

सगुणां सरसां शुद्धां सालंकारां सरस्वतीम्।"- कोविदानन्द विमर्शः

संस्कृतभाषा-भाषाविज्ञान दृष्टया शिलस्टात्मिका भाषा अस्ति। अस्यां भाषायां सूत्रशैल्याः प्रधानता दृश्यते। यदा शास्त्रीय भाषात्वं स्वीक्रियते ततः एव सूत्र शैल्याम् एवं प्रादुर्भूता। व्याकरणदर्शनादिशास्त्रेषु सर्वेषु ग्रन्थेषु विधिरियं स्पष्टं दृश्यते।

अधुनाऽपि तथैव स्वरूपं पुनरागच्छति, संगणकमाध्यमेन यत्र शिक्षणं भवति तत्राऽपि सूत्रविधानं वर्तते। सूत्र विधानस्य अपरनाम नस्ति Formula Method coding method एव समीचनम्। अनेन माध्यमेन अल्पकालेन बहुज्ञानस्य संचयः भवति। आधुनिकज्ञान-विज्ञानं सूक्ष्मवीजरूपेण (sim or chip) मध्ये संचितः स्यात्। अस्मिन वैज्ञानिके युगे स्थूलाद् सूक्ष्म प्रति गम्यमानाः। सर्वेषु क्षेत्रेषु सूक्ष्मीकरण दृश्यते। अतो भाषा शिक्षणेऽपि अस्या प्रक्रियाया अनुशरय भवदेयदिचेत तर्हि उपयोगित्वं भवते।

'वागैव सम्राट परं ब्रह्म' - बृहदा।

भाषा निकली भाष् धातु से जिसका अर्थ है वाणी।

व्यवहार को सरल बनाती कहे ऋषिमुनि ज्ञानी।

भाषा देशी विदेशी हो या हो बोली वाणी।

राष्ट्रीय मातृ या क्षेत्रीय भाषा के रूपवखानी ।।

वाचनशिक्षणम्-

अक्षरव्यक्ति उचित गतिमुद्रा शैली बलविराम।

प्रभावोत्पादक शब्दोच्चारण स्वरमाधुर्य दृष्टिविराम ।।

प्रभावः-

दुर्बलदृष्टि ऊँचा, सुनना, तुतलाना, हकलाना, थकना।
मन्दबुद्धि, निराशा, डरना, क्रोध झिझक से हरदम बचना।।

मौनवाचनम्-

अल्प समय में अधिक पचाना,वास्तव में भी कल्पना करना।
चिन्तनतर्क शक्ति का बढ़ना, लेश मात्र न बाधा पड़ना ।।
रूचि अनुरूप पुस्तक का पढ़ना, विषय वस्तु पर केन्द्रि होना।
मौन पाठ का उद्देशय जानकर तनहाई को दूरभगाना।।
सभी प्रकार का अध्ययन सम्भव अर्थबोध हो। कहे सुजान।
अभ्यास हो संक्षेपेण का मितव्ययी संग अल्पथवान ।।
चित एकाग्रता प्रयोग साथ में अपने चिन्तन शक्तिका।
सस्वर वाचन से हो दूनी गति समझने पढ़ने का ।।

वाचनशिक्षण विधि

संश्लेषण-विश्लेषण पद्धति वाचन शिक्षण के आधार।
विधियाँ है वाचन शिक्षण के करते है इसका विस्तार ।।
वाक्य शब्द शिक्षण को कहते देखो और कहो विधि।
वर्ण शिक्षण का नाम अपर है या तो अक्षर बोल विधि।।
ध्वनि साम्य अनुकरण साथ में उत्तम सामूहिक पाठ विधि।
भाषा शिक्षण यन्त्र विधि सर्वोत्तम है समवाय विधि ।।

लेखनशिक्षणम्

पढ़-पढ़ कर हम लिखना सीखे पहले चित्राभ्यास करें।
अक्षर भी तो चित्र है सुन्दर इस पर हम विश्वास करे ।।
लिपिवद्ध करें भावों को मूर्त रूप दें अनुभव को।

सुन्दर व आकर्षक लेखन मोहमन हर दर्शक का ।।
सरल सुगम पद्धति लेखन की,
जेकाटाट संविअनु विधि ।।

उपकरणम्

शिक्षण को रूचिपूर्ण बनाकर कठिन पाठ को सरल बनाता।
अल्प समय में अधिक सीखाकर छात्रों को संलग्न कराता ।।
नीरस को भी सरस बनाकर विषय वस्तु को याद कराता ।।
सूक्ष्म को भी स्थूल बनाकर पल में ही सब बोध कराता ।।
आँख कान है ज्ञान द्वार के ऐसा हमारे ज्ञान कराता।
दृश्य देखता, श्रव्य सुनता ।
दृश्यश्रव्य जब साथ में होता ।।
श्रव्य-टेप रेडियो ग्रामोफोन सुनते जिनको हरदम हम।
शिक्षण के व्यवहार में आकर कहलाते है श्रव्य उपकरण।।
दृश्यश्रव्यम-नाटक चलचित्र टेलीविजन भाषा प्रयोगशाला ही जीवन।
कान आँख सुख करत संग-संग दृश्य श्रव्य बिन सूना शिक्षण।।
दृश्य-चित्र श्यामपट्ट मानचित्र मॉडल टूर मूकचित्र।
दर्शक चित्रविस्तारक यंत्र उपकरण दृश्य के मित्र ।।
अल्पाक्षरमसन्धिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम्।
अस्तोममनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ।।-ल. सि. कौ. (भूमिका)

वर्तमानपरिप्रेक्ष्ये गुरुकुलशिक्षापद्धतेः सार्थकता

राघवेन्द्र पाण्डेयः

एम. एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

भूमिका

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।[1]

श्रीमद्भगवद्गीतायां भगवता श्रीकृष्णेन ज्ञानस्य महत्व तस्यासदृशपावनत्वञ्चैतादृशं प्रतिपादितम्। ज्ञानेन हि मनुष्यः स्वजीवनस्य लक्ष्यनिर्धारणे तत्पूर्त्तये च प्रयत्नशीलो भवति। ज्ञानमिति शब्दः खलु सापेक्षत्वं वहति। तत्कथनेनैवापेक्षा भवति यत् किं ज्ञानम्?

एतेषां प्रश्नानामुत्तरप्राप्तिसमये निश्चितम्भवति यदस्य शब्दविशेषस्य अर्थनिर्धारणे काचन् एका प्रक्रिया अभिलक्षिता भवति सा उच्यते खलु शिक्षा। शिक्षायाः स्वरूपनिर्धारणे उपर्युक्तप्रश्नानामावश्यकता तेषामुत्तरप्राप्तिश्च अपेक्षिते भवतः। प्रक्रियायाम् अस्यां कश्चन क्रमो भवति। येन स्तरानुगुणं, कालानुगुणं समाजनुगुणञ्च एषा व्यह्रियमाणा भवति सा एव शिक्षा पद्धतिरित्युच्यते।

भारतदेशस्य प्राचीनकालीना शिक्षापद्धतिः गुरुकुलेष्वाधारिता आसीत्। गुरुकुलं नामगुरूणाम् आचार्याणां विदुषां कुलं समूहः स्थानं अर्थात् यत्र आचार्याः स्थित्वा स्वशिष्यान् धर्मार्थकाममोक्षसाध्यानि वेदशास्त्राणि अध्यापयन्ति स्म तदेव गुरूकुलमिति। गुरुकुलीया शिक्षापद्धतिः मानवजीवनस्य सर्वैरपि पक्षैस्सह सम्बद्धा आसीत्। पञ्चवर्षीयः अष्टवर्षीयो वा बालकः उपनयनादिसंस्कारैस्संस्कारितोगुरुकुले प्रविशति स्म, तत्र ब्रह्मचारिनियमान् प्रपालयन् वेदवेदांगोपनिषदादिशास्त्राणां सम्यग् अध्ययनं करोति स्म। एषा

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता 4.38

शिक्षापद्धतिः मानवजीवनस्य इहलौकिकं पारलौकिकञ्चोत्थानं कृत्वा तदनुकूलसफलताप्रदाने दक्षा आसीत्।

गुरूकुलशिक्षापद्धतेर्महत्वम्-

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद् वेदोभयसह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥[2]

ईशावास्योपनिषदि उक्तत्वाद् मानवजीवने द्वयोरपि विद्ययोर्महत्ता वर्तते। विद्या नाम पारलौकिकं ज्ञानम् अविद्या नाम लौकिकं ज्ञानमिति। एतस्माद् मन्त्रात्पूर्व तत्रैव मन्त्रान्तरेणोक्तमस्ति यत्-

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां्रताः॥[3]

अर्थात् ये प्राणिनः अविद्यामुपासते, ते अज्ञानान्धकारे प्रविश्य दिग्भ्रमिताः भवन्ति। ये च केवलं विद्यामुपासते ते तेभ्योऽपि अधिकेऽज्ञानान्धकारे प्रविश्य दिग्भ्रमिततमा भवन्ति। अत एव द्वेऽपि विद्ये उपासनीये इति वेदकालीनशिक्षायां निहितमस्ति।

एषा शिक्षा खलु **गुरुकुलशिक्षापद्धतौ** विद्यमानाऽस्ति। शिक्षापद्धत्यामस्यां धर्मार्थकाममोक्षेति चतुर्विधपुरुषार्थाणां साधनार्थं शिक्षा प्रदीयते।

बाह्य-अन्तः स्थशास्त्रमाध्यमेन चित्तशुद्धिः, आत्मविश्वासेन निष्ठया च मनः स्थैर्य, नैरन्तर्य-अभ्यासद्वारा बुद्धेः सूक्ष्मत्वञ्च प्राप्तं भवेत् एतदर्थम् अस्यां पद्धत्यां एतादृग्विधीनाम् अवलम्बनं कृतमस्ति यैः मानवस्य मेधा, प्रज्ञा, प्रतिभा, अन्तश्चेतना च क्रमानुसारं वर्धमाना भवेत्।

प्राचीनगुरुकुलप्रणाल्यां वेद-उपवेद-उपनिषद्-इत्यादि शास्त्राणा-मध्यापनेन सह शिष्यस्य व्यक्तित्वविकासाय अपि ध्यानं दीयते स्म। तस्य चिन्तनं व्यापकं सकारात्मकञ्च कथं भवेत् इत्यस्मिन् विषयेऽपि अभिप्रेरणं क्रियते स्म। शिक्षापद्धतेरस्याः त्रयो विशिष्टाः मुख्याश्च गुणा वर्तन्ते यथा-

---

2. ईशावास्योपनिषद्
3. ईशावास्योपनिषद्

(1) ज्ञानम्।

(2) विश्वासः निष्ठा च।

(3) सतत् अभ्यासः।

(1) ज्ञानम्-

गुरुकुलशिक्षायां ज्ञानं मुख्यं भवति स्म छात्रस्य योग्यता केवलं ज्ञानेन आकल्यते स्म न तु उपाधिना इति। तत्रापि द्वयोः लौकिकपारलौकिक-ज्ञानयोर्महत्ता आसीत्।

गीतायां यथा- **श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तपः।**
सर्वं कर्माखिलं पार्थ! ज्ञाने परिसमाप्यते।।[4]

अर्थात् शास्त्रानुकूलशिक्षाप्रक्रियायां ज्ञानस्यापि परिक्षेत्रं व्यापकमासीत्। शिक्षायाः प्रारम्भिक- अवस्थातः यथार्थानुभूतिपर्यन्तं यावज्ज्ञानमपेक्षितं भवति। तत्सर्वं निसर्गतः शिक्षण-उद्देश्येषु निर्धारितं भवति स्म। ज्ञानेन सह जीवनयापनस्य नियमानां सैद्धान्तिकं व्यावहारिकं महत्वं प्रतिपाद्यते स्म। एतादृशानामुद्देश्यानां प्राप्तये गुरुकुलशिक्षापद्धतिः अतीव उत्कृष्टा आसीत्।

(2) विश्वासः निष्ठा च-

गुरुकुलशिक्षायां विश्वासस्य निष्ठायाश्च महत्वमधिकं वर्तते। यस्मिन् विद्यार्थिन आत्मविश्वासः अधिको भवति सः यथार्थानुभवमपि शीघ्रतया करोति। आत्मविश्वासः छात्रस्य संकल्पशक्तौ, कार्यनियोजने, विषयज्ञाने, लक्ष्यकेन्द्रीकरणे च साहाय्यं करोति। आत्मविश्वासस्य वर्धनार्थमपि गुरुभिः समुचिता अभिप्रेरणा प्रदीयते गुरुकुलशिक्षापद्धत्याम्। गुरुजनेषु निष्ठा अर्थात् आदरभावो विद्यार्थिनो विकासाय भवति। उक्तमस्ति गीतायाम्-

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।[5]

अर्थात् निष्ठाद्वारैव छात्रस्य गुरूणा सह आन्तरिकसम्बन्धो भवति। यदा गुरोः सानिध्यं प्राप्यते तदा शिष्यस्य अहंकारादिभावाः नश्यन्ति।

---

4. श्रीमद्भगवद्गीता 4.33
5. श्रीमद्भगवद्गीता 4.39

अनन्तरं सः निष्ठान् भूत्वा विद्याप्राप्तये प्रयत्नशीलो भवति। एतत्सर्वं गुरुकुलपद्धत्यामनुस्त्रिमाणं भवति।

(3) सतत् अभ्यासः -

गुरुं प्रति निष्ठाभावे सति गुरुप्रदत्तज्ञानं विद्यार्थी सम्यक्तया प्राप्नोति अनन्तरं शास्त्राणां सतत् अभ्यासेन तस्य अज्ञानावरणं शनैः शनैः अपसरति। शास्त्रं प्रति निष्ठाभावेन शास्त्रैः सह तस्य तादात्म्यं भवति। तादात्म्यभावानन्तरं सः शास्त्रज्ञानं सुष्ठुरूपेण आत्मसात् करोति।

अनभ्यासे विषं विद्या इति उक्तत्वात् विद्यायाः संरक्षणे संवर्धने च निरन्तर-अभ्यासस्य आवश्यकता भवति। अत एव गुरुकुलीयशिक्षायां नैरन्तर्येण अभ्यासस्य महत्वं प्रदीयते स्म।

अभ्यासस्य तात्पर्य यन्निरन्तरं स्वाध्यायमाध्यमेन ज्ञानार्जनमिति। स्वाध्यायस्य महत्ता तैत्तिरीयोपनिषदि सुष्ठु प्रतिपादिता अस्ति। यथा-

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचने च सत्यञ्च स्वाध्यायप्रवचने च।

तपश्चस्वाध्यायप्रवचने च दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च।।[6]

अनन्तरं-

स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः अर्थात् विद्यार्जने स्वाध्यायस्य महत्वप्रदानं गुरुकुलीयशिक्षायाः मुख्यमुद्देश्यमासीत्। मनुस्मृत्यामपि स्वाध्यायस्य महत्ता प्रकटिता अस्ति।

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यादैष चैवेहकर्मणि।

दैवकर्मणि युक्तो हि विभर्तीह चराचरम्।।[7]

स्वाध्यायकरणेन शास्त्राणामभ्यासः सुष्ठुरूपेण भवति। अनेन प्रकारेण ज्ञानार्जनं कृत्वा जीवनस्य यानि लौकिकानि पारलौकिकानि च उद्देश्यानि भवन्ति तानि मानवः प्राप्तुं शक्नुयात्। यथोक्तं गीतायाम्-

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।

परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।।[8]

---

6. तैत्तिरीयोपनिषद्
7. मनुस्मृति 6-75
8. श्रीमद्भगवद्गीता 8-6

अनया प्रक्रियया मानवः चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धौ सक्षमो भवेत् इति तत्वं गुरुकुलशिक्षायां निहितमस्ति। उपरिवर्णितानां तत्वानां व्यावहारिकं प्रयोगं कृत्वा गुरुकुलशिक्षायाः प्रक्रिया गुणशालिनी आसीत् प्राचीनभारतवर्षे। विद्यार्थिनः वेदवेदांगदिविषयान् अधीत्य यदा समाजे आगच्छन्ति स्म, तदा समाजस्य आदर्शरूपेण, नैतिकव्यक्तित्वप्रतिदर्शरूपेण, समाजोद्धारकरूपेण च स्वीयं कर्त्तव्यं वहन्ति स्म।

इदानीमपि भारतवर्षे विद्यमानेषु गुरुकुलेषु उपरितनाः उल्लिखिताः विचाराः दरीदृश्यन्ते। गुरुकुलीया शिक्षा पूर्णतया इदानीमपि नैतिक-आध्यात्मिकविकासाय सक्षमा अस्ति।

अध्यवसायिनः, ज्ञानपिपासवः, विनयशीलाः, सच्चरित्रयुक्ताश्च छात्रा एव सुसमाजस्य निर्माणं कर्त्तुं शक्नुवन्ति। गुरुकुलीया शिक्षापद्धतिः एतेषां गुणानां विवर्धनाय समुपयुक्ता भवति।

वर्तमानकाले गुरुकुलशिक्षायाः स्वरूपम्-

अधुनातने समाजे प्रौद्योगिकीसंवर्धनात् पाश्चात्यावलम्बनाच्च गुरुकुलशिक्षायाः स्वरूपं विच्छिन्नवत् वर्तते। पूर्वस्मिन् काले सम्पूर्णेऽपि भारते विद्यमानानि गुरुकुलानि शिक्षायाः मुख्यकेन्द्राणि आसन्। तत्रस्थाः आचार्याः विद्वांसः औदार्यान्विताः, नीतिमर्मज्ञाः आदर्शभूताश्च भवन्ति स्म। ज्ञानविज्ञानस्य राशिरूपेण इतस्ततः परिभ्रमन्ति स्म। किन्तु इदानीं तादृशाः ज्ञानविज्ञानयुताः रीतिनीतिनिपुणाः शास्त्रज्ञाः वेदविदश्च विद्वांसः अल्पीयांस एव दृश्यन्ते। भारतीयशास्त्राणामध्ययने तस्योपयोगे च जनानामभिलाषा तावती न दृश्यते यावती भवितव्येति।

अतो हेतोः भारतीयसंस्कृतगुरुकुलानां स्थितिरपि दयनीया एव दृश्यते। उत्तरभारते तु धर्मनगरीषु विद्यमानानि गुरुकुलानि अतीव समस्याग्रस्तानि वर्तन्ते। तत्र अध्ययन-अध्यापनस्य प्रक्रिया नाममात्रमेव वर्तते। छात्राणां संख्या अपि अधिका न भवति यतोहि संस्कृतच्छात्राः समाजस्य मध्यमवर्गात्निम्नवर्गाद्वा आगच्छन्ति, तेषाम् आर्थिकी स्थितिः अधिका सुदृढ़ा न भवति। गुरुकुलेषु प्रबन्धकानां सौहार्दपूर्णव्यवहाराभावात् ते ततः पलायनं कुर्वन्ति। अतः गुरुकुलरूपेण विद्यमानासु संस्थासु अध्ययनस्य प्रक्रिया क्षीणप्राया वर्तते।

आर्यगुरुकुलेषु छात्राणाम् अध्यापकानाञ्च संख्या संतोषकरी अस्ति किन्तु तत्रापि अध्ययनस्य अध्यापनस्य च प्रक्रिया सुदृढ़ा नास्ति। काश्यां केषुचिदेव स्थानेषु अध्ययनस्य प्रक्रिया सम्यक् प्रचलन्ती वर्तते। एतादृशं गुरुकुलशिक्षायाः स्वरूपे नैरन्तर्येण क्षरणं जायमानम् अस्ति।

अनेन प्रकारेण संस्कृतभाषायां विद्यमानानि शास्त्राण्यपि
अनुपयोगित्वं भजन्ति कस्याश्चन

शिक्षापरम्परायाः संरक्षणं संवर्धनञ्च तदवलम्बिभिः जनैः
क्रियते। यदा

परम्परावलम्बनमेव अक्रियमाणमस्ति तदा तस्याः संरक्षणं
संवर्धनञ्च कथं भवितुं
शक्यते।

अतः निष्कर्षरूपेण वक्तुं शक्यते यद् वर्तमानसमये
गुरूकुलशिक्षायाः स्वरूपं
विघटितमिव वर्तते।

वर्तमानकाले गुरुकुलशिक्षायाः उपादेयता–

धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचिद्।।[9]

इति महाभारते उक्तत्वाद् वक्तुमिदं शक्यते यद् भारतदेशोऽयम् प्राचीनकालादेव सम्पूर्णज्ञानविज्ञानस्य मुख्यकेन्द्ररूपेण विश्वस्मिन् विश्वे प्रतिष्ठितोऽस्ति। अस्याः प्रतिष्ठायाः कारणम् अत्रत्याः शिक्षापद्धतिः आसीत् अनया शिक्षापद्धत्या एव भारतदेशः विश्वगुरुरिति पदवीमलभत। अत एवं मनुना उक्तं यत्–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

एतादृशी महत्वाधायिनी शिक्षाप्रक्रिया शिक्षाप्रक्रिया एतेषु संस्कृतगुरुकुलेषु एव जायमाना आसीत्। इदानीमपि गुरुकुलानां स्थितिः

9. महाभारतम्

केषुचित् स्थानेषु समीचीना वर्तते यथा देहल्यामेव बुराड़ी परिक्षेत्रे स्थितं श्रीनिवाससंस्कृतविद्यापीठमिति।

दरियागंज परिक्षेत्रे स्थितं शारदादेवी संस्कृतविद्यापीठमपि संस्कृतविद्यार्थिनां कृते समुचितं वातावरणं प्रददाति। श्रीनिवाससंस्कृतविद्यापीठे इदानीं षष्ठिसंख्याकाः विद्यार्थिनः सावासाः अध्ययनं कुर्वन्ति। तस्य संस्थापकाः आचार्याः श्रीमन्तः गोविन्दशर्ममहाभागाः सन्ति। ते प्रतिदिनं यावत् प्रातः काले षड्वादनादारभ्य अष्टवादनपर्यन्तं स्वयमेव छात्रान् अध्यापयन्ति। वैदिकपरम्परामनुसृत्य विद्यमानाः छात्राः प्रतिदिनं प्रातः चतुर्वादने उत्थाय सन्ध्योपासनहोमकर्मेत्यादि कुर्वन्ति।

गुरुकुले मोबाइल-इत्यादि यन्त्राणां प्रयोगः छात्राणां कृते सर्वथा निषिद्धो वर्तते। तत्र इदानीमपि व्याकरणसाहित्यवेदोपनिषद्संगीतादिविषयैस्सह आधुनिकविषयाः यथा कम्प्यूटर विज्ञानगणितांग्लभाषेत्यादयः प्रपाठयमानाः सन्ति।

गुरुकुलीया शिक्षापद्धतिः जीवनस्य सर्वेष्वपि पक्षेषु स्वोपयोगितां प्रकटयति। केवलमत्र अर्थोपार्जनार्हता न प्रदीयते। धर्मार्थकाममोक्षेति चतुर्विधपुरुषार्थाः मनुष्येण कथं साध्या इति विषये गुरुकुलशिक्षापद्धतिः अतीव उत्कृष्टा अस्ति।

वर्तमानसमाजे नैतिकमूल्यानां क्षरणकारणात् बहुविधाः समस्याः सञ्जाताः। व्यक्तीनां व्यक्तित्वे मौलिकतायाः कर्त्तव्यपरायणतायाः, सहृदयतायाः, औचित्यानौचित्ययोर्मध्ये भेदक्षमतायाश्च अभावो दृश्यते। अस्मादेव कारणात् समाजे नैकविधाः समस्याः मानवजीवनं प्रभावयन्ति। नैतिकशिक्षायाः अभावात् दुराचार-पापाचारादि दुर्घटनाः आगतेषु दिनेषु प्रायशः श्रूयन्तेऽस्माभिः। स्वीयावश्यकतायाः पूर्त्यर्थम् अनेकेषां दुष्कर्मणां विधाने अद्यतनो मनुष्यः किञ्चिदपि न चिन्तयति यदस्य दुष्कृतस्य परिणामः किं भविष्यति? चिन्तनक्षमतायां ह्रासत्वात् अनेकाः पारिवारिकाः सामाजिकाश्च समस्याः मानवस्य मानवत्वनाशनार्थं सर्वदैव सन्नद्धास्सन्ति।

अस्माकं मते एतासां सर्वासां समस्यानां मूलकारणम् अद्यतनी शिक्षा अस्ति। शिक्षैषा पाश्चात्यदृष्टिकोणेन पूर्णतया प्रभाविताऽस्ति। पूर्वं शिक्षा एका प्रक्रिया आसीत् जीवनस्योन्नयनार्थम्। इदानीं शिक्षा एकं

साधनमस्ति अर्थोपार्जनार्हताप्राप्त्यर्थम्। अस्यां शिक्षायां नैतिकमूल्यानां, चरित्रनिर्माणस्य साधनमस्ति अर्थोपार्जनार्हताप्राप्त्यर्थम्। अस्यां शिक्षायां नैतिकमूल्यानां, चरित्रनिर्माणस्य साधनानाञ्च अभावो दृश्यते। अतः गुरुकुलशिक्षापद्धतेः सिद्धान्ताः इदानीम् अनुसरणीयाः।

"तादृशी शिक्षा व्यवस्था इदानीन्तने समाजे सर्वांगत्वेन आनेतुं शक्यते" इति तु असम्भव एव। किन्तु केचननियमाः सम्पूर्णशिक्षाप्रक्रियायाम् इदानीमपि अनुसर्त्तुं शक्यन्ते यथा-

गुरूशिष्ययोः नित्यसम्बन्ध-विवेकानन्दमहोदयानाम्मते शिक्षायाः अर्थोऽस्ति गुरूगृहवासः। गुरोः व्यक्तिगतजीवनं विना काचनापि शिक्षा सम्पूर्णा नास्ति।

छात्रः बाल्यावस्थातः एतादृशानां गुरूणां सन्निधौ भवेत् येषां चरित्रं आदर्शीभूतं ज्ञानविज्ञानसमन्वितञ्च भवति।

अनुशासनम्-गुरुकुलशिक्षापद्धतौ अनुशासनं सर्वथा अपेक्षितमासीत्। छात्रान् अनुशासनाय शिक्षा अनिवार्यतया दातव्या। अनया शिक्षया छात्रेषु आत्मसंयमः सुच्चिन्तनञ्च विकसितम्भवति।

चरित्रनिर्माणम्-गुरुकुलशिक्षापद्धतौ चरित्रनिर्माणाय बहवोऽपि नियमाः स्वीकृताः सन्ति। याज्ञवल्क्यस्मृत्तौ-

कृतज्ञोऽद्रोहि मेधाविशुचि कल्पनानसूयकाः।
अध्याप्या धर्मतः साधु शक्ताप्तज्ञानवित्तदा ॥

एतेषां चारित्रिकगुणानां निर्माणार्थम् पूर्णांगत्वेन नैव किन्तु आंशिकरूपेण प्रयत्नः अवश्यं कर्त्तुं शक्यते।

सौहार्दपूर्णभावना

गुरुकुलशिक्षायां गुरुशिष्ययोर्मध्ये शिष्यशिष्ययोर्मध्ये च सौहार्द -पूर्णभावना प्रबलीभूता भवति स्म। तादृश्याः हार्दिकीभावनायाः विकासाय इदानीन्तनेषु शिक्षणालयेषु प्रयत्नः अपेक्षितो वर्तते अनेन बह्वयः समस्याः स्वयमेव समाधातुं शक्यन्ते।

उच्च आदर्शस्य औचित्यम्

गुरुकुलशिक्षापद्धत्यां गुरुणाम्महत्वं सर्वदैव अपेक्षितमस्ति। गुरोः विद्यमानाः गुणाः छात्रस्य कृते प्रेरणास्पदाः भवन्ति। अतः शिक्षकाः कर्त्तव्यपरायणाः, सच्चरित्रसम्पन्नाः, सत्कार्येषु प्रेरणाप्रदाने च दक्षाः भवेयुर्येन छात्राः स्वयमेव तादृशैः शिक्षकगुणैः अभिप्रेरिताः भविष्यन्ति।

ज्ञानप्रदानस्थलम्

गुरुकुलशिक्षापद्धत्यां ज्ञानप्रदानस्थलस्य अतीव महत्ता आसीत्। अत एव गुरुकुलानि प्रायशः अरण्येषु एकान्तस्थानेषु वा भवन्ति स्म। इदानीं तादृशी स्थितिः प्राप्तुं न शक्यते किन्तु विद्यालयेषु नैतिकगुणानां विकासाय तादृशं वातावरणं निर्मातव्यम्। यत्र छात्राः स्वयमेव आत्मविकासं कर्त्तुं प्रयतन्ते।

एतादृशाः बहवो गुणाः गुरुकुलशिक्षापद्धतेः इदानीमपि अनुसर्त्तुं शक्यन्ते। मौलिकशिक्षायाः स्वरूपं समाजस्य राष्ट्रस्य च कृते प्रस्तुतं भवेद् एतदर्थ गुरुकुलशिक्षापद्धतेः सिद्धान्ताः नियमाश्च अद्यतनशिक्षायां गृहीतव्या एवेति।

उपसंहारः

- आचिनोति च शास्त्रार्थान् आचारे स्थापयत्यपि।
- स्वयमाचरते यस्मात् तस्मादाचार्य उच्यते।।
- सा विद्या या ब्रह्मगतिप्रदा।
- सा विद्या या विमुक्तये।

गुरुकुलशिक्षायाम् उपर्युक्तानामेतेषां लक्षणानां महत्ता मुख्यतया प्रदीयते। एतादृशानामादर्शाणा प्राप्त्यर्थ सर्वैरपि शिक्षासम्बद्धैः जनैः स्वानुकूलः प्रयत्नः अपेक्षितोभवति। तदेव समाजः उत्कर्षत्वाधायकः समुन्नतिशीलः मानवस्य संवर्धको, मानवतायाश्च संरक्षको भवितुं शक्नोति।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में उदीयमान प्रवृत्तियाँ

प्रो. भास्कर मिश्र
संकायाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

शिक्षण एक आदर्श एवं बहुआयामी व्यवसाय है। मानव विकास की गतिविधियों में संलग्न शिक्षक वर्ग ही विश्व का सर्वाधिक बड़ा व्यवसायिक वर्ग है। आदिकाल से ही मानव अपने एवं वातावरण सम्बन्धी विकास के लिए सतत् रूप से प्रयासरत है। मानव विकास में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत में वैदिक काल से ही शिक्षा के विषय में गम्भीर चिन्तन की परम्परा रही है। ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन तथा पर्यावरणीय विकास के लिए अनेक ज्ञानात्मक एवं आध्यात्मिक तथ्यों एवं विचारों को प्रस्तुत किया है जो आज भी प्रासंगिक है। यद्यपि प्राचीन एवं मध्यकाल में अध्यापक शिक्षा या शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम की औपचारिक व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है। तथापि प्राचीन एवं मध्यकाल में उन्नत शिक्षा व्यवस्था एवं उच्चकोटि के शिक्षकों के प्रमाण एवं उद्धरण प्राप्त होते हैं। जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से ही शिक्षा की उन्नत एवं विशिष्ट प्रक्रिया भारत में रही होगी। अतः अध्यापक शिक्षा के लिए औपचारिक पाठ्यक्रम की आवश्यकता मध्यकाल तक अनुभव नहीं की गई।

पुनर्जागरण काल के पश्चात् यूरोप में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक विकास हुए जिसके फलस्वरूप नये विषयों का उदय हुआ और विश्वपटल पर यूरोप एक नई शक्ति के रूप में प्रकट हुआ। भारत में भी राजाराम मोहन राय जैसे विचारकों ने अंग्रेजी और विज्ञान की शिक्षा पर बल दिया।

इस प्रकार भारत में भी लौकिक, भौतिक, वस्तुनिष्ठ एवं आधुनिक विज्ञान की शिक्षा का आरम्भ हुआ। अन्य उपादानों के साथ

ही अध्यापक शिक्षा की भी शुरूआत हुई। दानिश मिशनरीस द्वारा प्रथम शिक्षण प्रशिक्षण संस्था स्थापित की गई। William Carey द्वारा सन् 1802 ई. में पश्चिम बंगाल के सेरामपुर में एक सामान्य प्रशिक्षण विद्यालय (Normal Tranining School) की स्थापना की गई। उन्नीसवी शताब्दी के तीसरे दशक में शिक्षकों की व्यवस्थित प्रशिक्षण की आवश्यकता को महसूस करते हुए कलकत्ता, मद्रास और बम्बई शिक्षण प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये। इस तरह अनेक प्रयास होते रहे तथा सन् 1854 ई. में Wood's Despatch on Education के अनुसार औपनिवेशिक संदर्भ में भारत में शिक्षक प्रशिक्षण की आवश्यकता को इंगित किया गया। भारत में प्रत्येक प्रांत में शिक्षण प्रशिक्षण को सुनिश्चित करने के लिए अनुदान सम्बन्धी Grant-in-aid rules निरूपित किये गये जिसके अन्तर्गत उन्हीं विद्यालयों को अनुदान देना निश्चित किया जिनमें शिक्षक प्रशिक्षण प्रमाणपत्र प्राप्त अध्यापक ही कार्यरत हो। इससे शिक्षक प्रशिक्षक को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला।

सन् 1882 ई. में भारतीय शिक्षा आयोग (Hunter Commission) ने सर्वप्रथम माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों को प्रशिक्षण की अनुशंसा की। साथ ही सरकारी एवं सहायता प्राप्त विद्यालयों में स्थाई नियुक्ति हेतु शिक्षण प्रशिक्षण में सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक परीक्षाओं में उत्तीर्णता की अनिवार्यता को भी प्रस्तावति किया। अतः उपाधि के समकक्ष Licentiate in Teaching (LT) की शुरूआत की गई जिसके लिए मद्रास और राजमुन्द्री विद्यालयों को उन्नत किया गया।

सन् 1904 में भारत सरकार के प्रस्तावों ने भारत में शिक्षण प्रशिक्षण को अत्यधिक प्रभावित किया। प्रमुख अनुशंसाएँ इस प्रकार है–

प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के साथ अभ्यास विद्यालयों को जोड़ा जाए।

प्राक् स्नातकों के लिए दो वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा स्नातकों के लिए एक वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का प्रावधान जो विश्वविद्यालयी उपाधि के समकक्ष था।

साथ ही शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओं के संसाधनों एवं सुविधाओं को भी महत्व दिया।

सन् 1912 में शासकीय घोषणा के अनुसार आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में बिना शिक्षण प्रशिक्षण प्रमाणपत्र के कोई भी विद्यालय में अध्यापन नहीं कर सकता। इसके बाद माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु सन् 1917-19 के मध्य Sadler Commission ने कई प्रस्ताव पारित किये जैसे कि–

उच्च माध्यमिक और स्नातक स्तर पर शिक्षा को एक अध्ययन विषय के रूप में रखा जाए।

शिक्षाशास्त्र में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम आरम्भ किया जाए।

प्रशिक्षण संस्थानों की भौतिक एवं अन्य सुविधाओं को बढ़ाया जाए।

सन् 1929 ई. में Hartog Committee सेवारत अध्यापको के स्तर को उन्नत करने के लिए सम्मेलनों एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों की अनुशंसा की। साथ ही अनेक विश्वविद्यालयों में शिक्षा विभाग की स्थापना की। जिससे शिक्षा एक स्वतंत्र विषय के रूप में उभर कर सामने आया और इसमें शोध कार्य भी आरम्भ हुए। प्रशिक्षण संस्थानों में भी पुस्तकालय एवं प्रयोगाशालाएँ स्थापित की गई। इन सब प्रयासों से शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनेक सुधार हुए।

सन् 1937 ई. में महात्मा गाँधी ने वर्धा शिक्षा सम्मेलन आयोजित करके एक नई शिक्षा व्यवस्था, आधारभूत शिक्षा (Basic Education) की संकल्पना को प्रस्तुत किया।

गाँधी जी ने शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम को अधिक कार्यात्मक एवं व्यावहारिक बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने ऐसी शिक्षा को महत्व दिया जो व्यवहारिक भी हो तथा छात्र एवं समुदाय की आवश्यकताओं पर भी आधारित हो। शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम भी ऐसी ही शिक्षा व्यवस्था को ध्यान में रखकर संकल्पित करना चाहिए।

सन् 1944 ई. में Sargent Report में भी अध्यापकों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों एवं वेतन वृद्धि की सिफारिश की गई जिससे कि विद्यालयों में अध्यापन की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सके। साथ ही प्रशिक्षण की अवधि को बढ़ाने एवं नियुक्ति हेतु प्रशिक्षण संस्थानों से ही चयन की व्यवस्था की भी अनुशंसा की गई।

सन् 1947 ई. में स्वतंत्रता के समय भारत में 649 शिक्षण प्रशिक्षण संस्थान थे जिनमें से 42 माध्यमिक प्रशिक्षण महाविद्यालय थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समय-समय पर विभिन्न आयोगों का गठन किया गया और शिक्षण प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में परिवर्तन एवं सुधार के प्रस्ताव किये गये। जिनमें से प्रमुख निम्न हैं–

1. भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (1948-49)
2. माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53)
3. NCERT की स्थापना (1961)
4. शिक्षा के क्षेत्रिय महाविद्यालयों की स्थापना (1963-65)
5. भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66)
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968)
7. NCTE की अवैधानिक संस्था के रूप में स्थापना (1973)
8. आचार्य राममूर्ति समिति (1990)
9. वैधानिक NCTE की स्थापना (1993-95)

सन् 1998 में NCTE ने गुणवत्तापूर्ण अध्यापक शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की जिसके प्रमुख घटक निम्न चित्र में दर्शाए गये हैं–

School/University System

Fresh Graduates from school or University

Selection and Recruitment in Schools as Teachers

Pre-Service Teacher Education
- Nursery and Pre-school
- Primary and Elementary
- Secondary and Senior Secondary

New Educational Development . In-School Experience . Continuous and Life-long Education

In-Service Teacher Education
- To upgrade qualification of underqualified and untrained teachers
- To upgrade serving teachers
Self-intiated (both content and pedagogy Learning
- For new roles
- For new policy intiatines
- For new issues relating to curriculm.

- Short term courses
- Long term courses
- Attachments
- Visits
- Exchange Programes
- International Initiatives

Teacher Development

Fig :- Curriculum Framework for quality Teacher Education, NCTE

NCTE ने सेवापूर्ण एवं सेवारत अध्यापकों की शिक्षा हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिये। अध्यापक शिक्षा को व्यापक और सतत् प्रक्रिया के रूप अभिकल्पित करने की योजना भी प्रस्तुत की । अध्यापकों के व्यावसायिक विकास पर भी बल दिया। शिक्षाविदों के अनुसार अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में चार प्रमुख घटक अवश्य होने चाहिए। वह चार प्रमुख घटक इस प्रकार है–

1. व्यक्तित्व विकास

2. आत्म विकास एवं व्यावसायिक विकास में विषय में प्रेरणा एवं वचनबद्धत्ता।

3. सामाजिक यथार्थता के प्रति जागरूकता

4. सम्प्रेषण एवं मूल्यांकन कौशल

सन् 2009 ई. में NCRE ने पुनः अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम की राष्ट्रीय रूपरेखा का ड्राफ्ट तैयार किया। यह प्रारूप NCF-2005 विद्यालीय शिक्षा में आये परिवर्तनों तथा समसामयिक परिदृश्य को ध्यान में रखकर तैयार किया गया। इस प्रारूप में आरम्भिक शिक्षण, प्रशिक्षण कार्यक्रम के तीन प्रमुख घटक निर्धारित किये गये। जो इस प्रकार है–

शिक्षण-प्रशिक्षण
पाठ्यक्रम के क्षेत्र

शिक्षा के आधार (Foundations of Education)	पाठ्यक्रम और शिक्षण शास्त्र के सिद्धान्त	विद्यालय संपर्कता School Internship
बाल अध्ययन (Child Studies)	पाठ्यक्रम अध्ययन (Curriculm studies)	विद्यालय संपर्क कार्यक्रम (School contact Programme)
समसामयिक अध्ययन (Contemporary Studies)	शिक्षण शास्त्र अध्ययन (Pedagogical Studies)	बालकों का निरीक्षण (Observing Children)
शैक्षिक अध्ययन (Educational Studies)		बाल साहित्य एवं कथा कथन (Children's Literature & Story telling)
		सर्जनात्मक, ड्रामा, कला एवं संगीत (Creative drama craft & Music)
		शिक्षण अधिगम सामग्री का निर्माण एवं मूल्यांकन (Teaching - Learning Material Development & Evaluation)
		कक्षा प्रबन्धन एवं शिक्षण (Classroom Management and teaching)
		शिक्षण शास्त्र एवं अधिगम

के नवाचार केन्द्रों का
निरीक्षण
(Visit to innovatie
centers of pedagogy &
learning)
कक्षा आधारित शोध
परियोजना
(Classroom based
Research Project)

क्षेत्र I–शिक्षा के आधार

पाठ्यक्रम में इस क्षेत्र के अन्तर्गत ऐसे विषयों का समावेश होता है जिससे कि भावी अध्यापक स्वयं को एक व्यक्ति एवं अध्यापक के रूप समझ सके तथा बालक के विकास एवं अधिगम प्रक्रिया को सामाजिक और सांस्कृतिक प्ररिप्रेक्ष्य में समझ सके। इस क्षेत्र के अन्तर्गत निम्न तीन उपक्षेत्र आते है–

1. बाल अध्ययन–इस क्षेत्र के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार पर तीन या चार पाठ्यक्रम निर्धारित किये गये हैं जो निम्न विषयों को समझने के लिए आधार प्रदान करते हैं।

- बाल्यावस्था
- बालविकास
- अधिगम

कार्याशालाओं, सम्मेलनों, प्रदत्त कार्य आदि के द्वारा सेवापूर्ण अध्यापकों को निम्न अवसर दिये जाने चाहिए–

विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्तर, सांस्कृतिक, भाषायी एवं क्षेत्रीय संदर्भों में बालकों का कक्षा एवं खेल के मैदान में निरीक्षण एवं अध्ययन।

बालकों की अधिगम एवं चिन्तन प्रक्रिया का विश्लेषण।

विकास के सतत क्रम को समझने के लिए बालकों की प्राकृतिक एवं सामाजिक घटनाओं के प्रति निरीक्षण एवं जिज्ञासाओं का

बोध करना।

2. समसामयिक अध्ययन–इस उपक्षेत्र के अन्तर्गत एक या दो पाठ्यक्रम ऐसे होने चाहिए जो भावी अध्यापकों के कक्षा को सामाजिक परिदृश्य में समझ सके और समसामयिक भारतीय समाज के मुद्दों को समझ सकें। जैसे कि–

- समाज में शिक्षक एवं अधिगमकर्ता
- संवेदनशील एवं विवेचनात्मक सामाजिक मुद्दे यथा
  - –मानव एवं बाल विकास
  - –पर्यावरण एवं विकास
  - –सांस्कृतिक विविधता
  - –शिक्षा का अधिकार
  - –लिंग
  - –समता
  - –गरीबी एवं कुपोषण
  - –आरक्षित वर्ग एवं वंचित वर्ग
- शैक्षिक चिन्तकों के विचार यथा
  - गांधी
  - टैगोर
  - कृष्णमूर्ति
  - डिवी
  - गिजूभाई बधेका
  - विनोबा भावे
  - सिस्टर निवेदिता आदि

इसके लिए कार्यशाला सम्मेलन के साथ विभिन्न मुद्दों पर आधारित परियोजना छात्राध्यापको को दी जानी चाहिए। जिससे कि वे–

शिक्षा पर भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक प्रभावों को समझ सकें।

अन्त:क्रियात्मक प्रक्रिया द्वारा अपने ज्ञान एवं संप्रत्ययों का मूल्यांकन कर सकें।

विचारों, मतो एवं आस्थाओं के आदान-प्रदान से अपेक्षित अभिवृत्तियों एवं मूल्यों का विकास कर सकें।

3. शैक्षिक अध्ययन–इसके अन्तर्गत एक या अधिक पाठ्यक्रमों का समावेश होना चाहिए जिससे कि निम्न विषयों को समझा जा सके–

शिक्षा के उद्देश्य, ज्ञान एवं मूल्य

अध्यापक के रूप में स्वयं एवं आकांक्षाओं का विकास

इन विषयों पर व्याख्यान परिचर्चा, संवाद, स्वाध्याय, सम्मेलन आदि आयोजित करके भावी अध्यापकों को निम्न बातों को समझने में सहायता होगी–

शिक्षा एक सतत विकासात्मक प्रक्रिया है।

शिक्षा आत्मान्वेषण प्रक्रिया है।

मोक्ष के रूप में शिक्षा (शोषण, अन्याय, लिंगभेद, साम्प्रदायिकता आदि से मुक्ति)

स्वयं आस-पास एवं वैश्विक संदर्भ का चिन्तन।

शिक्षा अनुभवों के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है।

कलात्मक एवं रचनात्मक क्रियाओं का आयोजन करके छात्राध्यापक निम्न बातों की पहचान कर सकते हैं–

आत्मविकास

स्वयं की शक्तियाँ एवं न्यूनताएँ

परानुभूति एवं सामाजिक संवेदनशीलता

स्वयं की महत्वाकांक्षाएँ

व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक संघर्ष

सिद्धान्त, अनुभव एवं यथार्थ

क्षेत्र II पाठ्यक्रम एवं शिक्षणशास्त्र सिद्धान्त

इस क्षेत्र के अन्तर्गत ज्ञान आधारित दो या अधिक पाठ्यक्रम समायोजित किये जा सकते हैं। जिससे कि भावी अध्यापकों को व्यावसायिक विकास हेतु पाठ्यक्रम एवं शिक्षण शास्त्र का समुचित ज्ञान हो सके।

व्याख्यान, कार्यशाला के साथ-साथ अन्वेषणात्मक परियोजनाएँ एवं प्रयोगात्मक कार्यों को भी पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। जिससे कि छात्राध्यापक–

विद्यालयी पाठ्यक्रम को समझ सकें।

यह जान सके कि ज्ञान अनुभव द्वारा प्राप्त विषयों की प्रकृति एवं उनके सामाजिक एवं पर्यावरणीय संदर्भों को समझ सकें।

पाठ्यक्रम का मूल्यांकन कर सकें।

पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण कर सकें।

विद्यालयी ज्ञान को सामुदायिक जीवन से जोड़ सके।

विचारों, अनुभवों एवं व्यावसायिक कौशलों को समन्वित एवं संगठित कर सकें।

कक्षा सम्बन्धी क्रियात्मक अनुसंधान कर सकें।

छात्रों के अधिगम एवं उपलब्धि का आकलन कर सकें।

क्षेत्र III प्रयोग एवं विद्यालयी संपर्क

इस क्षेत्र के अन्तर्गत भावी अध्यापकों को ऐसी क्रियाओं एवं गतिविधियों में संलग्न किया जाता है जिससे की अध्यापक शिक्षा के सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक पक्षों को व्यवहार रूप में प्रयुक्त कर सके। इसके लिए अनेक प्रकार की गतिविधियों को प्रस्तावित किया गया है जिनमें से प्रमुख गतिविधियाँ इस प्रकार हैं–

प्रायोगिक शिक्षण

समय-सारिणी का निर्माण

शिक्षण सामग्री एवं सहायक सामग्री का निर्माण

कक्षा प्रबन्धन

छात्रों की उपलब्धियों का मापन एवं मूल्यांकन

विद्यालीय रिकार्ड के रख-रखाव का अध्ययन

पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन

क्रियात्मक अनुसंधान

इन गतिविधियों एवं प्रयोगात्मक कार्यों के द्वारा छात्राध्यापकों में निम्नलिखित क्षमताओं एवं ज्ञान का विकास होता है–

अध्यापक की वास्तविक भूमिका से अवगत हो सकेंगे।

बदलते संदर्भों में अध्यापकों का सशक्तिकरण हो सकेगा।

अध्यापक शिक्षा के निर्देशात्मक उद्यम नहीं अपितु एक स्वतंत्र, मानवीय, अनुक्रियाशक्ति प्रक्रिया है जो समावेशित शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करती है।

शिक्षण एवं अन्त: क्रियात्मक, बहुआयामी, उद्देश्यपूर्ण एवं सामाजिक प्रक्रिया है।

कक्षा शिक्षण अधिगम क्रियाओं को आयोजित की प्रक्रिया है।

विचारशील एवं सफल अध्यापक बनने की गुणों का विकास होता है।

इस प्रकार ये क्षेत्र अध्यापक शिक्षा को समसामयिक संदर्भो को उन्नत बनाने के प्रयास करते हैं। सभी शिक्षक प्रशिक्षक कार्यक्रमों इनका समावेश उचित प्रकार से किया जाना चाहिए जिससे की विचारशील एवं मानवीय अध्यापक समाज को प्राप्त हो सके।

सूचना प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षक शिक्षा का स्वरूप

प्रो. रमेश प्रसाद पाठक
शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

परिवर्तन ही प्रकृति का शाश्वत् नियम है। शिक्षा और समाज दोनों ही इस सार्वभौमिक नियम के प्रभाव से अछूते नही है। आज का युग सूचना प्रौद्योगिकी व तकनीकी का युग है। और शिक्षक शिक्षा जगत में भी इनका प्रयोग बढता जा रहा है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया व मल्टीमीडिया के साधनों ने एक और जहाँ शिक्षक अधिगम प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया है वहीं दूसरी और विश्व के सम्पूर्ण देशो के लिए वैश्विक शिक्षा कि संकल्पना को साकार रूप देने में मदद की है। वास्तव में आज भारतीय शिक्षक शिक्षा का प्रौद्योगिकी आधारित हो जाना वर्तमान समय की आवश्यकता बन गयी है। परन्तु सीमित संसाधनों के रहते हम इसे कितना सफल बना पाएंगे यह विचार करने का विषय है। शिक्षा को सूचना प्रौद्योगिकी आधारित बनाने में शिक्षक सृजनात्मक भूमिका निभा सकते है और उन्हें इस सन्दर्भ में प्रशिक्षित किये जाने की जरूरत है। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में मल्टीमीडिया सामग्री के निर्माण की प्रक्रिया एवं शिक्षक प्रशिक्षकों एवं शिक्षको द्वारा इनके व्यवहारिक प्रयोग को बड़े पैमाने पर शामिल किया जाना चाहिए।

सूचना तकनीकी विकास के लम्बे सफर के बाद आज हम इस मुकाम पर पहुॅचे है जहां सम्पूर्ण विश्व एक वैश्विक ग्राम में परिवर्तित हो गया है, दुरियां समीपता में परिवर्तित हो गयी है, और आधुनिक संचार साधनों ने शिक्षा विभाग में महत्वपूर्ण स्थान ले लिया है। वर्तमान में सूचना के अभाव में कोई भी कार्य करना सम्भव नही है। जीवन के विविध क्षेत्रों में सभी व्यक्तियों को सूचना व संचार साधनो की आवश्यकता महसूस होती है। आज सूचना प्रौद्योगिकी का चहुँ ओर

प्रभुत्व है। दिन प्रतिदिन कम्प्यूटर इन्टरनेट आदि इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की गूंज आसमान छू रही है।

आधुनिक दृश्य-श्रव्य शिक्षण सामग्री शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बन गयी है। आधुनिक शिक्षा जगत में सूचना प्रौद्योगिकी की अभिव्यक्ति का सशक्त साधन मल्टीमिडिया व इलैक्ट्रॉनिक मीडिया है। शिक्षा में इन साधनो का प्रयोग करते हुए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाया जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप शिक्षक शिक्षा में सूचना प्रौद्योगिकी व तकनीकी की उपादेयता बढ़ जाती है। वर्तमान में शिक्षण शिक्षा में तकनीकी व संचार साधनो का प्रचूर मात्रा में प्रयोग हो रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी, सम्प्रेषण की आधुनिक विधियॉ व मल्टीमीडिया शिक्षक शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया को जीवन्त बनाए हुए है। ऐसे में शिक्षको का दायित्वबोध व कर्तव्य निष्ठता में वृद्धि हो जाना स्वाभाविक है। शिक्षको को आधुनिक संचार साधनों व माध्यमो के उपयोग में दक्ष होना अनिवार्य है ताकि शिक्षण अधिगम व्यवस्था उचित रिति से होते हुए शिक्षण तक पहुॅच सके

सूचना प्रौद्योगिकी व संचार तकनीकी ने शिक्षक शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों (औपचारिक, अनौपचारिक व निरौपचारिक शिक्षा) को प्रभावित किया है। औपचारिक शिक्षक शिक्षा के अन्तर्गत विद्यालयी शिक्षा, शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों, व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा में संचालित शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया आज व्यापक पैमाने पर इसका प्रयोग कर रही है। और शिक्षा के गुणात्मक सम्वर्धन हेतु यह एक अनिवार्य शर्त भी है।

सूचना प्रौद्योगिकी व संचार साधनों ने शिक्षण शिक्षा के साथ -साथ ग्रामीण क्षेत्रों में वैज्ञानिक अनुसंधानो में, जनगणना में, स्वास्थ्य, राजकीय सेवाओं, कृषि, इन्जीनियरिंग, सांस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक विज्ञान व मानविकी आदि विविध क्षेत्रो में असीम सम्भावनाओं को जागृत किया है। विकसित समाज को सुनिश्चित करने के लिए सूचना, शिक्षा और संचार की इसमें महत्वपूर्ण व निर्णायक भूमिका होती है। शिक्षक शिक्षा की प्रक्रिया को गुणात्मक बनाने हेतु मल्टीमीडिया साधनों

का उपयोग नितान्त आवश्यक है।

शिक्षक शिक्षा में मुद्रित व अमुद्रित माध्यम सभी साधनों का प्रयोग शिक्षक शिक्षा को प्रभावशाली बनाने के लिए किया जाता है। आधुनिक शिक्षक शिक्षा में ज्ञान के साधन संचार तकनीकों व सूचना प्रौद्योगिकी ने नये आयामो का आविर्भाव किया है जिसके अन्तर्गत पी. एस. आई., सी. ए. आई., कम्प्यूटर, इन्टरनेट, ई-मेल, सी. डी. रोम, रेडियोविजन, सैटेलाइट सम्प्रेषण आदि शैक्षिक उपकरणो का मल्टीमीडिया के माध्यम से ज्ञानार्जन सम्भव होना सुनिश्चित हुआ हैं।

अत: हम कह सकते है कि शिक्षक शिक्षा हो या किसी भी प्रकार की शिक्षा में गुणात्मक वृद्धि के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का होना नितान्त आवश्यक है जिसके बिना हम आज के इस युग में गुणात्मक शिक्षा को प्राप्त नहीं कर सकते। सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में ज्ञान का आधार सूचना के नित नवीन आयामों से जुड़ गया है। वैश्वीकरण और आविष्कारों के आधार पर अध्यापक को भी परम्परागत व्यवस्था से आगे बढ़कर प्रौद्योगिकी के अत्याधुनिक उपकरणों का सहयोग लेकर शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावकारी बनाना चाहिए। अध्यापक शिक्षा में हो रहे नवाचारों से हमे अपने को जोड़ना होगा। अब चाक-टाक की जगह पेन और माउस को पकड़ना होगा। अध्यापक शिक्षा में गुणात्मक विकास हेतु परम्परागत शिक्षण के साथ सूचना प्रौद्योगिकी का समन्वय करके भविष्य की थाली में अद्यतन ज्ञान परोसने का उपक्रम करना होगा अन्यथा बहुत पीछे रह जायेगे। इन्हीं बिन्दुओं को आत्मसात करके अध्यापक शिक्षा का गुणात्मक विकास कर सकते हैं।

पाठ्यक्रम विकास के स्वरूप एवं आधार -अध्यापक शिक्षा के सन्दर्भ में

डॉ. अमिता पाण्डेय भारद्वाज
सहायकाचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

तकनालॉजी के बदलते आयामों से अभिभूत शिक्षा का वैश्विक परिदृश्य, तेजी से क्रान्तिकारी परिवर्तन की ओर बढ़ रहा है जिसका प्रभाव अध्यापक शिक्षा में भी परिलक्षित हो रहा है। इससे अध्यापक शिक्षा का आकार, प्रकार एवं स्वरूप महत्वपूर्ण रूप में विकास की नई धाराओं का संस्पर्श कर रहा है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप शिक्षा के प्रतिमानों में भी परिवर्तन अवश्यमभावी है जिसमें मुख्यत: शिक्षक-केन्द्रित से छात्र-केन्द्रित विधियों, नियत अभिकल्प (stable design) से नमनीय प्रक्रिया (Flexible process), शिक्षक निर्देशन्व निर्णय से अधिगमकर्ता की स्वायत्त्ता, अधिगम के निष्क्रिय ग्रहण से अधिगम में सक्रिय सहभागिता, कक्षा की चहार दीवारी में अधिगम से व्यापक सामाजिक संदर्भ में अधिगम आदि पर बल है। इन मुख्य प्रतिमान परिवर्तनों से नूतन प्रवृतियों का उद्‌भव होता है। जिन्हें अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में समावेशित करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है किसी भी स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम की संरचना दो महत्वपूर्ण सिद्धान्तों से अनुप्रेरित होती है। प्रथम, शैक्षणिक व्यवस्था के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों से अनुरूपता रखना तथा द्वितीय अधिगमकर्ता, समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं एवं आदर्शो से अनुरूपता रखना। अत: पाठ्यक्रम ऐसा साधन है जिसकी सहायता से हम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकते है। प्रस्तुत पत्रक में पाठ्यक्रम के संरचनात्मक स्वरूप एवं उसके अभिनव आधारों को इस उभरते शैक्षिक परिदृश्य में रेखांकित किया गया है।

किसी भी आदर्श पाठ्यक्रम के संरचनात्मक स्वरूप के पाँच मुख्य घटक होते है यथा: उद्देश्य निरूपण, पाठ्य-वस्तु निर्धारण, क्रियान्वयन विधियाँ, मूल्यांकन विधियाँ एवं अध्ययन सामग्री की सन्दर्भित सूची। अध्यापक शिक्षा में नूतन प्रवृत्तियों के फलस्वरूप इन पाँचों संरचनात्मक तत्त्वों में भी परिवर्तन अपेक्षित है। प्रथम घटक-उद्देश्य निरूपण के अन्तर्गत अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रमों का उद्देश्य मानवीय संवेदना युक्त अध्यापकों का निर्माण करना है जिनमें विषय ज्ञान के साथ-साथ कार्य कौशलों, तकनीकी एवं कोमल कौशलों में भी दक्षता हो। इन उद्दश्यों को प्राप्त करने हेतु अन्तर्अनुशासनात्मक उपागम पर केन्द्रित विषयों का निर्धारण, द्वितीय तत्त्व जिसमें सिद्धान्त की अपेक्षा व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल हो। इन विषयों के अन्तर्गत पाठ्य-वस्तु की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आवश्यकता एवं प्रासंगिकता के आधार पर चयन व उसके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों पर बल का निर्धारण कार्य क्षेत्र के आधार पर करना अपेक्षित है। NCF for TE-2009 ने बी. एड. पाठ्यक्रम में तीन अनुक्षेत्रों के अपनायें जाने की संस्तुति की है। वे है-शिक्षा का आधाार जिसमें अधिगमकर्त्ता का अध्ययन एवं शैक्षिक अध्ययन, द्वितीय, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण शास्त्र जिसमें पाठ्यक्रम अध्ययन, शिक्षणशास्त्र अध्ययन और मूल्यांकन एवं आंकलन अध्ययन सम्मिलित है तथा तृतीय, विद्यालय इन्टर्नशिप। इसके अतिरिक्त शिक्षक की संवेदनशीलता, सहृदयता एवं विषय में गहरी जानकारी के साथ-साथ स्वअनुशासन एवं मूल्य आधारित प्रतिभाग की क्षमताओं का विकास भी अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में विशेषरूप से समाविष्ट होना चाहिए। इस प्रकार पाठ्यक्रम का स्वरूप सूचना एवं ज्ञान परक न होकर उसे क्रिया व अनुभव परक बनाना होगा। इसके लिये योजना विधि पर आधारित स्थानीय एवं आंचलिक महत्व की योजनाओं एवं क्रियाओं को पाठ्यक्रम में विशेषरूप से रेखांकित करना होगा। इससे अध्यापक शिक्षा की संस्थाओं एवं विद्यालयों में परस्पर आदान-प्रदान के आधार पर उनके सम्बन्धों को सहज एवं मजबूत बनाना होगा। तृतीय घटक जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है, वह क्रियान्विति से सम्बन्धित है। यह कहने में संकोच नही होना चाहिए कि शिक्षा के हर स्तर पर सैद्धान्तिक

जानकारियों का व्यावहारिक रूप में क्रियान्वयन अत्यन्त सतही एवं निष्प्रभावी ढंग से होता रहा है। इस क्रम में अध्यापक शिक्षा में क्रियान्विति का पक्ष बहुत ही दुर्बल एवं असक्षम रूप धारण किये हुए है। क्रियान्विति को केन्द्र में लाने के लिये क्रियान्वयन की युक्तियों को विशेषरूप में अपनाये जाने की आवश्यकता है। क्रियान्वयन विधियों के कुछ पक्ष निम्नलिखित है-प्रथम शिक्षा द्वारा व्यावहारिक परिस्थितियों में ज्ञान एवं कौशल के उपयोग को बढ़ावा देना। द्वितीय शिक्षक द्वारा अधिगम परिस्थितियों के सम्यक् प्रबन्धन हेतु परिस्थिति जन्य समस्याओं एवं अवरोधकों को स्वाट- विश्लेषण द्वारा चिन्हित करना होगा। इसी क्रम में शिक्षक को विद्यार्थियों की दक्षता एवं अभिप्रेरणा के स्तरों को भी जानने व समझने की जरूरत है जिसे can do-will do विश्लेषण के माध्यम से अपेक्षाकृत प्रभावी रूप दिया जा सकता है। तृतीय शिक्षण अधिगम परिस्थितियों में प्रभाविता लाने की दृष्टि से समय-2 पर विशेष प्रकार की रणनीतियों एवं युक्तियों को व्यवस्था के साथ आत्मसात करना होगा।

चतुर्थ घटक मूल्यांकन एवं अनुश्रवन से सम्बन्धित है। मूल्यांकन का महत्वपूर्ण सूत्र है अभीष्ट उद्देश्यों की प्रभावी सम्प्राप्ति सुनिश्चित करने के उद्देश्यों से सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के तरीकों को अपनाना। विगत तीन दशकों में निर्माणात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन की अवधारणायें विकसित हुई है जिनके समुचित उपयोग से शिक्षण-अधिगम व्यवस्थाओं का प्रभावी रूप में अनुश्रवन सम्भव है। इसके अलावा मानक-सन्दर्भित एवं निकष-सन्दर्भित परीक्षण की पद्धतियों को भी विशेष स्थान देना होगा जिससे उपलब्धियों की व्याख्या एवं उनका महत्व एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जा सके।

पाँचवे घटक में सन्दर्भित विषय पर आधारित ग्रन्थों, शिक्षण-अधिगम की सामग्रियों एवं विशेष रूप में निर्मित कम्प्यूटर समर्थित व्यवस्थाओं को प्रोत्साहित करना होगा। इस प्रकार के संसाधनों से स्वाधीन अध्ययन की आदतों का विकास सुनिश्चित हो सकेगा तथा विद्यार्थी अपनी पहल पर अनेकानेक अधिगम सामाग्रियों से लाभन्वित हो सकेगा।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के अभिनव आधार

अध्यापक शिक्षा को औपचारिकता एवं रसम अदायगी के स्तर से हटा कर अनुभव, ज्ञान, कौशल एवं मूल्यो की आधार भूमि पर प्रतिष्ठित करना होगा जिसके लिये कतिपय अभिनव आधार अपरिहार्य होगे। ये है-

- जीवन कौशल एवं जीवन की परिस्थितियों से तादात्मय रखने वाली व्यवस्थाओं का सृजन।

- क्षमता संवर्द्धन की दृष्टि से नये पाठ्यक्रमों को विकसित करना।

- मुद्दे आधारित विषयों यथाः पर्यावरण शिक्षा, नारी शिक्षा, शान्ति शिक्षा, सशक्तिकरण, मानवाधिकार आदि पर केन्द्रित पाठ्यक्रम।

- पाठ्यक्रम में अन्तर्अनुशासनात्मक उपागम के आधार पर विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, मानविकी, तकनॉलॉजी आदि विषयों से सम्बन्धित प्रकरणों को उजागर करना।

- विद्यालयों की अपेक्षाओं के अनुसार दीर्घ अवधि के इन्टर्नशिप एवं विद्यालय सम्बद्धीकरण (attachment) की योजनाओं को महत्त्वपूर्ण रूप से स्थान देना जिससे अध्यापक शिक्षा के प्राध्यापकों विशेषज्ञों तथा विद्यालयों के अनुभवी शिक्षकों के मध्य अन्तर सहयोग एवं परिसंवाद के आधार दृढ़ हो सके।

- अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में सम्प्रेषण तकनीकी अथवा सम्प्रेषण समर्थित उपकरणों के साथ-साथ शिक्षण की प्रभाविता से प्रत्यक्षतः जुड़ी अभिक्षमताओं एवं कौशलों का समावेश।

- अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में भारतीय संविधान की आकांक्षाओं के अनुसार समता, न्याय एवं शैक्षिक अवसरों की समानताओं को बढ़ावा देने के उद्देश्य से पाठ्यक्रमों में विविधता, शिक्षण विधियों में उद्देश्य अनुकूलता तथा परीक्षण में दक्षता आधारित एवं मानव मूल्यों पर केन्द्रित प्रवीणताओं को विशेषरूप से प्रतिबिम्बित करना होगा।

प्रस्तुत पत्रक में जिन बिन्दुओं को विशेषरूप से सारंकित किया गया है वे अध्यापक शिक्षा एवं विद्यालयीय शिक्षा के लिए तैयार किये गये (एन॰ सी॰ एफ॰ NCF) के दस्तावेजों से सम्बन्धित है। यहाँ विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि इन दस्तावेजो में दर्शायी गई युक्तियों को स्थानीय, आंचलिक तथा राष्ट्रीय स्तरों पर प्रभाविता के दायरे में लाने के लिये उनमें विशेष परिवर्द्धन एवं संशोधन की आवश्यकता होगी। इसके लिये अध्यापक शिक्षा के जुड़े विशेषज्ञों को अध्यापक शिक्षा की शीर्ष संस्थाओं के माध्यम से क्रियान्विति सुनिश्चित करने के लिये प्रभावी रूप से पहल करनी होगी। इसके साथ-साथ अध्यापक शिक्षकों एवं सेवारत् व सेवापूर्व शिक्षकों को दृढ़-संकल्पित होकर व्यक्तिगत एवं सांस्थानिक स्तरों पर पहल एवं प्रयास करने होगें जिससे वे क्षमता संवर्द्धन के आयामों को नया आकार प्रदान कर सकेगे।

सन्दर्भ

- नेशनल कॅरीकूल्म फ्रेमवर्क -2005, एन॰ सी॰ ई॰ आर॰ टी॰ प्रकाशन, नई दिल्ली।
- नेशनल करीकूल्म फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन-2009, एन॰ सी॰ टी॰ ई॰, नई दिल्ली।
- पाण्डेय के॰ पी॰, शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (2007)।

जैनशिक्षा-पद्धति की वर्तमान में प्रासंगिकता

प्रेमलता

एम.एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति का एकाग्र रूप से अध्ययन करने की दृष्टि से जैन शिक्षा पद्धति का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

भारत में श्रमण और ब्राह्मण (या वैदिक) शिक्षा पद्धतियो का समानान्तर विकास हुआ है। श्रमण परम्परा के अन्तर्गत ही जैन और बाद में बौद्ध शिक्षा पद्धति, विकसित हुई। प्राचीन भारत में शिक्षा का विकास मूलतः ब्राह्मण और श्रमण विचारधारा जैन और बौद्ध दो धाराओं में विभक्त हो गयी। फलस्वरूप शिक्षा का भी तीन धाराओं में विकास हुआ-

1. वैदिक शिक्षा पद्धति
2. जैन शिक्षा पद्धति
3. बौद्ध शिक्षा पद्धति

जैन शिक्षा वैदिक शिक्षा की तरह निःश्रेयस् या मोक्ष मूलक रही है, किन्तु वैदिक शिक्षा के साथ अनेक समानताएँ होने पर भी जैनशिक्षा के स्वरूप में पर्याप्त अन्तर है। वैदिकशिक्षा जिस प्रकार ऋषियों पर केन्द्रित थी, उसी प्रकार जैन शिक्षा के केन्द्र भी मुनि या श्रमण थे। किन्तु ऋषियों की तरह आश्रम-व्यवस्था स्वीकार न करने के कारण जैन शिक्षा का स्वरूप वैदिक शिक्षा से भिन्न रूप में विकसित हुआ। आश्रम पद्धति को स्वीकार न करने के कारण जैन शिक्षा के प्रायः वैसे केन्द्र न बन सके, जैसे कि ऋषियों के आश्रम या तपोवन के रूप में वैदिक शिक्षा में विकसित हुए, बाद में मन्दिर, तीर्थ, स्वाध्यायशाला आदि के रूप में जैन परम्परा और शिक्षा संस्थानों का विकास हुआ।

जैन परम्परा में पाँच परमेष्ठी माने गए हैं। इन्हें ही वास्तविक गुरू माना गया है। अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँच परमेष्ठियों के रूप में परिणमन किया गया है। उपाध्याय का कार्य मुख्य रूप से शिक्षा का होता था।

जैन शिक्षा पद्धति में शिक्षण की सोलह विधियाँ बताई गई हैं-

1. निसर्ग विधि
2. अधिगम विधि
3. निक्षेप विधि
4. प्रमाण विधि
5. नय विधि
6. (क) स्वाध्याय विधि (ख) प्रश्नोत्तर विधि
7. पाठ विधि
8. श्रवण विधि
9. पद विधि
10. पदार्थ विधि
11. प्ररूपणा विधि
12. उपक्रम विधि
13. व्याख्या विधि
14. शास्त्रार्थ विधि
15. कथा, रूपक, तुलना उदाहरण विधि
16. संगोष्ठी विधि।

जैन परम्परा में शिक्षण विधि का व्यवस्थित क्रम सदाकाल से चला आ रहा है। भगवान महावीर ने कहा था- जैसे पक्षी अपने शावकों को चारा देते हैं, वैसे ही नित्य प्रतिदिन और प्रतिरात शिक्षा देनी चाहिए।[1]

---

1. श्री आचारांगसूत्रम्. 1/6/3, पृ0 106 :संपादक शोभाचन्द्र भारिल्ल श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धुलिया, नवम्बर 1960

1. निसर्ग विधि[2]–निसर्ग का अर्थ- स्वभाव। स्वयंप्रज्ञ व्यक्ति को आचार्य द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं रहती। प्राप्त जीवन में वे स्वतः ही ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न विषयों को पूर्व संस्कारवश सीखते जाते हैं- तत्त्वों का सम्यक् बोध स्वतः प्राप्त करते हैं। उनका जीवन ही प्रयोगशाला होता है। यह निसर्ग विधि है।

2. अधिगम विधि[3]–अधिगम का अर्थ-पदार्थ का ज्ञान। दूसरों के उपदेशपूर्वक पदार्थों का जो ज्ञान होता है, वह अधिगमज कहलाता है।

इस विधि के द्वारा प्रतिभावान तथा अल्पप्रतिभा युक्त सभी प्रकार के व्यक्ति तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं। निसर्ग विधि में प्रज्ञावान व्यक्ति की प्रज्ञा का स्फुरण स्वतः होता है किन्तु अधिगम विधि में गुरू का होना अनिवार्य है। गुरू के उपदेश से जीवन और जगत् के तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करना, यही अधिगम विधि है।

अधिगम विधि के दो भेद हैं-

1. स्वार्थाधिगम
2. परार्थाधिगम

3. निक्षेप विधि–संकेत-काल में जिस वस्तु के बोध के लिए जो शब्द गढ़ा जाता है वह वही रहे तब कोई समस्या नहीं आती। किन्तु ऐसा होता नहीं। वह आगे चलकर अपने क्षेत्र को विशाल बना लेता है। उससे फिर उलझन पैदा होती है और वह शब्द इष्ट अर्थ की जानकारी देने की क्षमता खो बैठता है। इस समस्या का समाधाान पाने के लिए निक्षेप पद्धति है।

जैन ग्रन्थों में निक्षेप का सामान्य लक्षण इस प्रकार है- संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रूप वस्तु को निकालकर जो निश्चय में

---

2. 'निसर्गः स्वभावः इत्यर्थः। यद्बाह्योपदेशादृते प्रादुर्भवति तन्नैसर्गिकम्।' (सर्वार्थसिद्धि, 1/3/12/3) 'निसृज्यत इति निसर्गः प्रवर्ततम्' । सर्वार्थसिद्धि 1/9/326/6 राजवार्तिक, 1/3/22/16 तथा 6/9/2/516/2
3. अधिगमोर्थावबोधः। यत्परोपदेशपूर्वकं जीवाद्यगमनिमित्तं तदुत्तम्। सर्वार्थसिद्धि), 1/3/12

क्षेपण करता है उसे निक्षेप कहते है।[4]

अर्थात् जो अनिर्णीत वस्तु का नामादिक द्वारा निर्णय करावे, उसे निक्षेप कहते हैं। निक्षेप का दूसरा नाम न्यास भी है। तत्त्वार्थसूत्रकार[5] ने निक्षेप के स्थान पर न्यास शब्द का प्रयोग किया है।

4. प्रमाण विधि[6]- संशय आदि से रहित वस्तु का पूर्ण रूप से ज्ञान कराना प्रमाण विधि है। इस विधि के अन्तर्गत ज्ञेय वस्तु के विषय में सम्पूर्ण जानकारी दी जाती है।

जैन आचार्यों ने प्रमाण का विस्तृत विवेचन किया है। सर्वार्थसिद्धि में प्रमाण की परिभाषा इस प्रकार दी गई है। ''जो अच्छी तरह मान करता है, जिसके द्वारा अच्छी तरह मान किया जाता है या प्रमितिमात्र प्रमाण है।''[7] कसायपाहुड के अनुसार- ''जिसके द्वारा पदार्थ जाना जाए, उसे प्रमाण कहते हैं।[8]

5. नय विधि–वक्ता के अभिप्राय या वस्तु के एकांशग्राही ज्ञान को नय कहते हैं।

धवलाकार ने नय का निरूक्त्यर्थ इस प्रकार दिया है- जो उच्चारण किए गए अर्थपद और उसमें किए गए निक्षेप को देखकर अर्थात् समझ कर पदार्थ को ठीक निर्णय तक पहुँचा देता है, इसलिए वह नय कहलाता है।[9]

---

4. धवला 4/3, 1/2/6, 1/1, 1, 1/10/4, 13/5, 3, 5/3/11, 13/5, 5, 3/198/4 – कयासपाहुडं 2/1/475/425/7
5. नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्नयासः-तत्त्वार्थसूत्र, 1/5, पृ0 11, विवेचनकर्ता पं0 फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री। षट्खण्डागम 13/5, 5। सू0 4/198, – धवला 1/1 ,1 ,1/83/1
6. प्रकर्षेण मानं प्रमाणं, सकलादेशीत्यर्थः। धवला भाग 9, 4/1 ,45/166/1
7. प्रमिणोति प्रमीयते अनेन प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम्। 1. सर्वार्थसिद्धि 1, /10, 98/2 2. राजवार्तिक, 1/10/1/49/13
8. प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्। कसायपाहुड 1/1/1, 27/37/6। आप्तपरीक्षा 8। सयाद्वादमंजरी, 20/307/18। न्यायदीपिका 1/10/11।
9. धवला 1/1, 1/3, 4/10

तत्त्वार्थाधिगमभाष्य में भी- जीवादि पदार्थो को जो ले जाते हैं, प्राप्त कराते हैं, बनाते हैं, अवभास कराते हैं, उपलब्ध कराते हैं, प्रकट कराते हैं, उसे नय कहते हैं।[10]

मूलभूत नय दो हैं-

1. द्रव्यार्थिकनय

2. पर्यायार्थिकनय।

द्रव्य नित्य है, अतएव नित्यता को ग्रहण करने वाला नय द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। पर्याय अनित्य है, अत: पर्याय को ग्रहण करने वाला नय पर्यायार्थिक नय कहलाता है।

6. (क) स्वाध्याय विधि–विशिष्ट ज्ञान प्राप्ति के लिए स्वाध्याय विधि का उपयोग किया जाता था। आचार्य जिनसेन ने स्वाध्याय की महिमा का वर्णन महापुराण में इस प्रकार किया है- 'स्वाध्यायेन मनोरोधस्ततो क्षाणां विमिर्जय..........' अर्थात् स्वाध्याय करने से मन का निरोध होता है और मन का निरोध होने से इन्द्रियों का निरोध होता है।

तत्त्वार्थसूत्र में स्वाध्याय के लिए पाँच तरीके बताये गये हैं- वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशा:[11] अर्थात्

1. वाचना 2. पृच्छना 3. अनुप्रेक्षा

4. आम्नाय 5. धर्मोपदेश

ये पाँच प्रकार के स्वाध्याय हैं।

1. वाचना-भव्य जीवों के लिए शक्त्यनुसार ग्रन्थ की प्ररूपणा एवं शिष्यों को पढ़ाने का नाम वाचना है।[12]

---

10. तत्त्वाथाधिगम भाष्य, 1/35
11. तत्त्वार्थसूत्र 9/25, पृ0 434 : विवेचक पं0 फूलचन्द्र सिद्धान्ताशास्त्री। (पंचविहे सज्झाये पण्णत्ते, तं जहा-वाचणा1, पुच्छणा2, परियट्टणा3, अनुप्पेहा4, धम्मकहा5।। सूत्र 27।।)- स्थानांगसूत्रम् (चतुर्थोभाग:)
12. 'शिष्याध्यापनं वाचनां - धवला 94, 1-54, 252/6

2. पृच्छना-संशय का उच्छेद करने के लिए अथवा निश्चित विषय को पृष्ट करने के लिए प्रश्न करना पृच्छना है।[13]

3. अनुप्रेक्षा-सुने हुए अर्थ का श्रुत के अनुसार चिन्तन करने को भी अनुप्रेक्षा कहते हैं।[14]

4. आम्नाय-उच्चारण की शुद्धिपूर्वक पाठ को पुनः पुनः दोहराना आम्नाय है।[15]

5. धर्मोपदेश-इस विधि का उपयोग उसी समय किया जाता है, जब शिष्य प्रौढ़ हो जाता है और उसका मस्तिष्क विकसित हो प्रमुख विषयों को ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। आदिपुराण में आदि तीर्थंकर इसी विधि के अन्तर्गत लिया जा सकता है।[16]

6. **(ख) प्रश्नोत्तर विधि**- प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग जैन वाङ्.मय में कई जगह आया है। अनेक प्रकार के प्रश्न उपस्थित कर उन प्रश्नों के उत्तर द्वारा विषयों का अध्ययन कराना तथा समस्या पूर्तियों या पहेलियों द्वारा बुद्धि को तीक्ष्ण करना इसका उद्देश्य है। यद्यपि इस विधि को पृच्छना के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है। यहाँ ज्ञानवर्द्धन हेतु कतिपय प्रश्नों और उत्तरों को प्रस्तुत किया जाता है-

वट वृक्षः पुरो यं ते धनच्छायः स्थितो महान्।
इत्युक्तोपि न तं धर्मेश्रितः कोऽपिवदाद्धतम् ॥[17]

(स्पष्टान्धकम्)

उपनिषदों की शिक्षा एवं समयसार की शिक्षा प्रश्नोत्तर विधि से ही सम्पन्न की जाती थी।

---

13. संशयोच्छेदाय निश्चितबलाधानाय वा परानुयोगः पृच्छना। सर्वार्थसिद्धि 9/25/443/4
14. कम्मणिज्जरणट्ठगट्ठि- मज्जाणुगयस्स सुदणाणस्स परिमलणमणुपेक्खणा णाम। -धवला 9/4, 1, 55/263/1 सुदत्थस्स सुदाणुसारेण चिन्तणमणुपेहणं णाम। धवला 14, 46, 14/9/5
15. 'घेष शुद्धं परिवर्तनमाम्नायः' - सर्वार्थ सिद्धि 9/25/443/5, तत्त्वार्थसार, 7/19, अनगार धर्मामृत 7/87/716
16. आदिपुराण (महापुराण) 21/96, 23/69-72, 24/85-180।
17. महापुराण, 12/226

7. पाठ विधि–गुरू शिष्यों को पाठविधि द्वारा अंक और अक्षर-ज्ञान की शिक्षा देता है। वह किसी काष्ठ पटिट्का के ऊपर अंक या अक्षर लिख देता है। शिष्य उन अक्षरों या अंकों का अनुकरण करता है। बार-बार उन्हें लिखकर कण्ठस्थ करता है। आजकल भी यह शिक्षा प्राथमिक शालाओं (प्राइमरी स्कूलों) में दी जाती है। ऋषभदेव ने अपनी कन्याओं को इसी विधि से शिक्षित किया था। यथा-

इत्युक्त्वा मुहुराशास्य विस्तीर्णे हेमपट्ठके।
अधिवास्य स्वचितस्थां श्रुतदेवीं सपर्यया ॥
विभुः करद्वयेनाभ्यां लिखन्नक्षरमालिकाम्।
उपादिशल्लिपिं संख्यास्थानं चांकेरनुक्रमात् ॥[18]

इस विधि में मूलतः तीन शिक्षा तत्त्व परिगणित हैं-

1. उच्चारण की स्पष्टता
2. लेखन कला का अभ्यास
3. तर्कात्मक संख्या प्रणाली

8. श्रवण विधि–जिनभद्र गणी ने अपने विशेषावश्यकभाष्य[19] ग्रन्थ मे श्रवण विधि में सात तरह से श्रवण के तरीकों का उल्लेख किया है।

सर्वप्रथम गुरु के मुख से चुप होकर सुने, दूसरी बार उसे हाँ करके स्वीकार करें। तीसरी बार 'बहुत अच्छा' कहकर अनुमोदन करें। पाँचवी बार उस विषय की मीमांसा करें। छठी बार उक्त प्रसंग को पूरी तरह पारायण कर लें और सातवीं बार गुरू के समान स्वयं उस विषय को अभिव्यक्त करें। शिक्षा के किसी भी विषय-विशेष मे पारंगत होने का यह क्रम है। इससे विवक्षित विषय का पूरा व्याख्यान करने को शिष्य पूरी तरह समर्थ हो जाता है।

9. पद विधि–'पद्यन्ते ज्ञायन्तेऽनेनेति पदम्'- जिसके द्वारा (अर्थ) जाना जाता है, वह पद है।[20] जिसका जिसमें अवस्थान है वह पद

---

18. महापुराण, षोडश पर्व, 103-104, पृ0 355
19. विशेषावश्यकभाष्य, सं0 डॉ0 नथमल टाटिया, पृ0 168-69
20. न्यायबिन्दु, टीका 1/7/140/19

अर्थात् स्थान कहलाता है।[21]

इसके पाँच भेद-

1. नामिक 2. नैपातिक 3. औपसर्गिक 4. आख्यानिक और 5. मिश्र।

10. पदार्थ विधि–द्रव्य और भावपूर्वक पदों की आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत करना इस विधि का लक्ष्य है। वैदिक परम्परा में वेद के अध्ययन के हेतु स्वर पाठविधि का जिस प्रकार प्रचलन था उसी प्रकार पदार्थविधि द्वारा आगमों के अध्ययन के लिए इस विधि का उपयोग किया जाता था।

11. प्ररूपणा विधि- वाच्य-वाचक, प्रतिपाद्य-प्रतिपादक एवं विषय-विषयी भाव की दृष्टि से शब्दों का आख्यान करना प्ररूपणा विधि है।

प्ररूपणा विधि के आठ भेद हैं[22]-

1. सत् 2. संख्या 3. क्षेत्र
4. स्पर्शन 5. काल 6. अन्तर
7. भाव 8. अल्प बहुत्व।

12. उपक्रम विधि[23]–जिसके द्वारा श्रोता प्राभृत (शास्त्र) को उपक्रम्यते अर्थात् समीप करता है उसे उपक्रम कहते हैं।

जिन मनुष्यों ने किसी शास्त्र के नाम, आनुपूर्वी, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाकार नहीं जाने हैं वे उस शास्त्र के पठन-पाठन आदि क्रियाफल के लिए प्रवृत्ति नहीं करते हैं। अर्थात् नाम आदि जाने बिना मनुष्यों की प्रवृत्ति प्राभृत के पाठन में नहीं होती है, अतः उनकी प्रवृत्ति कराने के लिए उपक्रम कहा जाता है।

---

21. जस्स जम्हि अवट्ठाण तस्स तं पदं पयत गम्यते परिच्छिद्यते इति पदं।-धवला, 10/4,2,4,1/18/6 जैनेन्द्रसिद्धान्त कोश भाग 3, पृ.5
22. सर्वार्थसिद्धि 1/8
23. कसायपाहुड (जयधवला) 1/9/11/7

13. व्याख्या विधि[24]–शब्दों द्वारा सामान्य या विशेष रूप से जितना भी व्याख्यान किया जाता है वह सब भाषा के अन्तर्गत आता है। भाषा ही अभिव्यक्ति का माध्यम है।

व्यक्ति की वाणी द्वारा सामान्य सीधी-साधी अभिव्यक्ति ही भाषा है। विभाषा अभिव्यक्ति या व्याख्या की ऊपर की कड़ी है। इसमें पर्यायवाची शब्दों द्वारा मूल का विशेष व्याख्यान किया जाता है।

विभाषा के सम्बन्ध में धवलाकार लिखते हैं-

'विविहा भासा विहासा, परूपणा निरूपणा वक्खाणमिदि एयट्ठो।'

अर्थात् विविध प्रकार के भाषण अथवा कथन करने को विभाषा कहते है।[25] विभाषा, प्ररूपणा, निरूपण ओर व्याख्यान से सब एकार्थक नाम हैं।

14. शास्त्रार्थ विधि–शास्त्रार्थ विधि प्राचीन शिक्षा पद्धति की एक प्रमुख विधि है। इस विधि में पूर्व और उत्तर पक्ष की स्थानापूर्वक विषयों की जानकारी प्राप्त की जाती है। एक ही तथ्य की उपलब्धि विभिन्न के तर्कों, विकल्पों और बौद्धिक प्रयोगों द्वारा की जाती है।

जैन वाङ्मय में शास्त्रार्थ के दो रूप उपलब्ध होते हैं- 1 पत्र परीक्षा 2. ग्रन्थ परीक्षा। शास्त्रार्थ का दूसरा नाम विजिगीषु कथा है।

15. कथा, रूपक, तुलना उदाहरण विधि–प्राचीन जैन वाङ्मय में भी वैदिक और बौद्ध साहित्य की तरह कथा रूपक, तुलना, उदाहरणादि से दर्शन, न्याय, नीति आदि की शिक्षा देने के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। गुरू को किस प्रकार अपने गुरूकुल में शिष्य को अच्छी तरह परीक्षण कर स्थान देना चाहिए और किस प्रकार उसे उचित शिक्षा देनी चाहिए। इसके लिए विशेषावश्यकभाष्य और आवश्यक निर्युक्ति की एक गाथा से स्पष्ट है-

---

24. विशेषावश्यकभाष्य (श्रीमज्जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण विरचितं श्रीमत्कोटयाचार्यकृतवृत्त विभूषितम्), संपादक डॉ0 नथमल टाटिया, प्रथम सं0 पृ0 351-52
25. धवला- 6, 1, 9-1, 3/5/3

गोणी चंदण कंथा चेडीसो सा वए वहिर गोहे।

टंकण ववहारो पडिवक्खो आयरिय-सीसे ।।[26]

16. संगोष्ठी विधि—पुराणों के अध्ययन से पता चलता है कि प्राचीन काल में आधुनिक काल की तरह संगोष्ठी (सेमिनार) का आयोजन होता था जिसमें नाना प्रकार की विद्याओं के सम्बन्ध में चर्चाएँ होती थी। विद्या संवाद गोष्ठी (आदिपुराण 7/65) में सभी विद्याओं की चर्चा-वार्ता होती थी। दर्शन, काव्य, कथा, कामशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, व्याकरण, गणित, ज्योतिष, भूगोल, प्रभृति विषयों की चर्चा की जाती थी। गोष्ठियो के पुरातन रूप का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि विद्या संवाद गोष्ठी में ग्यारह या पन्द्रह सदस्य भाग लेते थे। एक-एक विद्या का जानकार एक-एक विद्वान होता था। ये सभी विद्वान शास्त्रार्थ-शास्त्र चर्चा वीतराग कथा के रूप मे करते थे।[27]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं-

1. प्राचीन भारत में ब्राह्मण और श्रमण शिक्षा पद्धतियों का समानान्तर रूप में विकास हुआ।

2. जैन शिक्षा पद्धति में श्रमण या साधु शिक्षा के केन्द्र अवश्य थे, किन्तु आचार विषयक नियमों के कारण वे एक-स्थान पर स्थिर होकर नहीं रह सकते थे।

3. ब्राह्मण शिक्षा पद्धति में शिक्षा प्रवृत्तिमूलक थी, जबकि श्रमण शिक्षा निवृत्तिमूलक।

4. जैन शिक्षा मूलतः मोक्षमूलक थी, किन्तु उसका उद्देश्य, सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन एवं सम्यक्चारित्र द्वारा व्यक्तित्व का समग्र विकास करना था।

---

26. (क) विशेषावश्यकभाष्यम् ।। 1437 ।। निर्युक्ति 131, (ख) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका 46/136। विशेष सन्दर्भ मूल टीका में
27. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत : डॉ0 नेमिचन्द्रशास्त्री, पृ0 250

5. जैन शिक्षा पद्धति में शिक्षा विधि की अपनी विशेषताएँ थी।

6. जैन शिक्षा बहुआयामी थी। ज्ञान विज्ञान का कोई विषय जैन आचार्यो ने अछूता नहीं छोड़ा।

7. जैन शिक्षा पद्धति में शिक्षा के माध्यम के विषय मे किसी भाषा विशेष पर आग्रह नहीं देखा जाता। विश्व के पहले शिक्षाशास्त्री जैनाचार्य हैं।

जिन्होंने सर्वप्रथम शिक्षा का माध्यम मातृभाषा एवं लोकभाषाओं को बनाने में विशेष योगदान दिया । कारण है कि उस समय की लोकभाषाओं को बनाने में विशेष बल दिया। यही कारण है कि उस समय भी लोकभाषाओं- अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश आदि में उन्होंने यथेष्ट साहित्य का सृजन भी किया। जिसके आधार पर अधिकारपूर्वक कहा जा सकता है कि आधुनिक बुनियादी शिक्षा (Basic Education) के मूल बीज का वपन आज से 2500 वर्ष पूर्व उन्होंने कर दिया था।

वर्तमान में प्रासंगिकता

आज वर्तमान में हम यदि जैन शिक्षा के तत्त्वों का अपनी आधुनिक शिक्षा पद्धति में समावेश करें तो हम काफी हद तक शिक्षा में व्याप्त विसंगतियो से निजात पा सकते हैं जैसे- जैन शिक्षा के गुरू की महत्ता निस्प्रेय थी, आज वर्तमान में इसकी एक बहुत बड़ी महत्ता है। देश में हिंसा, झूठ, चोरी अपराध इतना भयंकर बढा हुआ है, परन्तु दूसरी तरफ जैन नैतिक शिक्षा का प्रभाव जन-जीवन पर इतना अधिक हुआ कि सहस्रों वर्षो के बाद आज भी जैन धर्मावलम्बियों में अपराध वृत्ति नहीं के बराबर देखी है।[28] यह तथ्य सर्वेक्षण द्वारा भी प्रमाणित हुए हैं।[29] यह नैतिक शिक्षा का ही प्रभाव है कि जैन परम्परा में शाकाहार को ही प्रतिष्ठा मिली तथा मादक द्रव्यों का कठोरतापूर्वक

---

28. Mrs. Sinclair Stevenson, M.A.], Sc.D. : The Heart of Jainism, Chapter 2 P. 20, O.U.P. 1915
29. Dr. Vilas Adinath Sangave : Jain Community : A Social Survey. P. 341, Popular Book Depot, Bombay, 1959

निषेध किया। आज मनुष्यो में तनाव (Dipression) का प्रभाव अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है, अगर हम उन सब से तनावमुक्त होने के लिए जैन शिक्षा पद्धति की चर्या (अहिंसा, तप, स्वाध्याय, संयम) को अपने जीवन में थोड़ा-बहुत भी उतार लें तो हम तनाव (Dipression) की मूल जड़ को दूर कर सकते हैं।

सहायक ग्रन्थ

1. आदिपुराण (आचार्य जिनसेन) भाग 1, 2, हिन्दी अनुवाद, पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, द्वितीय सं0, 1963 ई0।
2. महापुराण (जिनसेन गुणभद्र), भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण, भाग 1 से 3, 1951-54।
3. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग 1 से 4 : क्षु0 जिनेन्द्र वर्णी भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सन् 1971 ई0।
4. महापुराण (पुष्पदन्तकृत) संपादक पी0 एल0 वैद्य, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई।
5. अनगार धर्मामृत (पं0 आशाधर), स्वोपज्ञ टीका सहित, माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई, 1919 ई0।
6. स्याद्वादमंजरी (मल्लिसेन)
   (क) आगमोदय समिति भावनगर।
   (ख) हेमचन्द्र सूरि, परमश्रुत प्रभावक मण्डल, मम्बई 1935 ई0।
7. विशेषावश्यकभाष्य (जिन्भद्र), भाग 1, 2
   (क) जिनेन्द्रगणि क्षमा श्रमण, ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, 1936-37 ई0।
   (ख) हेमचन्द्र टीका सहित, प्र0 जैन ग्रन्थमाला (नि0 सं0 2427-41) बनारस।
   (ग) गुजराती अनुवाद, गुज0 अ0 स0, आगमोदय समिति, बम्बई 1924-27।
8. तत्त्वार्थसूत्र (आचार्य उमास्वामि), पं0 फूलचन्द्र कृत भूमिका व अनुवाद, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, 1955 ई0
9. कसायपाहुड (जयधवला टीकासहित), जैन संघ, मथुरा, 1944 ई0।
10. षट्खण्डागम (धवलाटीका) भाग 1 से 16 : संपादक डॉ0 हीरालाल जैन, अमरावती संस्करण, 1939-1959 ई0।,
11. स्थानांगसूत्र
   (क) आगमोदय समिति, अहमदाबाद
   (ख) अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानवासी जैन सभा, राजकोट

(ग) सेठ माणिकलाल चुन्नीलाल व कान्तिलाल, अहमदाबाद, 1937 ई0
12. आवश्यकनिर्युक्ति (आचार्य भद्रबाहु) आगमोदय समिति, मेहसाणा सन् 1917
13. आचारांग (आयारांग) : सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई, वि0 सं0 1935।
14. सर्वार्थसिद्धि (टीका) पूज्यपादकृत, शोलापुर, 1939 ई0।
15. राजवार्तिक (तत्त्वार्थवार्तिक) अकलंककृत टीका व हिन्दी सारांश सहित, भाग 1, 2, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, 1949 व 1957 ई0।
16. धवला टीका, भाग 1 से 16 : संपादक डॉ0 हीरालाल जैन, अमरावती, संस्करण, 1939-1949 ई0।
17. आप्तपरीक्षा, आचार्य विद्यानन्दी, वीरसेवा मन्दिर दरियागंज, दिल्ली।
18. न्यायदीपिका- सम्पादक दरबारी लाल कोठिया, वीरसेवा मन्दिर दरियागंज, दिल्ली।
19. तत्त्वार्थाधिगम भाष्य- उमास्वाति, परमश्रुत प्रभवक मण्डल, बम्बई, 1932 ।
20. तत्त्वार्थसार- आचार्य अमृतचन्द्रसूरि, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1970
21. न्यायबिन्दु, टीका हिन्दी-अनुवाद, श्री निवासशास्त्री, साहित्य भण्डार मेरठ।
22. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत नेमिचन्द्रशास्त्री, वाराणसी, 1968।
23. जैन वाङ्मय में शिक्षा के तत्त्व, डॉ0 निशानन्द शर्मा, प्रकाशन प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान वैशाली (बिहार) 1988 ई0

भारत में शैक्षिक अनुसन्धान की उदीयमान प्रवृत्तियाँ

सरिता

शोध छात्रा, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

हमारे देश में शैक्षिक अनुसन्धान की अवधारणा नई है। यहा पर शैक्षिक विषयों का अध्ययन एक विषय के रूप में, विश्वविद्यालय के स्तर पर 20वीं शताब्दी के चालीसवें दशक तक शुरू नहीं हुआ था। विश्वविद्यालय शिक्षा में शिक्षा का स्थान अन्य विज्ञान तथा समाजिक विषयों की अपेक्षा नगण्य ही था। शिक्षा विषय का अध्ययन व्यावसायिक विषयों, जैसे चिकित्सा (Medicine), इन्जीनियरिंग (Engineering) एवं विधि-शास्त्र (Ethic) की तरह से ही था। लेकिन दुर्भाग्यवश इन विधियों की तरह शिक्षा का अध्ययन अध्यापक-शिक्षा के रूप में ही माना जाता रहा (यह वकील या चिकित्सक के प्रशिक्षण से सर्वथा भिन्न है)। विभिन्न श्रेणियों में अनुपस्थित एवं विषयों में शिक्षण प्रवक्ता तथा छात्रों की उपलब्धि का मापन करने के लिए विभिन्न प्रयास किए गए तथा छात्रों का निर्माण किया गया। इस प्रकार शिक्षा में हमें अच्छे शोध या अनुसन्धान का प्रमाण मिलता है।

शिक्षा में अनुसन्धान की आवश्यकता

शिक्षा के क्षेत्र में अनुसन्धान की अवधारणा को महत्व देना होगा शैक्षिक अनुसन्धान अन्य अनुसन्धानों की भाँति शिक्षा सिद्धान्तों तथा विधियों पर आधारित होगा। एक विषय के रूप में शिक्षा में विज्ञान की अपेक्षा तकनीकी गुणों का अधिक समावेश है और इसीलिए शिक्षा में किसी अन्य विज्ञान के उन सभी प्रत्ययों, विधियों और मापनी का प्रयोग किया जा सकता है। एक या अधिक विज्ञान की विधियों का प्रयोग करके शैक्षिक समस्या का शोध अध्ययन के रूप में प्रस्तुत किया जाता

है।

(1) तकनीकी–इसमें शिक्षा से तात्पर्य शैक्षिक प्रयोग अर्थात् शिक्षण-अधिगम से है जो कि शिक्षा विषय का मुख्य अंग है इसके अतिरिक्त शिक्षा विषय का सम्बन्ध उत्पादन, वितरण एवं किसी व्यक्ति का प्रबन्ध, प्रविधि और सहायक की सहायता से जो शैक्षिक प्रक्रिया को विकास अग्रसरित करने में सहायक होती है। अतः शोध अध्ययन का उद्देश्य शिक्षण अधिगम का विकास ही होना चाहिए। तथा शिक्षण का मुख्य केन्द्र शिक्षण अधिगम प्रक्रिया है, शिक्षा के क्षेत्र में शोध अध्ययन की उपयोगिता स्पष्ट है, चाहे क्षेत्र मनोविज्ञान, सामाजिक विज्ञान, तकनीकी या अर्थशास्त्र का क्षेत्र हो इसका प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि अनुसन्धान का उद्देश्य शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया है, यदि शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया का ज्ञान ठीक से नहीं है तो शिक्षा में शोध शैक्षिक-अधिगम प्रक्रिया के उचित ज्ञान एवं प्रयोगों पर ही निर्भर है। शिक्षा में सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है तदर्थ उपागमों, जो केवल व्यक्तिगत दृष्टिकोण (Preconceived Notions) पर आधारित है उनसे शिक्षा में सुधार सम्भव है। शिक्षा के क्षेत्र में भौतिक (Fundamental)तथा क्रियात्मक (Applied) दोनों ही प्रकार के अनुसन्धान शोध हो सकते हैं।

(2) शिक्षण–शिक्षा और अधिगम को कला की संज्ञा दी जाती है। अन्य सभी कलाओं की भाँति शिक्षण और अधिगम भी क्रिया है। अधिगम की परिभाषा व्यवहार के रूप में करने पर अनुसन्धान के क्षेत्र में उन चरों का चिन्तन, पहचान, विच्छेदन, मापन तथा कार्यान्वयन (Manipulation) करना सम्भव है जो उस व्यवहार को उत्पन्न करने तथा बनाये रखने में सहायक है। इन चरों में मुख्य चर शिक्षक तथा छात्र हैं। अन्य चर व्यक्तिगत तथा समूहों में औपचारिक एवं अनौपचारिक सम्बन्धों में होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ चर पुस्तकों, पाठ्यक्रमों तथा मूल्यांकन हेतु सहायक साम्रगी में भी होते है। शिक्षण-अधािगम में अनुसन्धान के लिए शिक्षा में उन सभी कारकों का अध्ययन आवश्यक है जो शिक्षण-अधिगम को सुधार सकें।

(3) शिक्षण-अधिगम–इस क्षेत्र में अधिकतर मौलिक अनुसन्धान

हैं जो कि मनोवैज्ञानिक हैं, लेकिन बहुत सी शोध समस्याएँ क्रियात्मक भी हैं। अभिक्रमित अनुदेशन की प्रभावशीलता के परीक्षण क्षेत्र-एक शिक्षक विद्यालय अप्रशिक्षित तथा कम प्रशिक्षित शिक्षकों के विद्यालय में शिक्षकों में परीक्षण प्रौढ-शिक्षा है। अभिक्रमित अनुदेशन का प्रयोग प्रतिभाशाली पिछड़े हुए शिक्षकों व छात्रों के लिए किया जा सकता हैं।

(4) सभी शिक्षा अनुसन्धान शिक्षण–अधिगम के अनुसन्धान नहीं है। बहुत सी अन्य आधारभूत एवं क्रियात्मक समस्यायें भी है। जिसमें शोध की आवश्यकता है। यन्त्रों का निर्माण भी एक मुख्य समस्या है। चरित्र का निर्माण, ज्ञान का परिवर्तन, कौशल, योग्यता, रूचि एवं अभिवृत्तियॉ भी स्कूलों की आधारभूत समस्यायें है। भाषा की समस्या भी है किस स्तर पर किस उम्र में कौन सी भाषा का कैसा समन्वय हो यह भी अनुसन्धान का एक प्रमुख अंग है।

(5) आधुनिक समय में शिक्षा–शिक्षा का स्वरूप व्यवसाय है। भारत जैसे विकासशील देश में न तो अति उन्नत शिक्षा व्यवसाय की कल्पना की जा सकती है। न ही आश्रम व्यवस्था की भाँति तेजस्वी शिक्षकों की शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन शिक्षा के इस पहलु को व्यवसाय मानते हैं। अतः शैक्षिक अनुसन्धान शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया तथा ज्ञान के व्यवसाय दोनों ही ओर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(6) शोध के साधनों की अपेक्षा–शोध की विधियों तथा समस्याओं का चिन्तन अधिक सरल है परन्तु शिक्षा साधनों के अभाव में अच्छी शोध समस्याओं का भी अभाव है, शिक्षा अनुसन्धान के लिए शिक्षा में बजट का कम से कम पांच प्रतिशत अनुससन्धान के लिए निर्धारित करना आपश्यक है।

भारतवर्ष में शैक्षिक अनुसन्धान की आवश्कता हेतु मान्यताएँ

(1) शैक्षिक प्रत्ययों का आगमन विदेशों से हुआ है, अतः प्रत्ययों का अर्थ अपने देश के अनुरूप करना होगा।

(2) जनसाधारण की शिक्षा ने अनेकों प्रकार की समस्यायें उत्पन्न कर दी हैं। इन पर शोध करना आवश्यक हो गया है।

(3) भारतीय सामाजिक मूल्यों, विचारों में तीर्व गति से परिवर्तन हो रहा है। भारतीय शिक्षा की पुनर्रचना करने के लिए शोध निष्कर्ष आवश्यक हैं।

(4) भारतीय संविधान में चौदह वर्ष तक के आयु के बालकों को अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था है। इसके परिणामस्वरूप नवीन समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। इन पर शोध करना अपेक्षित हो गया है।

(5) शिक्षा प्रणाली में प्रजातान्त्रिक मूल्यों की सुरक्षा होनी आवश्यक है। इसलिए शिक्षा में परिवर्तन शोध निष्कर्षो के आधार पर ही किया जा सकता है।

(6) भारतीय संविधान में सभी को शिक्षा प्राप्ति के समान अवसर की व्यवस्था है। अत: विविध प्रकार के पाठ्यक्रमों को सम्मिलित करने से सभी प्रकार के छात्रों को सुविधा प्रदान की जा सकती है।

अनुसन्धान के प्रकार

(1) वर्णनात्मक अनुसन्धान।

(2) ऐतिहासिक अनुसन्धान।

(3) प्रयोगशालागत प्रयोग अनुसन्धान।

(4) क्षेत्र प्रयोग।

(5) क्षेत्र अध्ययन।

(6) प्रयोगात्मक सिमुलेशन।

शिक्षा अनुसन्धान में प्राथमिकता का निर्धारण

(1) शिक्षा दर्शन–यह शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अनुसन्धान का क्षेत्र है जो शिक्षा के स्तरों पर किये गये हैं। उनमें 'भारतीय चिन्तकों के शिक्षा में योगदान' का अध्ययन किया गया है। इसके प्रमुख क्षेत्र–

(1) अध्यापक शिक्षा का दर्शन।

(2) आधुनिक पाठ्यक्रमों की प्रवृत्ति के दार्शनिक आधार।

(3) शिक्षा के उद्देश्यों, मूल्यों में परिवर्तन।

(4) भारतीय चिन्तकों के अनुसार दिशा-दर्शन में मानवतावाद।

(5) आधुनिक शिक्षा के स्वरूप का दार्शनिक आधार।

(2) शिक्षा मनोविज्ञान–शिक्षा अनुसन्धान के क्षेत्र में अधिकांश अनुसन्धान इसी क्षेत्र में हुए हैं। अधिकांश शोध कार्यों में मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक चरों में सह-सम्बन्ध का अध्ययन किया गया है, इसके अन्तर्गत कक्षा अधिगम, शोध कार्यों का नियोजन, अभिप्रेरणा, पुनर्बलन, व्यक्तिगत विभिन्नता का व परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है।

(3) शिक्षा के सामाजिक आधार–यह क्षेत्र शिक्षा अनुसन्धान की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है, इसमें सामाजिक परिवर्तन पर अध्ययन कर शिक्षा क्षेत्र में परिणत किया जाता है।

(4) शिक्षण विधि–शिक्षा क्षेत्र में यह सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है इसमें निम्न पक्षों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(1) शिक्षण विधि, शिक्षण विधि के सन्दर्भ में।

(2) शिक्षण प्रविधियाँ।

(3) शिक्षण विधि एवं प्रविधि, अधिगम के स्वरूप के सन्दर्भ में।

(4) सुधारात्मक शिक्षण।

(5) शिक्षण आव्यूह का विकास।

(5) पाठ्यक्रम–इस क्षेत्र में आज भी अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। इस क्षेत्र में निम्न पक्षों पर ध्यान देना भी अनिवार्य है।

(अ) शिक्षा के विभिन्न (क्षेत्रों) स्तरों पर पाठ्यक्रम में परिवर्तन की आवश्यकता।

(ब) शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम के विकास की प्रवृत्ति।

(स) पाठ्यक्रम के परिवर्तन में अवरोध।

(द) राष्ट्रीय पाठ्यक्रम।

(य) अध्यापक शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम।

(6) शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन-

आज के सन्दर्भ में इन नवीन क्षेत्रों को शोध के अन्तर्गत सम्मिलित करने की आवयकता है।

(अ) शिक्षा की महत्वपूर्ण उपलब्धियों को पहचानना और इन्हें व्यावहारिक रूप में लिखना।

(ब) छात्रों के व्यवहार परिवर्तन का मूल्यांकन करने के लिए मानदण्ड परीक्षाओं का निर्माण करना।

(स) विद्यालय तथा छात्रों की उपलब्धियों का समग्र रूप में मूल्यांकन करना।

(7) अध्यापक शिक्षा–अध्यापक शिक्षा के लिए भी अभी उचित प्रकार के शोधकार्य नही किये गये हैं, जो हुए हैं वे भी कक्षागत नही हैं अर्थात् कक्षागत शोधकार्यो के नियोजन की आवश्यकता है।

अध्यापक शिक्षा के सन्दर्भ में निम्न तथ्यों पर प्राथमिकता दी जायें।

(1) अध्यापक शिक्षा का दर्शन।

(2) प्रभावशाली शिक्षकों के लिए मानदण्ड।

(3) कक्षा की शाब्दिक तथा अशाब्दिक क्रिया का अध्ययन।

(4) शिक्षण कौशलों का विकास।

(5) अध्यापक कक्षा के प्रतिमानों का मूल्यांकन एवं विकास।

(6) अध्यापक शिक्षा का पाठ्यक्रम।

(8) शिक्षा निर्देशन–शिक्षा का यह क्षेत्र भी शोध की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है, परन्तु भारत में इस क्षेत्र में कार्य नहीं हुए हैं। इस क्षेत्र में अधिक शोध कार्य करने की आवश्यकता है।

(9) शिक्षा प्रशासन व अर्थव्यवस्था–इस क्षेत्र पर भी अनुसन्धान किये गये हैं। किन्तु अभी अधिक व्यापक क्षेत्र में करने की आवश्यकता है, इसके अन्तर्गत नियोजन, प्रशासन तथा कुछ विद्यालय भवन में साज सज्जा से सम्बन्धित हैं।

(10) शिक्षा अनुसन्धान के महत्वपूर्ण क्षेत्र–कुछ महत्वूपर्ण बिन्दु इस प्रकार से है जिन पर विशेष तौर पर अनुसन्धान किये जामे की आवश्यकता है।

(1) शिक्षा तकनीकी, शिक्षण तकनीकी, अनुदेशन तकनीकीं एवं प्रणाली विश्लेषण।

(2) जनसंख्या शिक्षा।

(3) विकलांग बच्चों की शिक्षा।

(4) प्रतिभाशाली एवं पिछडे बालकों की शिक्षा।

(5) अध्यापक प्रभावशीलता तथा शिक्षण प्रभावशीलता।

(6) कक्षा वातावरण।

(7) पृष्ठपोषण प्रविधियॉं।

(8) विज्ञान शिक्षा।

(9) प्रौढ शिक्षा आदि।

शिक्षा अनुसन्धान में गुणात्मक विकास के लिए सुझाव

(1) शोधकर्ताओं को इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाए, जिससे उनकी विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। जैसे–शिक्षक, प्रशासक, शोधकर्ता आदि।

(2) शोध प्रक्रिया के प्रशिक्षण में शोध–क्रियाओं को शोधकर्ताओं में व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्ध स्थापित करने के कौशल का विकास किया जाये। शोध की उपयोगिता के लिए आव्यूह का विकास किया जाये।

(3) शोधकर्ताओं को शोध के सम्पादन के लिए विशिष्टीकरण के प्रशिक्षण का व्यापक आधार प्रदान किया जाये।

(4) शोध प्रशिक्षण में सामाजिक तथा सांस्कृतिक सन्दर्भ में शोध की व्याख्या करने की क्षमताओं का विकास किया जाये।

(5) शोध प्रशिक्षण के नियोजन में वैज्ञानिक तथा तकनीकी

विकास के प्रभाव को भी महत्व देना चाहिए।

(6) शोध प्रशिक्षण में शोध की प्रकृति तथा वैज्ञानिक प्रक्रिया को समझने पर बल देना चाहिए। शोधकर्ता में सर्जनात्मक क्षमताओं का विकास करना चाहिए एवं ज्ञान के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए।

(7) शोध-प्रशिक्षण का अभिविन्यास शोध समस्याओं की ओर किया जाये। शोध की प्रक्रिया तथा आव्यूह विकसित करने की क्षमताओं का विकास किया जाये।

(8) शोध-प्रशिक्षण में सैद्धान्तिक विश्लेषण को पर्याप्त महत्व देना चाहिए। सम्प्रेषण कौशलों का समुचित विकास करना चाहिए।

(9) शोधकर्ताओं को शोध सम्पादन सम्बन्धी त्रुटियों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए तथा उनके निवारण सम्बन्धी उपचार तथा सावधानियों का भी बोध होना चाहिए।

(10) शोधकर्ताओं को व्यावहारिक अनुभवों के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए, जिससे वे अपने शोध-प्रक्रिया का सम्पादन समुचित ढंग से कर सकें। विभिन्न प्रकार के शोध कार्यों एवं परिस्थितियों का अनुभव प्रदान किया जा सकता है।

(11) शोधकर्ताओं के लिए सतत् प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे उन्हें शोध की नवीन विधियों एवं प्रविधियों की जानकारी दी जा सके।

(12) शोध-प्रशिक्षण की व्यवस्था व्यापक रूप में की जानी चाहिए, जिससे गुणात्मक तथा परिमाणात्मक शोध की क्षमताओं का विकास किया जा सके। शोध के निष्कर्षों की वैधता को भी ध्यान रखना चाहिए।

अध्यापक शिक्षा का उभरता क्षितिज : सूचना प्रौद्योगिकी का शैक्षिक वैश्वीकरण

मायाराम उनियाल
शोध छात्र, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

मैं अरस्तु की उस बात से अपने मन्तव्य को प्रस्तुत करना चाहूँगा कि **Man is a Rational Animal (मनुष्य एक सभ्य पशु है)।** हाँ शिक्षा ही तो है जो उसे सभ्यता और संस्कारों की ओर उन्मुख करती है। वस्तुतः शिक्षा की निष्पत्ति है–एक सुसंस्कृत समाज का जन्म। लेकिन वर्तमान शिक्षा से हमें क्या प्राप्त हो रहा है? एक स्वार्थी, एक लालची, एक अहंकारी और एक बेचारा मनुष्य। तो आज की इस शिक्षा का उद्देश्य क्या है? मजदूरी? क्या आज शिक्षा साधना से साधन बन गई है?

आजकल प्रायः प्रत्येक मां-बाप चाहते हैं कि हमारा बेटा डॉक्टर बने, इन्जीनियर बने, पायलेट बने। क्यों? क्योंकि वह चाहता है कि वह ज्यादा से ज्यादा पैसा लूटकर ला सके। वह उसे अध्यापक नहीं बनाना चाहते क्योंकि शिक्षण कार्य एक गरिमामय कार्य है। इसकी गरिमा बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है।

सच्चा शिक्षक जीवनपर्यन्त छात्र बना रहता है, उसे चिन्ता होती है, उसे पीडा होती है कि आज की इस पीढ़ी को क्या नया ज्ञान दूँ। प्रत्येक कक्षा उसके लिए चुनौती है। उसे छटपटाहट होती है वर्तमान समाज को देखते हुए।

यहाँ पर मैं एक उद्धरण प्रस्तुत करना चाहूँगा एक बार नरेन्द्र जी (जो बाद में स्वामी विवेकानन्द जी के नाम से प्रख्यात हुए) अपने गुरू स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी के साथ नदी स्नान के लिए जा रहे थे,
.... भगवान् कैसे मिलेंगे?

यदि यही छपटाहट आज के शिक्षक और छात्र में हो, तो वह समय दूर नहीं जब हम अपने देश को शिक्षा के क्षेत्र में नवीन क्रान्ति लाने में अग्रगण्य मानेंगे और उस शिक्षा रूपी बलविक्रम से यह भारत जग सिरमौर होगा।

शिक्षाशास्त्री डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् कहते हैं– **'जिस प्रकार एक पिता अपनी सन्तति को अपने संस्कार, विश्वास एवं परम्परायें हस्तान्तरित करता है, उसी प्रकार एक शिक्षक एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्पराओं व तकनीकी कौशलों के साधन के रूप में तथा सभ्यता की ज्योति को प्रज्ज्वलित रखने में सहायता प्रदान करता है।'**

मैं शैक्षिक एवं सामाजिक परिवर्तन के उन प्रमुख बिन्दुओं की ओर आप सभी का ध्यान केन्द्रित करना चाहता हूँ जो सूचना प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी, वर्तमान समय में विकसित समाज की दिशा एवं दशा सुधारने में आवश्यक कदम है, जिसकी अभिव्यक्ति में बहुमाध्यम और जनमाध्यम (Multimedia & Mass Media) एक महती भूमिका का निर्वाह करतं हैं।

वैश्वीकरण के दौर में ज्ञान के साधन P.S.I, C.A.I, कम्प्यूटर, इन्टरनेट्, रेडियोविजन, ब्रॉडकास्टिंग, सेटेलाइट सम्प्रेषण एवं मॉड्यूलर उपागम आदि शैक्षिक उपकरणों द्वारा ज्ञानार्जन होना सुनिश्चित हुआ है। परन्तु मुझे खेद है कि आज हम लोग इस तकनीकी का प्रयोग सुनिश्चित नहीं कर पाये हैं। कारण कुछ बिन्दुओं के माध्यम से आपको बताना चाहता हूँ–

- अध्यापक शिक्षा का पाठ्यक्रम सूचना प्रौद्योगिकी व मल्टीमडिया के सन्दर्भ में अपर्याप्त है।
- शिक्षक प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण का अभाव है।
- आधुनिक संचार व सूचना प्रौद्योगिकी के उपकरणों का अभाव।
- शैक्षिक नियोजन का दोषपूर्ण होना और प्रणाली विश्लेषण-के

प्रयोग में कमी।

• शिक्षण विषयों में तथा कक्षा-शिक्षण के दौरान मल्टीमीडिया साधनों का न्यूनतम प्रयोग।

• अध्यापक शिक्षा संस्थानों में संगठनात्मक वातावरण का अभाव।

• अधिकांश शिक्षक प्रशिक्षकों में मल्टीमीडिया कार्यक्रम के प्रति उदासीनता का भाव।

ऐसे अन्य अनेक कारक हैं जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षण के बाधक हैं। इन्हें दूर किया जाना नितान्त आवश्यक है। इसके लिए-

• अध्यापक शिक्षा को वैश्विक आवश्यकता के अनुरूप विकसित किया जाये।

• अध्यापक शिक्षा में सैद्धान्तिक व प्रायोगिक ज्ञान के एकीकरण पर बल देते हुए व्यावहारिक पक्ष को समुन्नत किया जाये।

• अध्यापक शिक्षा की गुणात्मक वृद्धि हेतु शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण की व्यवस्था हो। (Refresher Courses)

• अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हुए समान रूप से क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाये।

• अध्यापक शिक्षा के शैक्षिक वैश्वीकरण हेतु शिक्षक को सामान्य अध्यापक के स्थान पर शैक्षिक शिल्पकार एवं शैक्षिक अभियन्ता (Engineer) के रूप में तैयार करें।

इन सुझावों को दृष्टिगत रखते हुए अध्यापक शिक्षा के गुणात्मक संवर्धन की रूपरेखा निर्मित की जा सकती है।

मैं अन्त में अध्यक्ष महोदय से निवेदन करता हूँ कि मात्र सेमिनार करने से एवं U.G.C. को रिपोर्ट भेजने से कुछ नहीं होने वाला। आवश्यकता इसके क्रियान्वयन की है। आप एक ऐसा मंच तैयार करें जहाँ शिक्षक एवं छात्र एक साथ अपनी सर्जनात्मक क्षमता द्वारा नूतन शिक्षण-विधियों का सर्जन कर सकें, नई प्रणालियों का विकास कर

सकें। आजादी के 60 साल के बाद आज भी हम B.F. Skinner द्वारा 1954 में दिये गये अभिक्रमित अनुदेशन को उसी रूप में पढ़ते हैं और प्रयोग करते हैं। और निम्न पंक्तियों के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ–

जो अनपढ़ हैं उन्हें पढायें, जो चुप हैं उनको वाणी दें,
जो पिछड़े हैं उन्हें बढायें, प्यासी धरती को पानी दें।
हम मेहनत के दीप जलाकर, नया उजाला करना सीखें,
देश हमें देता है सबकुछ, हम भी तो कुछ देना सीखें।

संदर्भ

1. शिक्षा की आवश्यकतायें — डा. नरेश कुमार
2. अध्यापक शिक्षा — डा. जी. सी. भट्टाचार्य
3. अध्यापक शिक्षा में प्रायोगिक कार्य — प्रो. एम. के. शर्मा
4. शिक्षा एवं भारतीय समाज — डा. रामपाल सिंह वर्मा
5. शैक्षिक प्रगति विशेषांक — डा. रामशकल पाण्डेय (सम्पादक)
6. अध्यापक शिक्षा — डॉ. शिरीष पाल सिंह

गुरुकुल शिक्षा पद्धति की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

हर्षवर्धन वशिष्ठ
शाध छात्र, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

गुरुकुल शिक्षा पद्धति से अर्थ उस शिक्षा पद्धति से है जिसमें गुरु का घर ही स्कूल था। छात्र अपने गुरु के पास रहकर शिक्षा ग्रहण किया करते थे।

गुरु अपने शिष्यों को अपनी सन्तान मानते थे। शिष्य भी गुरु को माता-पिता से बढ़कर मानता था। वह यह अच्छी तरह समझता था कि पिता ने उसे शरीर देकर मनुष्य ही बनाया है, परन्तु गुरु उसे मनुष्यत्व से ऊपर उठाकर देवत्व की ओर ले जाता है। वह गुरु के प्रति असीम प्रेम तथा श्रद्धा रखता था। गुरुकुल में प्रवेश देने के पश्चात् गुरु अपने छात्र के मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकास का पूरा ध्यान रखता था। उसके वस्त्र, भोजन, निवास, मनोरंजन आदि की व्यवस्था ठीक उसी प्रकार करता था जिस प्रकार माता-पिता अपने पुत्र के लिए करते हैं। वास्तव में शिष्य गुरु परिवार में आकर गुरु के पुत्र के समान ही हो जाता था।

गुरु का कर्त्तव्य केवल पढ़ाना ही नहीं था उसका धर्म था कि वह प्रत्येक शिष्य को सदाचारी बनाये, उसके आचरण की रक्षा करे तथा उसका चरित्र गठन करे। गुरु परिवार में गरीब-अमीर का कोई भेदभाव नहीं था। सबके साथ एक जैसा बर्ताव किया जाता था। गुरु छात्रों के दुःख-सुख को अपना दुःख-सुख मानता था। गुरु छात्रों की त्रिशाला शान्त करता था।

गुरुकुलीय जीवनचर्या

1. साधना अथवा तप का जीवन (शारीरिक विकास)– गुरुकुल में प्रवेश का अभिप्राय है- गुरु के आश्रम में प्रविष्ट होना। 'आश्रम' का अर्थ है- जिसमें श्रम-ही-श्रम है, जिसमें आलस्य को स्थान नहीं, जिसमें हर समय सजग, सचेत रहना पड़ता है, जिसमें लगन-ही-लगन है, परिश्रम-ही-परिश्रम है, वैदिक परिभाषा में जिसमें 'तपस्या' है। गुरुकुलवास को ब्रह्मचर्याश्रम कहा गया है। आश्रम का मूलभूत भाव 'श्रम' या 'तपस्या' है। ब्रह्मचारी को गुरुकुलाश्रम में प्रवेश करते ही माता-पिता तथा आश्रम में उपस्थित जनता के समक्ष जो उपदेश दिये जाते हैं, उनका मूल आधार 'तपस्या' है। बालक को कहा जाता है - **'कर्म कुरु', 'दिवा मा स्वाप्सीः', 'क्रोधानृपे वर्जय', 'उपरि शय्यां वर्जय'**- काम करते रहना, श्रम का जीवन बिताना, निठल्ले मत रहना, रात को सोना, दिन सोने के लिए नहीं काम करने के लिए है, क्रोध मत करना, झूठ मत बोलना, तपस्या का जीवन बिताना। शिक्षा के जिस उद्देश्य को सामने रखकर वैदिक गुरुकुल-प्रणाली की नींव रखी गई थी उसका आधार 'तपस्या' था। अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड के 'ब्रह्मचर्य-सूक्त' के 26 मन्त्रों में 15 वार 'तप' शब्द का प्रयोग हुआ है। **'स आचार्य तपसा पिपर्ति', 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत'**-ब्रह्मचारी तप से जीवन की साधना करता है। तपकर ही कच्चा लोहा पक्का बनता है, भट्टी में तपकर ही सोना कुन्दन बनता है, तपस्या की आग में से गुजरकर ही इन्सान बनता है।

2. समानता का भाव (सामाजिक विकास)–गुरुकुल में ऊँच-नीच तथा अमीर-गरीब का भेद मिट जाता है। आश्रम में आकर सब एक स्तर पहुँच जाते हैं- न कोई अमीर, न गरीब, न ऊँचा, न नीचा, सब बराबर, सब भाई-भाई। जब अमीरी-गरीबी शिक्षा-संस्था में चल रही हो, जब शिक्षा-संस्था में ही कोई गुप्त, कोई शुक्ल हो, तो यही लोग जब समाज में जायेंगे तब अमीरी-गरीबी, जात-बिरादरी को समाज में क्यों न ले जायेंगे? शिक्षा-संस्था में आकर किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रह सकता, 'गुरुकुल' शब्द का आधारभूत तत्त्व ही यह है। अगर

शिक्षण-संस्था में किसी प्रकार का भेद-भाव रहता है, तो वह कूड़े में फेंक देने लायक है। हम समाजवाद की बढ़-चढ़कर चर्चा करते हैं, परन्तु स्मरण रखना होगा कि केवल पत्ते पर जल छिड़कने से वृक्ष हरा नहीं होता, जड़ में जल देने से ही वृक्ष में छटा आती है, पत्ते हरे होते हैं, फूल खिलते हैं, फल लगते हैं। बचपन में ही समाजवाद का भाव डालना वृक्ष की जड़ को सींचना है।

3. ब्रह्मचर्य व्रत (आध्यात्मिक विकास)—जो गुरु के आश्रम में आता है वह ब्रह्मचारी है। गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति में प्रत्येक बालक को जो गुरुकुल में प्रविष्ट होता है 'ब्रह्मचारी' कहा जाता है, सिर्फ विद्यार्थी ही नहीं, क्योंकि प्रत्येक के सामने जीवन में महान् होने का, बड़े होने का संकल्प शिक्षा प्रारम्भ होने के दिन से ही रख दिया जाता है। इस शब्द का एक रूढ़ि अर्थ भी है, और वही अर्थ अधिक प्रसिद्ध है। रूढ़ि अर्थ में शरीर की भौतिक शक्ति को-वीर्य को-नष्ट न होने देना, शुद्ध चाल-चलन रखना, सदाचार का जीवनव्यतीत करना 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है। इस दृष्टि से 'ब्रह्मचारी' शब्द के आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक - ये दो अर्थ हैं। वैदिक शिक्षा की विचारधारा के अनुसार गुरुकुलों का लक्ष्य बर्चपन से ही बालक के सामने दो उद्देश्य स्पष्ट रूप में रख देना था- बालक को आध्यात्मिक संस्कृति के रंग में रंगना होगा- यह वैदिक-शिक्षा का पहला उद्देश्य था जो 'ब्रह्मचारी' शब्द के यौगिक अर्थ में निहित है; बालक को अपने शरीर की भौतिक शक्ति का संचय करना होगा, वीर्य को नष्ट नहीं होने देना होगा, सदाचार का जीवन बिताना होगा- यह वैदिक शिक्षा का दूसरा उद्देश्य था, जो 'ब्रह्मचारी' शब्द के रूढ़ि अर्थ में निहित है।

शिक्षण विधियाँ

गुरुकुलीय शिक्षा में निम्नलिखित शिक्षण विधियों को प्रयोग में लाया जाता था।

मौखिक शिक्षण : शिक्षण विधि मुख्यत: मौखिक थी। वेद-मन्त्र मौखिक विधि से ही पढ़ाए जाते थे। लिखे नहीं जाते थे। मौखिक विधि से ही अर्थ बताया जाता था।

अनुपाठ : फिर वेदों के उच्चारण, पढ़ने के ढंग आदि का भी अर्थ से कम महत्त्व न था क्योंकि वेद का अशुद्ध पाठ घातक माना जाता था। इन्हें पढ़ाने से पहले कई दिन शिक्षक स्वर, छन्द आदि का ज्ञान कराकर एक-एक पद विद्यार्थियों के सामने पढ़कर सुनाता था, जिसे वे ठीक उसी प्रकार दोहराते थे। इस समय अध्यापक तथा शिष्य जमीन पर सीधे बैठते थे। शिष्यों के आग्रह पर ही अध्यापन आरंभ होता था। इस विधि में वेद-पाठ के बाद उनका अर्थ बताया जाता था। उसकी विधि यह थी कि कोई कठिन पद आने पर आचार्य उसका अर्थ प्रथम विद्यार्थियों से पूछता था, यदि वह बता दे तो आगे बढ़ता, नहीं तो स्वयं उसे स्पष्ट करता। इस ढंग की शिक्षा में आत्मीयता प्रधान थी क्योंकि गुरु की कृपा पर ही शिक्षा अवलम्बित थी। स्मरणशक्ति अत्यन्त प्रबल होती थी और सम्पूर्ण ज्ञान प्रत्येक समय व्यवहार के लिये प्रस्तुत रहता था।

टीका : अर्थ समझाने में तथा सिद्धान्तों को बताने में विशद टीका की जाती थी। दर्शन तथा सूत्र-साहित्य तो इसके बिना समझ में आ ही न सकता था। आवश्यतानुसार उपमा, उत्प्रेक्षा, कहानी आदि की सहायता अध्यापक भी लेते थे।

कहानी : धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि पढ़ाने में तो आख्यायिकाओं का बड़ा हाथ रहता था।

शंका-समाधान : प्रमुख पाठनविधि शंका-समाधान वाली विधि थी। विद्यार्थी अस्पष्ट तथा संदिग्ध सिद्धान्तों तथा भागों पर प्रश्न करते थे और आचार्य उन्हें स्पष्ट करता था।

भाषण : इस विधि में आचार्य स्वयं ही प्रमुख बातों पर भाषण देता था जिसे सभी छात्र सुनते तथा लाभ उठाते थे। भाषण के बाद तत्सम्बन्धी शंकायें भी स्पष्ट की जाती थीं।

अभ्यास : व्यावसायिक शिक्षा में अभ्यास का मुख्य स्थान था, यथा- आयुर्वेद में बीमारों की देखरेख, दवायें ढूँढना, धनुर्वेद में हथियारों का अभ्यास आदि।

श्रवण-मनन तथा तप : अध्ययन की विधियों में मुख्य था गुरु के पढ़ाये पाठ को दोहराना। साथ ही अन्य विद्यार्थियों में शास्त्रार्थ

अथवा बातचीत द्वारा अर्थ समझने तथा शंका-निवारण का प्रयास होता था। इस प्रकार श्रवण और बाद में उस पर तथा विशेषतया अस्पष्ट अंगों पर मनन; तथा अन्त में निदिध्यासन के द्वारा उसे सिद्ध कर लेना वैदिक शिक्षा के लिये आवश्यक थे। अध्ययन की एक प्रमुख विधि तप, उपासना अथवा योग था। श्रुतर्षियों ने तप तथा श्रवण द्वारा ऋषित्व प्राप्त किया था।

देश-पर्यटन तथा शास्त्रार्थ : देश-पर्यटन तथा अन्य विद्वानों से मिलना, शास्त्रार्थ करना तथा ज्ञान-चर्चा करना भी भारतीय शिक्षा-पद्धति में प्रमुख स्थान रखते थे।

गुरुकुलीय शिक्षा की विशेषताएँ जो वर्तमान में अपनायी जा सकती हैं-

1. गुरु शिष्य में निकटता
2. कक्षाओं का छोटा आकार
3. अनुशासन पर उचित बल
4. प्रभावी नैसर्गिक वातावरण
5. मूल्य शिक्षा को महत्व देना
6. गुरु का समाज में आदरणीय स्थान।
7. छात्रों का सतत् मूल्यांकन

सन्दर्भ सूची

1. अग्रवाल, जे.सी., भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, शिप्रा पब्लिकेशन दिल्ली, 2007
2. कर्ण, भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, 2008
3. भट्टाचार्य, जे.सी. अध्यापक शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा, 2008
4. शर्मा, आर.ए., अध्यापक शिक्षा, इन्टरनेशनल पब्लिकेशन मेरठ, 2007
5. सक्सेना, एन.आर., अध्यापक शिक्षा, सूर्या पब्लिकेशन मेरठ, 2007
6. सिद्धान्तालंकार, सत्यव्रत, वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार, अनुज प्रकाशन, जयपुर, 1981

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के विकास में उदीयमान प्रवृत्तियाँ

नवल ठाकुर

शोध छात्र, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

किसी भी राष्ट्र की उन्नति एवं विकास में अध्यापकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। क्योंकि अध्यापक ही उस देश के भावी भविष्य को शिक्षित एवं तैयार करते हैं। इसके लिये आवश्यक है कि अध्यापक अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता होने के साथ-साथ विभिन्न कौशलों में भी निपुण हो। यह तभी हो सकता है जब अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम को अधिक विकसित एवं उसमें नवाचारों का समावेश किया जाये। वर्तमान अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में नवाचारों के प्रयोग तथा विकास पर अधिक बल दिया जा रहा हैं। क्योंकि परिस्थितियों में परिवर्तन के फलस्वरूप नये विषयों को अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में समाविष्ट करना तथा सूचना एवं प्रौद्योगिकी का अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में प्रयोग करके अध्यापकों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के साथ-साथ उनके ज्ञान का विस्तार एवं विकास करना भी है। इस कारण वर्तमान समय में अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में विकास की आवश्यकता महसूस हो रही है। क्योंकि वर्तमान प्रचलित अध्यापक शिक्षा प्रणाली में शिक्षकों में ज्ञान, कौशलों, अभिवृतियों तथा मूल्यों का अभाव देखा जा रहा है। क्योंकि अधिगमकर्त्ता तथ्यों को याद कर लेता है तथा अध्यापक के कहने पर उसे प्रस्तुत कर देता है जिसके फलस्वरूप सेवापूर्व अध्यापकों में विभिन्न कौशलों एवं क्षमताओं का विकास नहीं हो पाता है। अतः एक गुणवत्ता युक्त अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में तार्किक और स्रोतपूर्ण शिक्षण शास्त्र को लगाना चाहिएं

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में सिद्धान्तों एवं अभ्यास में परस्पर संबंध होना चाहिए जिससे जिम्मेदारी पूर्ण गुणवत्ता युक्त शिक्षण हो सके।

21 वीं सदी में अध्यापक में इन कौशलों की आवश्यकता केवल परीक्षा में अच्छे प्रदर्शन या रोजगार प्राप्त करने के लिये नहीं अपितु सेवापूर्व अध्यापक को विभिन्न कौशलों तथा क्षमता से युक्त एक पूर्ण व्यक्ति के रूप में विकास करने से है। जिससे कि अध्यापक अपने शिक्षण काल में आने वाली विभिन्न चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हो सके। 21 वीं सदी में अध्यापकों में आवश्यक कौशलों का ज्ञान एवं निपुणता अध्यापक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। जिससे कि अध्यापक शिक्षा पाठ्य-क्रम के विकास में अनेक प्रवृत्तियाँ उदयमान हो रही हैं। सम्पूर्ण विश्व के शिक्षाविद् अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के माध्यम से अध्यापक में ऐसे कौशलों एवं क्षमताओं का विकास चाहते हैं जिससे कि वह ज्ञानात्मक जीवन तथा प्रभावात्मक समाज का निर्माण करने में सक्षम हो सके।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम विकास का मुख्योद्देश्य देश का आर्थिक विकास तथा ज्ञानात्मक समाज का निर्माण करना है। इस उद्देश्य को शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जो केवल वर्तमान समय में ही नहीं अपितु जीवन पर्यन्त छात्रों के लिये उपयोगी हो। इसके लिये आवश्यक है कि अध्यापक में प्रभावात्मक ढंग से सीखने की योग्यता का विकास, विभिन्न योग्यताओं को प्राप्त एवं उपयोग करना की क्षमता, तथा ज्ञान और मानवीय क्रियाओं का विकास है।

पाठ्यक्रम विकास–सभी नागरिकों के सम्पूर्ण विकास को प्राप्त करने का एक साधन है। जो राष्ट्र को स्थानीय या राष्ट्रीय नहीं अपितु अन्तराष्ट्रीय प्रतियोगिता के लिये तैयार करता है।

पाठ्यक्रम विकास–स्वानुभव की ओर, अच्छे मानव संबंधों, व्यक्तिगत या राष्ट्रीय निपुणता, प्रभावात्मक नागरिक अधिकारों, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय एकता, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रक्रिया को प्राप्त करने का एक साधन है।

वर्तमान में अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में विकास में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ हैं :-

• शान्ति के लिये शिक्षा (Education for peace)–21 वीं सदी में विभिन्न प्रकार की हिंसात्मक प्रवृत्तियॉ बढ़ रही है। जैसे- शारीरिक, आर्थिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, पर्यावरणीय हिंसा इत्यादि। विभिन्न प्रकार की हिंसा व्यक्तिगत तथा अन्तः व्यक्तिगत स्तर पर, समूहों में, देशों में तथा अन्तराष्ट्रीय स्तर पर हो रही हिंसा को रोकने में शान्ति के लिये शिक्षा (Education for peace) अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। अतः अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में शान्ति के लिये शिक्षा (Education for peace) को स्थान मिलना चाहिए जिससे कि अध्यापक इन बातों को समझ कर छात्रों में शान्ति सम्बन्धित गुणों का विकास कर सकें।

शान्ति शिक्षा के आधारभूत तत्त्व (Basic element of peace education) :-

Table 1: शान्ति के लिए शिक्षा के आधारभूत तत्त्व

S/N	शान्ति के आयाम	आधारभूत तत्त्व
1.	ज्ञान	शान्ति, न्याय, मानवाधिकार, सामाजिक, संवेगात्मक साक्षरता, समस्या समाधान (अन्तर्द्वन्द्व से बचना, अन्तर्द्वन्द प्रबन्धन तथा अर्न्द्वन्द्व का समाधान) और अवबोध (अन्तराष्ट्रीय तथा अन्तः सांस्कृतिक अवबोध) इत्यादि।
2.	मूल्य और अभिवृत्तियाँ	सहिष्णुता, परवाह, सामाजिक समानता, शान्ति, न्याय, सहयोग और सामाजिक सुदृढ़ता, मानवाधिकार, सक्रिय नागरिकता, लौंगिक समानता, जागरूकता, तदात्मानुभूति, अन्तर्द्वन्द्व समाधान के लिये शान्पूिर्ण मार्ग, सुस्थिर वातावरण के लिये प्रोत्साहन, धर्मनिरपेक्षता, करूणा तथा सभी मानव का सम्मान इत्यादि।
3.	कौशल	सक्रिय श्रोता, समानता व विभिन्नता का बोध, सहयोग, मध्यस्थता, समस्या समाधान, विश्वास, समालोचनात्मक विचार, स्व चिन्तन, स्व सम्मान

इत्याादि।

• वैश्विक नागरिकता के लिये शिक्षा (Education for Global citizenship)–किसी भी देश का व्यक्ति केवल उस देश का एक नागरिक हीं नहीं होता अपितु वह वैश्विक जगत् का एक सदस्य भी होता है। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के विकास के फलस्वरूप वर्तमान समय में कोई भी चीज व्यक्ति से दूर नहीं है। व्यक्ति कोई भी सूचना कहीं भी तथा कभी भी प्राप्त कर सकता है। वर्तमान समय में वैश्विक सम्प्रेषण (global communication) के द्वारा एक व्यक्ति दुनिया के इस कोने से दुनिया के दूसरे कोने में बैठे व्यक्ति से घर बैठे आसानी से बात कर सकता है। आज व्यक्ति के पास बहुदेशीय नागरिकता (multiple citizenship) है। ICTs के प्रयोग से लोगों में दूरी की समस्या को समाप्त किया जा सकता है तथा सूचनाओं का आदान प्रदान सरलता से किया जा सकता है। अनेक देशों ने वैश्विक नागरिकता के लिये शिक्षा (Education for Global citizenship) को अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया है। जैसे-U.K. (Department for Internation Development) and Internation development edcation association of Scotland (IDEAS)

वैश्विक नागरिकता के लिये शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को वैश्विक जानकारी देना, वैश्विक सन्दर्भ में समझदारी उत्पन्न करना, विभिन्न कौशलों तथा मूल्यों का विकास करना जिससे कि राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय स्तर पर व्यक्ति अपना योगदान दे सके। यह तभी संभव है जब अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में ICTs को विभिन्न स्तरों पर सम्मिलित किया जाये। वैश्विक नागरिकता के लिये शिक्षा (Education for global citizenship) एक वैश्विक विचार है। जो पाठ्यक्रम के सभी पक्षों को छूता है। अतः यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी सेवापूर्व प्रशिक्षणार्थी अध्यापक तक यह नई तकनीक पहुँचे तथा वह इसके प्रयोग में कुशल हों। क्योंकि तकनीकी प्रभावात्मक शैक्षणिक प्रक्रिया का अखंड भाग है।

• **शिक्षण एवं अधिगम रणनीति (Teaching and Learning stratgies)**—अध्यापक केन्द्रित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के फलस्वरूप अधिगमकर्ता का विकास, स्वतंत्रता, नवाचार का प्रयोग तथा 21वीं सदी के अन्य कौशलों का विकास सम्यक् प्रकार से नहीं हो पाता। अत: अध्यापक को अपनी शिक्षण विधियों में लचीलापन, सर्जनात्मकता, नवीनता या नवाचारयुक्त तथा अधिगमकर्ता-केन्द्रित होना चाहिए। आकर्षक तथा सहयोगात्मक शिक्षण विधियों का प्रयोग करके अध्यापक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सफल बना सकता है। जैसे- सहयोगात्मक विधि, समूह कार्य, समूह शिक्षण, समूह चर्चा, भूमिका निर्वाह, प्रतियोगिता, अनुरूपित शिक्षण तथा मस्तिष्क मंथन (Simulation teaching and Brainstorming) इत्यादि के द्वारा अध्यापक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बना सकता है। अध्यापक को प्राचीन शिक्षण विधियों के मध्य सेतु का कार्य करना चाहिए एवं दोनों प्रकार के विधियों में समन्वय स्थापित करके इनका प्रयोग करना चाहिए।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सफल होने के लिये अध्यापक में यह निम्नलिखित गुण होना चाहिए:-

- लचीलापन तथा अनुकूलता (Flexibility and Adaptability)
- स्व प्रयास तथ स्व निर्देशन (Initiative and Self- direction)
- सामाजिक तथा अन्त:सांस्कृतिक कौशल (Social and Crosscultural skills)
- उत्पादकता तथा उत्तरदायी (Productivity and Accountability)
- नेतृत्व तथा उतरदायित्व (Leadership and Responsibility)

अध्यापन परीक्षा के लिये नही अपितु कैसे सीखे इसके लिये तथा कैसे प्रभावशाली सम्प्रेषण और समूहों में अच्छा प्रदर्शन किया जाये इसके लिये होना चाहिए।

• भावी शिक्षकों में भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मान और इसमें विश्व को इसके योगदान के प्रति गौरव का भाव विकसित करना।

• स्थानीय संसाधनों का आवश्यकतानुसार उपयोग के प्रति सक्रियता एवं दक्षता विकसित करना।

• प्राकृतिक व अन्य आपदाओं से निपटने (आपदा प्रबंधन के) कौशल का विकास करना।

• पर्यावरण संरक्षण और परिस्थितिकीय संतुलन के प्रति जागरूकता व कौशल का विकास।

अतः इस प्रकार अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम विकास के ये उदीयमान प्रवृत्तियाँ हैं जिसे अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में सम्मिलित करके कुशल एवं दक्ष अध्यापकों को तैयार किया जा सकता है।

गुरूकुल शिक्षा पद्धति : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सार्थकता

सुजीत कुमार झा
एम. एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

शिक्षा को कैसे परिभाषित किया जा सकता है? कई लोगों के लिए, शिक्षा सीखने की प्रक्रिया या विधि है; अन्य व्यक्तियों के लिए शिक्षा मुक्तिदायक है; जबकि अनेक लोग शिक्षा को जीवन के सफर की तरह मानते हैं; और अर्थशास्त्री शिक्षा को मनुष्य रूपी संपत्ति में निवेश की तरह मानते हैं।

शिक्षा मनुष्य के जीवन में कितनी महत्त्वपूर्ण है यह निश्चित ही एक निर्विवाद विषय है। शिक्षा के जीवन में महत्व को कुछ उदाहरणों द्वारा बताया गया है;

"शिक्षा चरित्र के गठन" के लिए है-हेर्बेर्ट स्पेनसर

शिक्षा मानव जीवन में पहले से ही पूर्णता की अभिव्यक्ति है- स्वामी विवेकानन्द

शिक्षा बुढ़ापे के लिए सबसे अच्छा प्रावधान है-अरस्तू

प्रत्येक राज्य की नींव अपने युवाओं की शिक्षा है-दिओगेनेस लेर्तिउस

स्वतंत्रता और न्याय के क्रम में अगला महत्त्व लोकप्रिय शिक्षा का है, जिसके बिना न तो स्वतन्त्रता और न ही न्याय स्थायी रूप से बनाये रखा जा सकता है- जेम्स ए. गार्फिएल्ड

केवल शिक्षित ही स्वतंत्र है-एपिक्टेतुस

शिक्षा का महान उद्देश्य कोरा ज्ञान नहीं बल्कि उसके अनुसार कर्म है-हेर्बेर्ट स्पेनसर

शिक्षा का अर्थ यह नहीं है कि आपकी स्मृति कितनी अच्छी है, या आप कितना जानते हैं। शिक्षा तो इस बात का अंतर कर पाने की क्षमता है कि आप क्या जानते हैं और क्या नहीं–अनातोले फ्रांस

अर्थात् शिक्षा मानव के सर्वागीण विकास के लिए एक मौलिक एवं मूलभूत निर्माण खंड के रूप में सर्वमान्य है और गरीबी कम करने के लिए शिक्षा एक सशक्त औजार है, शिक्षा "मिलेनियम डेवेलोपमेंट गोल्स" को प्राप्त करने के लिए एक कुंजी तो है ही साथ ही साथ यह व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास के लिए भी एक सशक्त प्रणेता है, फिर भले ही बात स्वास्थ्य में सुधार की हो, लिंग भेद को दूर करने की हो, समाज में शांति स्थापित करने की हो या फिर स्थायित्व की हो.

शिक्षा शिशु के जन्म के साथ ही आरम्भ हो जाती है, एक बच्चा अपने चारों ओर के वातावरण से सबसे अधिक सीखता है, मनुष्य के लिए समाज ही सबसे बड़ी पाठशाला और प्रयोगशाला है बच्चे के लिए माता ही पहली शिक्षक और पहला विद्यालय है....... इस प्रकार के अनेकानेक मुहावरे शिक्षा के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु यह खोजना कि शिक्षा एक प्रक्रिया या विधि कब बन गई और कब और कैसे यह एक संस्था के रूप में उभरी, बड़ा ही रोचक है.

गुरूकुल इसका शब्दिक अर्थ है गुरू का परिवार अथवा गुरू का वंश परंतु यह सदियों से भारतवर्ष में शिक्षासंस्था के अर्थ व्यवहृत होता रहा है। गुरूकुलों के इतिहास में इस देश की शिक्षाव्यवस्था और ज्ञानविज्ञान की रक्षा का इतिहास समाहित है। भारतीय संस्कृति के विकास में चार पुरूषार्थों, चार वर्णों और चार आश्रमों की मान्यताएँ तो अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए अन्योन्याश्रित थी ही, गुरूकुल भी उनकी सफलता में बहुत बड़े साधक थे। यज्ञ और संस्कारों द्वारा बालक 6/8 अथवा 11 वर्ष की अवस्थाओं में गुरूकुलों में ले जाए जाते थे (यज्ञोपवीत, उपनयन अथवा उपवीत) और गुरु के पास बैठकर ब्रह्मचारी के रूप में शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरू उनके मानस और बौद्धिक संस्कारों को पूर्ण करता हुआ उन्हें सभी शास्त्रों एवं उपयोगी विद्याओं की शिक्षा देकर उन्हें विवाह कर गृहस्थाश्रम के विविध कर्तव्यों का

पालन करने के लिए वापस भेजता यह दीक्षित और समावर्तित स्नातक ही पूर्ण नागरिक होता और समाज के विभिन्न उत्तरदायित्वों का वहन करता हुआ त्रिवर्ग की प्राप्ति का उपाय करता। स्पष्ट है, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास में गुरूकुलों का महत्वपूर्ण योगदान था।

गुरूकुल प्रायः ब्राह्मण गृहस्थों द्वारा गाँवों अथवा नगरों के भीतर तथा बाहर दोनों ही स्थानों में चलाए जाते थे। गृहस्थ विद्वान और कभी कभी वानप्रस्थी भी दूर दूर से शिक्षार्थियों को आकृष्ट करते और अपने परिवार में और अपने साथ रखकर अनेक वर्षो तक–आदर्श शिक्षा देते। दक्षिणा स्वरूप ब्रहमचारी बालक या तो अपनी सेवाएँ गुरू और उसके परिवार को अर्पित करता या संपन्न होने की अवस्था में अर्थ शुल्क ही दे देता। परंतु ऐसे आर्थिक पुरस्कार और अन्य वस्तुओं वाले उपहार दीक्षा के बाद ही दक्षिणास्वरूप दिए जाते और गुरू विद्यादान प्रारंभ करने के पूर्व न तो आगंतुक विद्यार्थियों से कुछ माँगता और न उनके बिना किसी विद्यार्थी को अपने द्वार से लौटाता ही था। धनी और गरीब सभी योग्य विद्यार्थियों के लिए गुरूकुलों के द्वार खुले रहते थे। उनके भीतर का जीवन सादा, श्रद्धापूर्ण, भक्तिपरक और त्यागमय होता था। शिष्य गुरू का अंतेवासी होकर (पास रहकर) उसके व्यक्तित्व और आचरण से सीखता। गुरू और शिष्य के आपसी व्यवहारों की एक संहिता होती और उसका पूर्णतः पालन किया जाता। गुरूकुलों में तब तक जाने हुए सभी प्रकार के शास्त्र और विज्ञान पढ़ाए जाते और शिक्षा पूर्ण हो जाने पर गुरू शिष्य की परीक्षा लेता, दीक्षा देता और समावर्तन संस्कार संपन्न कर उसे अपने परिवार को भेजता। शिष्यगण चलते समय अपनी शक्ति के अनुसार गुरू को दक्षिणा देते, किंतु गरीब विद्यार्थी उससे मुक्त भी कर दिए जाते थे।

भारतवर्ष में गुरूकुलों की व्यवस्था बहुत दिनों तक जारी रही। राज्य अपना यह कर्त्तव्य समझता था कि गुरूकुलों के भरण पोषण की सारी व्यवस्था करें। वरतंतु के शिष्य कौत्स ने अत्यंत गरीब होते हुए भी गुरू से कुछ दक्षिणा लेने का जब आग्रह किया तो गुरू ने क्रुध होकर एक असंभव राशि चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ–माँग दीं। कौत्स ने राजा रघु से वह धनराशि पाना अपना अधिकार समझा और यज्ञ में सब कुछ दान

दे देनेवाले उस अकिंचन राजा ने उस ब्राहमण बालक की माँग पूरी करने के लिए कुबेर पर आक्रमण करनेकी ठानी। रघुवंश की इस कथा में अतिमानवीय पुट चाहे भले हों, शिक्षासंबंधी राजकर्तव्यों का यह पूर्णरूपेण द्योतक है। पालि साहित्य में ऐसी अनेक चर्चाएँ मिलती हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि प्रसेनजित जैसे राजाओं ने उन वेदनिष्णात ब्राहमणों को अनेक गाँव दान में दिए थे, जो वैदिक शिक्षा के वितरण के लिए गुरूकुल चलाते। यह परंपरा प्राय: अधिकांश शासकों ने आगे जारी रखी और दक्षिण भारत के ब्राहमणों को दान में दिये गए ग्रामों में चलने वाले गुरूकुलों और उनमें पढ़ाई जानेवाली विद्याओं के अनेक अभिलेखों में वर्णन मिलते हैं। गुरूकुलों के कहीं विकसित रूप तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभी के विश्वविद्यालय थे। जातकों, हवेनसांग के यात्राविवरण तथा अन्य अनेक संदर्भों से ज्ञात होता है कि उन विश्वविद्यालयों में दूर-दूर से विद्यार्थी वहाँ के विश्वविख्यात अध्यापकों से पढ़ने आते थे। वाराणसी अत्यंत प्राचीन काल से शिक्षा का मुख्यकेंद्र था और अभी हाल तक उसमें सैकड़ों गुरूकुल पाठशालाएँ रही हैं और उनके भरण पोषण के लिए अन्नक्षेत्र चलते रहे। यही अवस्था बंगाल और नासिक तथा दक्षिण भारत के अनेक नगरों में रही। 19वीं शताब्दी में प्रारंभ होनेवाले भारतीय राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के युग में प्राचीन गुरूकुलों की परंपरा पर अनेक गुरूकुल स्थापित किए गए और राष्ट्रभावना के प्रसार में उनका महत्त्वपूर्ण योग रहा।

1858 में Indian Education Act बनाया गया। इसकी ड्राफ्टिंग **लार्ड मैकाले** ने की थी। लेकिन उसके पहले उसने यहाँ (भारत) के शिक्षा व्यवस्था का सर्वेक्षण कराया था, उसके पहले भी कई अंग्रेजों ने भारत के शिक्षा व्यवस्था के बारे में अपनी रिपोर्ट दी थी। अंग्रेजों का एक अधिकारी था **G.W.Litnar** और दूसरा था **Thomas Munro,** दोनों ने अलग अलग इलाकों का अलग अलग समय सर्वे किया था। **1823 के आसपास की बात है ये Litnar जिसने उत्तर भारत का सर्वे किया था, उसने लिखा है कि यहाँ 97% साक्षरता है और Munro, जिसने दक्षिण भारत का सर्वे किया था, उसने लिखा कि यहाँ तो**

100% साक्षरता है, और उस समय जब भारत में इतनी साक्षरता है और मैकोले का स्पष्ट कहना था कि भारत को हमेशा-हमेशा के लिए अगर गुलाम बनाना है तो इसकी देशी और सांस्कृतिक शिक्षा व्यवस्था को पूरी तरह से ध्वस्त करना होगा और उसकी जगह अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था लानी होगी और तभी इस देश में शरीर से हिन्दुस्तानी लेकिन दिमाग से अंग्रेज पैदा होंगे और जब इस देश की यूनिवर्सिटी से निकलेंगे तो हमारे हित में काम करेंगे और मैकाले एक मुहावरा इस्तेमाल कर रहा है। "कि जैसे किसी खेत में कोई फसल लगाने के पहले पूरी तरह जाते दिया जाता है वैसे ही इसे जोतना होगा और अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था लानी होगी।" इसलिए उसने सबसे पहले गुरूकुलों को गैरकानूनी घोषित किया, जब गुरूकुल गैर कानूनी हो गए तो उनको मिलने वाली सहायता जो समाज की तरफ से होती थी वो गैर कानूनी हो गयी, फिर संस्कृत को गैरकानूनी घोषित किया और इस देश के गुरूकुलों को घूम घूम कर खत्म कर दिया उनमें आग लगा दी, उसमें पढ़ाने वाले गुरूओं को उसने मारा-पीटा, जेल में डाला। **1850 तक इस देश में 7 लाख 32 हजार गुरूकुल हुआ करते थे और उस समय इस देश में गाँव थे 7 लाख 50 हजार, मतलब हर गाँव में औसतन एक गुरूकुल**- और ये जो गुरूकुल होते थे वो सब के सब आज की भाषा में Higher Learning Institute हुआ करते थे उन सबमें 18 विषय पढ़ाये जाते थे और ये गुरूकुल समाज के लोग मिल के चलाते थे न कि राजा, महाराज, और इन गुरूकुलों में शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी। इस तरह से सारे गुरूकुलों को खत्म किया गया और फिर अंग्रेजी शिक्षा को कानूनी घोषित किया गया और कलकत्ता में पहला कॉन्वेंट स्कूल खोला गया, उस समय इसे फ्री स्कूल कहा जाता था, इसी कानून के तहत भारत में कलकत्ता यूनिवर्सिटी बनाई गयी, बम्बई यूनिवर्सिटी बनाई गयी, मद्रास यूनिवर्सिटी बनाई गयी और ये तीनों गुलामी के जमाने के यूनिवर्सिटी आज भी इस देश में हैं और मैकाले ने अपने पिता को एक चिट्ठी लिखी थी बहुत मशहूर चिट्ठी है वो, उसमें वो लिखता है कि-**"इन कॉन्वेंट स्कूलों से ऐसे बच्चे निकलेंगे जो देखनेमें तो भारतीय होंगे लेकिन दिमाग से अंग्रेज होंगे और**

इन्हें अपने देश के बारे में कुछ पता नहीं होगा, इनको अपने संस्कृति के बारे में कुछ पता नहीं होगा, इनको अपने परम्पराओं के बारे में कुछ पता नहीं होगा, इनको अपने मुहावरे नहीं मालूम होंगे, जब ऐसे बच्चे होंगे इस देश में तो अंग्रेज भले ही चले जाएँ इस देश से अंग्रेजियत नहीं जाएगी" और इस समय लिखी चिट्ठी की सच्चाई इस देश में अब साफ-साफ दिखाई दे रही है। और उस एक्ट की महिमा देखिये कि हमें अपनी भाषा बोलने में शर्म आती है, अंग्रेजी में बोलते है कि दूसरों पर रोब पड़ेगा, अरे हम तो खुद में हीन हो गए है। जिसे अपनी भाषा बोलने में शर्म आ रही है, दूसरों पर रोब क्या पड़ेगा।

माना जाता है की मैक्स मूलर ने भारत की शिक्षा व्यवस्था पर सबसे अधिक शोध किया है, वे लिखते है "भारत के बंगाल प्रांत (अर्थात् आज का पूर्ण बिहार, आधा उड़ीसा, पूर्ण पश्चिम बंगाल, आसाम एवं उसके ऊपर के सात प्रदेश) में 80 हजार से अधिक गुरूकुल है जो कि कई सहस्त्र वर्षो से निर्बाधित रूप से चल रहे हैं"।

उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के आँकडों के कुल पर औसत निकालने से यह ज्ञात होता है की भारत में 18 वीं शताब्दी तक 300 व्यक्तियों पर न्यूनतम एक गुरूकुल था। 16 से 17 वर्ष भारत में प्रवास करने वाले शिक्षाशास्त्री **लुडलो** ने भी 18वीं शताब्दी में यहीं लिखा की "भारत में एक भी गाँव ऐसा नहीं जिसमें गुरूकुल नहीं एवं एक भी बालक ऐसा नहीं जो गुरूकुल जाता नहीं"।

राजा की सहायता के बिना, समाज से पोषित इन्ही गुरूकुलों के कारण 18वीं शताब्दी तक भारत में साक्षरता 97%थी, बालक के 5 वर्ष, 5 माह, 5 दिवस के होते ही उसका गुरूकुल में प्रवेश हो जाता था। प्रतिदिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक विद्यार्जन का क्रम 14 वर्ष तक चलता था। जब बालक सभी वर्गों के बालकों के साथ निःशुल्क 20 से अधिक विषयों का अध्ययन कर गुरूकुल से निकलता था, तब आत्मनिर्भर, देश एवं समाज सेवा हेतु सक्षम हो जाता था। इसके उपरांत विशेषज्ञता (पांडित्य) प्राप्त करने हेतु भारत में विभिन्न विषयों वाले जैसे शल्य

चिकित्सा, आयुर्वेद, धातु कर्म आदि के विश्वविद्यालय थे,नालंदा एवं तक्षशिला तो 2000 वर्ष पूर्व के है परंतु मात्र 150-170 वर्ष पूर्व भी भारत में 500-525 विश्वविद्यालय थे।

प्राचीन काल के गुरूकुल एवं वर्तमान के शिक्षण संस्थानों के परिवेश पर तुलनात्मक विचार करें एवं परखें तो काफी अन्तर दिखाई देगा जबकि वास्तविक वैचारिक धरातल पर दोनों का मूल अर्थ एवं उद्देश्य एक ही रहा है। गुरूकुल में गुरू एवं शिष्यों के बीच जो संबंध स्थापित रहा है, वर्तमान के शिक्षण व्यवस्था में वह बिखरता हुआ दिखाई दे रहा है। आज के समय में शिक्षण संस्थान व्यवसायिक संस्थान बनकर रह गये हैं, जहाँ ज्ञान अर्थ के साथ जुड़कर अर्थहीन हो चला है। इस परिवेश ने शिक्षकों की परिभाषा एवं स्वरूप को ही बदल दिया है।

शिक्षा जगत के परिवेश आज हर तरह से उपेक्षित हो रहे हैं। जहाँ सर्वोपरि गुणवत्ता होनी चाहिए वहाँ बची-खुची योग्यता व टैलेंट का प्रयोग हो रहा है। जिसका कहीं प्रयोग नहीं हो सका वह शिक्षा जगत में आ रहा है। जहां शिक्षा का धडल्ले से व्यापार हो रहा है। आज शिक्षा देने के नाम पर गली-गली निजी, सरकारी शिक्षा केन्द्र खुले तो मिल जायेंगे पर इनमें से अधिकांश के पास कुशल योग्य स्टाफ नहीं होने से शिक्षा के साथ जो खुला मजाक हो रहा है, उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। भारी-भरकम रकम का खुला खेल शिक्षा केन्द्र स्थापना से लेकर संचालित होने तक यहां आसानी से देखा जा सकता है। जगह-जगह इस क्षेत्र में खुली दुकानदारियाँ इसका साक्षात् उदाहरण दे रही हैं, जहां शिक्षा के वास्तविक मूल्य का कोई अर्थ नहीं। इस तरह की भूमिका में सरकार भी कहीं पीछे नहीं है जो बिना वास्तविक जाँच किये ही शिक्षा का पट्टा गले में टांग कर वाहवाही लूट लेती है। एक सरकार मान्यता देती है तथा दूसरी सरकार उसे रद्द कर देती है। इस तरह के परिवेश में अर्थ कमाने की साफ-साफ प्रवृत्ति हावी देखी जा सकती है। जहां इस तरह के परिवेश के चलते आज यहां लाखों नौजवान प्रकाश पाने के मार्ग में अंधकारमय भविष्य के प्रति चिंतित हैं। शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त इस तरह की घिनौनी विकृतियों के आज लाखों शिकार हो रहे हैं जो स्थायित्व के लिये घातक है। जहां शिक्षा का वास्तविक

स्वरूप निरूद्देश्य होता साफ-साफ दिखाई दे रहा है। जिसके कारण आज शिक्षा एवं शिक्षकों के बीच दूरियां बढ़ती ही दिखाई दे रही है। इस तरह के परिवेश जीवन की सार्थकता को मिटा रहे है। शिक्षा के बदलते व्यवसायिकरण स्वरूप ने शिक्षा के उदेश्य को ही मिटा डाला है।

यह बात आज बड़ी अजीब लगती है कि हमारे देश में पांचवीं कक्षा से लेकर पोस्ट ग्रेजुएशन व प्रोफेशनल डिग्रियों तक की व्यवस्था में पढ़ाने का एक ही तरीका काम में लिया जाता है। वही एक घण्टा चपरासी लगाता है और एक की जगह दूसरा शिक्षक आता है तथा पैंतालीस मिनट की अपनी नौकरी पूरी करके चला जाता है। क्या पॉचवीं कक्षा पद्धति में व उच्चस्तर की शिक्षा व्यवस्था में कोई फर्क नहीं होना चाहिए? क्या पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी में और अधिस्नातक के शोधार्थी में कोई फर्क नहीं हैं। वर्तमान में यहाँ पर बदलाव के नाम पर यही नजर आता है कि एक संस्था विद्यालय कहलाती है और संस्था महाविद्यालय। परन्तु इनमें महा जैसा कोई अर्थ स्पष्ट होता नजर नहीं आता है। इस व्यवस्था में कोई ऐसा सुधार किया जाए ताकि इन दोनों ही स्तरों पर एक स्तरीय भेद किया जा सके और वो भेद ऐसा हो कि दोनों ही स्तरों पर शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ावा मिले। विद्यालय व महाविद्यालय और विश्वविद्यालय ये सब शिक्षा के साथ साथ मनुष्य निर्माण के भी केन्द्र बने और यहाँ से अच्छे और सुधी नागरिक निकले ताकि एक मजबूत और समर्थ भारत का निर्माण किया जा सके।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली पूरे देश में एक चिंता का विषय बनी हुई है। कोई व्यक्ति इसके पक्ष में अपनी राय प्रकट कर सकता है तो कोई विपक्ष में अपने विचार रख सकता है लेकिन इन सब तथ्यों और बातों पर गौर किया जाए तो एक बात तो तय है कि सारे व्यक्ति व संस्थाएँ वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में बदलाव तो अवश्य ही चाहते हैं। उस बदलाव का स्वरूप कैसा हो इस पर अलग अलग राय हो सकती है। हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था कैसे नागरिकों का निर्माण कर रही है और कैसी व्यवस्था बना रही है यह अब सबके समान है। आजादी के बाद हमारी शिक्षा व्यवस्था ने जो कुछ भी दिया है आज वही सब कुछ हमारे सामने नजर आ रहा है। अगर देश में भ्रष्टाचार है, अलगाववाद है, आतंकवाद

है, जातिवाद है या कोई और समस्या है तो इन सब के मूल में शिक्षा व्यवस्था ही है। एक बच्चा शिक्षा से ही नागरिक बनता है और आदमी बनता है। भगवान उसको पैदा करता है मिट्टी की तरह या यूं कहें कोरे कागज की तरह ओर अब इस मिट्टी को क्या और कैसा स्वरूप देना है या इस कागज पर क्या लिखना है, इसकी पूरी जिम्मेदारी हमारी शिक्षा व्यवस्था की है।

कुल मिलाकर पूरे परिद्दश्य पर नजर डालें तो हालात भयंकर ही लगते हैं। इन पर सिर्फ सरकारी प्रयासों या समितियों या सिफारिशों से ही नियंत्रण नहीं किया जा सकता जब तक आम आदमी का राष्ट्रीय चरित्र व नैतिक चरित्र ऊंचा नहीं उठेगा तब तक स्थितियॉ और विकट होंगी। जरूरत है ऐसा माहौल पैदा करने की ताकि प्रत्येक शिक्षार्थी, शिक्षक, व अभिभावक के मन में नैतिक मूल्यों का विकास हो और भारतीय चरित्र निर्माण की उत्कंठ इच्छा हो। अगर ऐसा हो गया तो इस देश की सारी समस्याएँ अपने आप ही मिट जाएगी और राष्ट्र के जिम्मेदार नागरिकों को यह अहसास होगा कि पहले देश है फिर परिवार या खुद का व्यक्तित्व।

शिक्षा के वास्तविक स्वरूप को उजागर करने कि लिये हमें गुरूकुल की अवधारणा को फिर से कायम करना होगा। जहां गुरू एवं शिष्य के बीच बनी आदर्श अवधारणा जीवन को साकार रूप देने में सफल सिद्ध हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में टैलैंट को नकारा जाना इसके मूल उद्देश्य को समाप्त करता है। इसलिये किसी भी कीमत पर इस दिशा में समझौता नहीं किया जाना चाहिए। गुरू को सर्वोपरि पद पर रखकर ही ज्ञान अर्जित किया जा सकता है। तभी गुरू एवं शिष्य के बीच एक आदर्श परम्परा का निर्वाह हो सकेगा और यही परंपरा शिक्षा के मूल रूप को जीवन में उतारने में सहायक सिद्ध होगी। स्वावलंबन, आध्यात्म के साथ वर्तमान शिक्षा पद्धति को जोड़ा जाना शिक्षा के वास्तविक स्वरूप को उजागर कर सकता है।

यद्यपि आधुनिक अवस्थाओं में प्राचीन गुरूकुलों की व्यवस्था को यथावत् पुनः प्रतिष्ठित तो नहीं किया जा सकता, तथापि उनके आदर्शों को यथावश्यक परिवर्तन के साथ अवश्य अपनाया जा सकता है।

अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम विकास में उदीयमान प्रवृत्तियाँ

शिवदत्त आर्य
शोध छात्र, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

वर्तमान समय में भारत जैसे लोकतांत्रिक राष्ट्र को संघर्ष का सामना करना पड़ रहा है। एक साथ अनेक समस्यायें जैसे कि त्वरित गति से सामाजिक परिवर्तन, जनसंख्या विस्फोट, पर्यावरण प्रदूषण, मूल्यों का अवगमन, शैक्षिक अवसरों की असमानता, निरक्षरता, सूचना क्रांति आदि सुरसा की तरह मुँह खोले खड़ीं हैं। चारों ओर संघर्ष और अस्तव्यस्तता दिखाई दे रही है। यही संघर्ष पूरे विश्व में व्याप्त है। विश्व के अनेक देश इन परिस्थितियों का अपने ढंग से सामना कर रहे हैं, वहीं संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) के विभिन्न अभिकरण जैसे कि यूनेस्को (UNESCO), यूनीसेफ (UNICEF), UNDP तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) आदि इन समस्याओं के निराकरण के लिये प्रकाश स्तम्भ के कार्य कर रहे हैं तथा विश्व स्तर पर दिशा निर्देश भी प्रस्तुत कर रहे हैं।

विश्व व्यापी समस्याओं का प्रत्यक्ष सम्बन्ध व्यक्ति और समाज से है और अंतिम रूप से उसकी शिक्षा और शिक्षा प्रणाली से यही कारण है आज सम्पूर्ण विश्व तथा विश्वस्तरीय संस्थायें उपरोक्त समस्याओं के निराकरण के लिए 'शिक्षा' को इंगित कर रही हैं। शिक्षा का दायित्व आज बढ़ गया है अत: शिक्षा आज अपने व्यापक रूप में ग्राह्य है। यदि शिक्षा जीवन पर्यन्त प्रक्रिया है तो यह स्थिर नहीं रह सकती और न ही वैयक्तिक व सामाजिक जीवन की उपेक्षा ही कर सकती है। शिक्षा की व्यापकता को सार्थक रूप देने योग्य, दक्ष एवं गुणवान् शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। योग्य, दक्ष एवं गुणवान् शिक्षकों की

आवश्यकता पूर्ति अध्यापक शिक्षा के माध्यम से होती है। अत: अध्यापक शिक्षा के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि अध्यापक शिक्षा वह आयोजन है जिसमें विभिन्न स्तरीय एवं वर्गीय अध्यापकों को इस तरह से शिक्षित करने के लिये प्रयत्न किया जाता है कि अग्रिम पीढ़ी को ज्ञान एवं मूल्यों के हस्तान्तरण के साथ ही उनके समस्त शैक्षिक एवं विकासात्मक दायित्वों को ग्रहण एवं वहन करने में वे सक्षम हो सकें तथा उनमें तकनीकी कुशलता, वैज्ञानिक चेतना, संसाधन सम्पन्नता तथा नवाचारिकता के साथ सांस्कृतिक उद्दीपना एवं मानवता बोध का समन्वयात्मक विकास करना सम्भव हो सके।

शिक्षण को एक उद्यम या प्रोफेशन के रूप में स्वीकार करने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि अध्यापक शिक्षा वह आयोजन हो जिसमें इस उद्यमगत नीतिबोध एवं संवेगात्मक पक्ष में भी दक्षता प्रदान करने की व्यवस्था हो। इस हेतु सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, एवं समस्त चारित्रिक मर्यादाओं के साथ ही राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक मूल्यों को विकसित करने के लिये सफल प्रयास करना इस आयोजन का लक्ष्य होगा। आधुनिक अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में पर्याप्त तन्मयता एवं लचीलापन का होना जरूरी माना जा रहा है क्योंकि सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिदृश्य में आज तेजी से परिवर्तन हो रहा है। सफल एवं योग्य शिक्षक ही इस परिवर्तित समय में समाज को दिशा निर्देश देने में सक्षम हो सकते हैं। सफल शिक्षक में कुशलता निम्न पक्षों में वांछनीय है-

(1) ज्ञानात्मक पक्षीय कुशलता

(2) भावात्मक पक्षीय कुशलता

(3) क्रियात्मक पक्षीय कुशलता

इन तीनों पक्षों की कुशलता एवं दक्षता शिक्षक में होना अत्यन्त आवश्यक है। अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का समावेश तो किया गया है। यथा अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन के समय ज्ञानात्मक अर्थात् सैद्धान्तिक पक्ष पर ही अत्यधिक बल दिया जाता है, किन्तु

भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष का प्रयोग बहुत कम देखने को मिल रहा है जिसका प्रभाव शिक्षक के शिक्षण की गुणवत्ता स्तर में झलकता है। शिक्षक उपाधि प्राप्त कर शैक्षिक संस्थानों में नियुक्त होकर पढ़ाना तो प्रारम्भ कर देते हैं पर वह अध्यापित पाठ्यक्रम को व्यवहार से जोड़ने में सक्षम नहीं हो पाता है क्योंकि उसे स्वयं प्रशिक्षण इसी प्रकार प्राप्त हुआ है अतः ऐसी स्थिति उत्पन्न हो इसलिये सैद्धान्तिक पक्ष पर अधिक बल न देकर क्रियात्मक पक्ष पर अधिक बल देना पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। यथा अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के अन्तर्गत पर्यावरण शिक्षा प्रदान करते समय सेमिनार, सिम्पोजिया, वर्कशॉप, प्रशिक्षण कार्यक्रम, ईको शिविर, दृश्य-श्रव्य कार्यक्रमो पर अधिक बल दिया जाये, साथ ही दृष्टिकोण में उचित परिवर्तन लाना अर्थात् हृदय में समर्पण की भावना का विकास करना। यही कार्यविधि जनसंख्या शिक्षा, स्त्री शिक्षा, विशिष्ट शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, शांति शिक्षा, ग्रामीण शिक्षा, मूल्य शिक्षा, मानवाधिकार शिक्षा आदि के सन्दर्भ में अपनानी अत्यावश्यक है।

पाठ्यक्रम में नवीन प्रवृत्तियां-

(i) E-Learning

(ii) भाषा प्रयोगशाला

(iii) कम्प्यूटर की सहायता से शिक्षण

(iv) इण्टरनेट का ज्ञान एवं संचालन

(v) पर्यावरण जागरूकता

(vi) शैक्षिक तकनीकी

(vii) ज्ञान के प्रसार हेतु सूचना तकनीकी का प्रयोग (मीडिया, संचार माध्यमों का प्रयोग)

(viii) ग्रीष्मकालीन पत्राचार पाठ्यक्रम

(ix) मनोवैज्ञानिक ज्ञान (मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर)

(x) Stress Management

(xi) प्रोफेशनल डेवलपमेन्ट (व्यावसायिक विकास)

(रोजगारोन्मुख पाठ्यक्रम)

(xii) Innovation(सृजनात्मकता)

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के अनुसार अधिगम संसाधानों का चयन, विन्यास एवं उपयोग करने का कार्यभार अध्यापक पर ही रहता है। अतः अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के माध्यम से यह प्रयास करना जरूरी है कि इन समस्त कार्यो के सफल निष्पादन के लिए उन्हें योग्य बनाया जा सके। उसी प्रकार प्रभावकारी सम्प्रेषण कुशलता की प्राप्ति को सुनिश्चित किये जाने की आवश्यकता है चाहे वह पाठ्यक्रमीय हो अथवा विशिष्ट अधिगमकर्ताओं के लिए शैक्षिक क्रिया तथा कार्यक्रमों का चयन तथा व्यवस्थापन करना हो। उचित मीडिया के साथ ही उपयुक्त अनुदेशनात्मक तकनीकी के उपयोग में कुशलता प्राप्ति, प्रभावकारी सम्प्रेषण के माध्यम से निरन्तरता एवं परिवर्तनजन्य व्यवधानों का सामना करने की योग्यता आदि को सुनिश्चित करना भी जरूरी माना गया है। अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम इस योग्य होना चाहिये जिससे छात्र में सामान्य शिक्षा के साथ ही व्यक्तिगत संस्कृति के विकास को महत्व दिये जाने के साथ ही व्यक्तिगत संस्कृति के विकास को महत्व दिये जाने की जरूरत है। वह दूसरों को पढ़ाने के लिये योग्य हो, उत्तम मानवीय सम्बन्धों के मूलभूत सिद्धान्तों के प्रति जागरूक हो, उत्तरदायित्व की भावना उनमें विद्यमान हो तथा समाज के लिए उदाहरण प्रस्तुत कर सके एवं सांस्कृतिक और आर्थिक प्रगति में योगदान दे सके।

अध्यापक शिक्षा के बी.एड. पाठ्यक्रम के संचालन हेतु राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् ने इस अवधि को दो वर्षीय करने की सिफारिश की है जो सर्वथा उचित है तथा शीघ्रातिशीघ्र कार्यरूप लाने का प्रयास करना चाहिये।

सन्दर्भ

- उपाध्याय, डॉ. प्रतिभा, भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियां, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2009.
- भट्टाचार्य, डॉ.जी.सी., अध्यापक शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, 2011
- शर्मा, डॉ.आर.ए., अध्यापक शिक्षा एवं प्रशिक्षण तकनीकी, आर.लाल.बुक डिपो, मेरठ, 2011
- National curriculum Framework for Teacher Education Towards Preparing Professional and Humane teacher. NCERT, 2009

गुरूकुल शिक्षा-पद्धति की वर्तमान समय में प्रासंगिकता

कर्मपाल

एम. फिल्., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

शिक्षा का मानव जीवन में विशिष्ट स्थान है। शिक्षा मानव में निहित असीम अज्ञान के भण्डार के आवरण को हटाकर उसके प्रकटीकरण द्वारा आत्मा की शक्ति को प्रकाशित करती है। शिक्षा मनुष्य के चारित्रिक बल, मानसिक बल एवं बुद्धि के विकास द्वारा उसे सही अर्थों में मानव बनाकर उसे समाज में रहने लायक बनाती है। यह शिक्षा ही है जो मानव को संस्कारवान बनाकर उसके वाञ्छित चरित्र एवं व्यक्तित्व के निर्माण द्वारा उन्नति सुनिश्चित करती है। भर्तृहरि ने भी **'विद्याविहीनः पशुः'** कहकर शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित किया है कि किस प्रकार शिक्षा से रहित मानव, मानव होते हुए भी पशुवत् होकर धरती का बोझ ही बनता है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जो सामाजिक संस्कृति के हस्तांतरण एवं सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं को पुष्पित एवं पल्लवित करती है।

भारतीय सभ्यता दुनिया की समस्त सभ्यताओं में अग्रणी रही है, इसका सारा श्रेय यहाँ की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था को ही जाता है। हमारे यहाँ पर शिक्षा को परोक्षार्थ को दिखाने वाले तृतीय नेत्र एवं मोक्षदायिनी के रूप में देखा गया है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप

प्राचीन भारतीय शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास, वैदिक ज्ञान परम्परा के संरक्षण से सम्बद्ध थी। प्राचीन काल में शिक्षा को **'सा विद्या या विमुक्तये'** कहकर मुक्ति के साधन के रूप में देखा गया है। प्राचीन काल में विद्या को ही वर्ण व्यवस्था का आधार स्वीकार करते हुए

मनुस्मृति में कहा गया है-

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं ....॥

प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति में संयम और चरित्र को बहुत अधिक महत्व दिया गया था। अथर्ववेद में कहा गया है कि **'आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणमिच्छते'**। निरुक्तकार यास्क ने विद्या को बहुमूल्य निधि बताते हुए इसको पात्र, जिज्ञासु, संयमी, मेधावी, गुरुभक्त शिष्यों को ही देने को कहा है।

'यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्' (निरु.)।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

भारतीय शिक्षा की मूल प्रणाली गुरुकुल प्रणाली थी। इस प्रणाली के द्वारा मात्र शिक्षा ही नहीं, चरित्र के निर्माण पर बहुत अधिक बल दिया जाता था। गुरु और शिष्य विद्या रूपी सम्बन्ध से सम्बद्ध रहते थे। इनका यह सम्बन्ध बहुत ही पवित्र और प्रभावपूर्ण था। छात्र को सदा ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था।

प्राचीनकाल में विद्या के अध्ययन की दो पद्धतियाँ थी। (1) दण्डमाणव और (2) अन्तेवासी। दण्डमानव शब्द से दण्ड का लोप हो गया था। अतः उसे केवल माणव कहा जाता था। वह सबसे छोटी श्रेणी का छात्र होता था। वेद की पढ़ाई प्रारम्भ के पूर्व वह माणव संज्ञाधारी होता था। यह भी कहा जा सकता है कि छोटी अवस्था में हाथ में दण्ड रखने के कारण उसे दण्डमाणव कहा जाता होगा। यथा-**'दण्डप्रधानाः माणवः'**।

सचमुच यह लगता है कि हाथों में डण्डा लेकर आश्रम में इतस्ततः भ्रमण करने वाले पशुओं से आश्रम की रक्षा करने वाले 'माणव' कहे जाते थे। उनका समूह माणव्य कहलाता था।

जब वेद पढ़ने की अवस्था हो जाती थी तो आचार्य माणवों का उपनयन संस्कार कराते थे। इस विशेष कर्म का आचार्य-करण करते थे।

इस संस्कार के पश्चात् वह माणवक सच्चे अर्थों में आचार्य का सामीप्य प्राप्त करता था। मनसा-वाचा-कर्मणा आचार्य के समीप पहुँचा हुआ ब्रह्मचारी 'अन्तेवासी' इस पदवी को धारण करता था। उपनीत हो जाने पर ब्रह्मचारी अजिन और कमण्डलु धारण करता था। कमण्डलुपाणि छात्र का उल्लेख भी भाष्य में प्राप्त होता है। इस चरण में पढ़ने वाले सभी अन्तेवासी ब्रह्मचारी परस्पर सब्रह्मचारी कहे जाते थे।

अतः यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार के प्राचीन समय में हमारी शिक्षा-पद्धति प्रचलित थी, वो आचार्यों द्वारा पोषित थी। इसी व्यवस्था के अनुसार अध्ययन-अध्यापन होता था। यास्क और पाणिनि के समय में जो चरण संज्ञक वैदिक शिक्षा संस्थाएँ थी उनकी परिषदों में अनेक प्रकार से शब्द और ध्वनि के नियमों का ऊहापोह किया गया था। चरण परिषदों के अतिरिक्त भी कितने ही आचार्यों ने शब्द विद्या के विषय में ग्रन्थ रचे थे, उनमें से कुछ का प्रमाण स्वयं पाणिनी ने दिया है। उस विस्तृत सामग्री की पृष्ठभूमि को लेकर पाणिनि ने अपना शास्त्र बनाया।

समाज में गुरु का स्थान

गुरु का स्थान समाज में अत्यन्त उच्च था, गुरु को आचार्य शब्द से सम्बोधित किया जाता था, जिसका अर्थ है- 'आचिनोति अर्थान् आचारान् कारयति'। अर्थात् सब विषयों का अध्ययन करता स्वयं आचरण करता है दूसरों से कराता है। इसीलिए भारत में गुरु को उच्च स्थान देकर विशिष्ट सम्मान देते हुए 'आचार्य देवो भव' का सन्देश दिया है। आचार्य तपस्वी एवं भली भाँति अपने सुयोग्य नागरिकों के निर्माण के कर्त्तव्य का निर्वहण करने वाले होते थे, उनका आचरण अनुकरणीय होता था। गुरुओं के पर्याप्त सम्मान के साथ ही शिक्षक से समाज को अनेक अपेक्षाएँ भी थी **'शिष्यापराधे गुरोर्दण्डः'** शिष्य के अपराध का जिम्मेवार गुरु को माना जाता था।

आचार्य विनोबा भावे के अनुसार - 'शिक्षक अपरिग्रही होता था समाज से धोती और अन्न का ही अधिकारी माना जाता था'। गुरु निःशुल्क शिक्षा प्रदान करते थे। गुरु नैतिकता, संस्कारों एवं संस्कृति का

प्रसारक सात्विकता का प्रतिमूर्ति होता था। एवं शिष्य का पालन गर्भस्थ शिशु की तरह करता था।

गुरु शिष्य सम्बन्ध

गुरु शिष्य सम्बन्ध अत्यन्त पवित्र एवं पिता-पुत्र तुल्य था जहाँ गुरु अपने सच्चरित्र एवं कर्तव्यपरायणता द्वारा पुत्र के समान पक्षपात रहित होकर शिष्य की अज्ञानरूपी व्याधि का निराकरण करते थे एवं आचार-व्यवहार सिखाते थे। वहीं शिष्य भी सदाचारपूर्वक गुरुगृह के नैतिक कार्य एवं गुरु की सेवा-शुश्रूषा नियमित रूप में श्रद्धापूर्वक करते थे। इस विषय में मनु ने भी कहा है- **'गुरु शुश्रूषया त्वेव ब्रह्मलोके महीयते'** गुरु शिष्य सम्बन्ध को सही तरह से स्पष्ट करने के लिए मात्र धौम्य और आरुणि का वृत्तान्त ही काफी है। गुरु और शिष्य परस्पर एक दूसरे की रक्षा आदि करने की प्रतिज्ञा करते थे।

सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

गुरु शिष्य सम्बन्ध इतना प्रगाढ़ था कि निःसन्तान गुरु के पारलौकिक कर्तव्यों का निर्वहण शिष्य ही करता था।

प्राचीन भारत में नारी-शिक्षा

प्राचीन भारत में नारी का स्थान अत्यन्त उच्च था। नारी को वे सभी अधिकार प्राप्त थे जो किसी पुरुष को प्राप्त थे। नारी को अर्द्धांगिनी कहा जाता था। वह प्रत्येक धार्मिक कार्य में शामिल हो सकती थी। कन्याओं की शिक्षा के विषय में मनु ने कहा है-

'कन्या अपि एवं पालनीय शिक्षणीया अपि यत्नतः'

इसी तरह वेद में **'ब्रह्मचर्येण युवानं विन्दते पतिम्'** कहकर स्त्री शिक्षा को अनिवार्य बताते हुए शिक्षित नारी के द्वारा पति प्राप्त करने की बात कही है। प्राचीन काल में नारियों का भी यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता था एवं वे वेदाध्ययन की अधिकारिणी थी।

पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।

सः हेतुः सर्वविद्यानां सावित्री वचनं यथा ॥

प्राचीनकाल में नारियों को वेदाध्ययन एवं यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त था। रामायण में इस विषय में रानी कौसल्या से सम्बन्धित वृतान्त प्राप्त होता है, जब वह राम की युवराज पद की प्राप्ति के दिन प्रातः काल से ही यज्ञ कर रही थी।

सा सौमवसना दृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।

अग्निं जुहौति स्म तदा मन्त्र विस्कृत मङ्गला ॥

प्राचीनकाल में व्यावसायिक शिक्षा

प्राचीनकाल में श्रम को अत्यधिक महत्व प्राप्त था एवं किसी भी कार्य को छोटा नहीं माना जाता था। यहाँ व्यावसायिक शिक्षा भी अपने चरम पर थी। यह शिक्षा वर्णानुसार सुनिश्चित की गई थी। लेकिन वर्णव्यवस्था जन्म से न होकर कर्माधारित थी। जिसमें पौरोहित्य, सैनिक शिक्षा, वाणिज्य शिक्षा, शिल्पकला, आयुर्वेद, धनुर्वेद, युद्धकला आदि की शिक्षा दी जाती थी। जहाँ नालन्दा में चिकित्साशास्त्र एवं अन्य शास्त्रों का अध्ययन करवाया जाता था, वहीं तक्षशिला में आयुर्वेद, शल्य-चिकित्सा, धनुर्विद्या सम्बद्ध युद्ध विद्या, ज्योतिष, कृषि आदि 18 शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त कृषि विद्या एवं घरेलू कार्यों एवं जीवन की जिम्मेदारियों के निर्वाह आदि कार्यों को छात्र गुरुगृह में इन जिम्मेदारियों के निर्वहण के दौरान ही सीख जाता था।

वर्तमान समय में उपादेयता

वर्तमान समय में समाज एवं शिक्षा के क्षेत्र में अनेक विसंगतियाँ आ गई है जैसे अनुशासन की समस्या, अध्यापक-छात्रों का सम्बन्ध, छात्रों में मानसिक तनाव, अवसाद आदि, एवं कई प्रकार की सामाजिक बुराइयाँ आदि ऐसा संस्कारों एवं नैतिक मूल्यों के पतन के फलस्वरूप हुआ है।

प्राचीन शिक्षा पद्धति इन विसंगतियों को काफी हद तक दूर कर सकती है। उसमें निहित नैतिकता एवं मानवीय तत्त्वों को अगर ध्यान में

रखकर शिक्षा का पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाय तो इन विसंगतियों का निराकरण संभव है। गुरुकुलीय दिनचर्या, शारीरिक-मानसिक एवं आत्मिक विकास द्वारा सुयोग्य एवं स्वस्थ नागरिकों के निर्माण में योगदान दे सकती है। गुरुकुल व्यवस्था आधारित छात्रावास व्यवस्था में छात्रों के आने-जाने का बचाव हो सकता है जिससे कि उन्हें अपने अध्ययन के लिए अतिरिक्त समय मिल पायेगा। वर्ष में एक-दो बार ही अवकाश होने या न होने पर छात्र घरेलू समस्या से दूर रहेंगे, एवं अध्ययन में ध्यान लगेगा। वर्तमान प्रणाली में छात्र मात्र 5 या 6 घण्टे ही अध्यापक के निरीक्षण में रहता है। दिन-रात गुरु के निरीक्षण में रहने से छात्र अनेक प्रकार की नशा आदि बुराईयों से बचा रह सकता है। गुरुकुलीय दण्ड व्यवस्था से छात्रों में सम्मानमिश्रित भय भी बना रहता है। कहा भी गया है कि 'भय बिनु होत न प्रीति'। गुरु शिष्य का सामीप्य एवं परस्पर निर्भरता उन्हें एक दूसरे से जोड़े रहकर गुरु शिष्य में क्रमशः वात्सल्य एवं श्रद्धा के भाव का सञ्चार करते हैं। सन्ध्यावन्दन, ईश्वरभक्ति, योग आदि छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम रहकर एकाग्रती की वृद्धि में सहायक हो सकते हैं।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति जो वेदों और उपनिषदों पर आधारित थी, पूर्णतया व्यावहारिक एवं पुरुषार्थचतुष्ट्य की प्राप्ति द्वारा मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कराने वाली थी। इस शिक्षा में यथास्थान मानवमात्र के लिए कर्त्तव्यों का निर्देश दिया गया है। शिक्षा की समाप्ति पर गुरु द्वारा समावर्तन उपदेश में **'सत्यं वद' 'धर्म चर' 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः'** उपदेश द्वारा भावी जीवन के लिए निर्देश, मात्र अपने सद्गुणों को अपनाने एवं दुर्गुणों को छोड़ देने एवं सन्देह की स्थिति में श्रेष्ठ व्यक्तियों के आचरण से प्रेरणा का निर्देश तत्कालीन शिक्षा के उद्देश्यों की भव्यता को सूचित करते हैं। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने मात्र लौकिक विषयों की शिक्षा और न ही पारलौकिक अपितु दोनों ही प्रकार की विषयों के बेहतर समन्वय की दृष्टि हमें प्रदान करती है। जहाँ इहलोक के लिए काम और अर्थ को शिक्षा के उद्देश्य के रूप में स्वीकृत किया गया है, वहीं धर्म और मोक्ष को भी स्थान मिला है। अतः

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली छात्र के मात्र एक पक्ष की पोषिका न होकर सर्वांगीण विकास की उद्घोषिका है। अतः गुरुकुल प्रणाली के शिक्षा के उद्देश्यों को यदि पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाय तो ये छात्रों के समन्वित विकास में सहायक हो सकती है।

निष्कर्षतः गुरुकुलीय व्यवस्था की अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनका यदि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के साथ समन्वयीकरण किया जाय तो बेहतर परिणाम प्राप्त हो सकता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुरूकुल शिक्षा पद्धति की सार्थकता

कपिल देव

एम.एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

समय समय पर धर्म के अनुरूप परिवर्तित होना, प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता रही है। प्राचीन काल में सभ्यता व संस्कृति को बनाने तथा इसमें परिवर्तन लाने में राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक कारकों की अपेक्षा धर्म एवं शिक्षा का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है इसलिए प्राचीन काल में शिक्षा भी धर्म से निर्देशित होती थी। प्राचीन भारतीय शिक्षा भी धर्म की ही देन है। हिन्दु धर्म वस्तुतः सनातन काल से चला आ रहा है जो मानव मात्र के प्रति कल्याण कामना, सद्भावना तथा सौहार्द्र से परिपूर्ण है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा का उदय वेदों से माना जाता है यद्यपि वेदों को अपौरूषेय माना जाता है। प्राचीन काल में जीवन दो प्रकार से विभक्त था परा और अपरा। परा का अर्थ है कि ज्ञान, कर्म तथा उपासना के द्वारा ब्रह्म अर्थात मोक्ष की प्राप्ति करना। जबकि अपरा का अर्थ था संगठित तथा नियोजित सामाजिक व्यवस्था का संचालन करना। इस प्रकार प्राचीन काल में मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्यों के प्राप्ति हेतु तथा विद्योपार्जन के लिए अपने गुरूओं के पास जाकर विद्या ग्रहण करने लगा जिससे गुरूकुल पद्धति का अनावरण हुआ। बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा उसके घर पर ही शुरू हो जाती थी। इस प्रकार गृह आधारित शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य गुरूकुलों में उपनयन संस्कार के बाद दी जाने वाली औपचारिक शिक्षा के लिए बालकों को तैयार करना होता है।

प्राचीन काल में विद्यारम्भ संस्कार के द्वारा बालक को प्रथम बार अक्षर ज्ञान कराया जाता था। यह संस्कार प्रायः 5 वर्ष की आयु में

होता था तथा माता पिता एवं कुलपुरोहित के द्वारा बालक को वर्णमाला लिखाने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती थी। इस प्रकार घर की बालक की प्रथम परन्तु औपचारिक शिक्षा संस्था होती थी। औपचरिक शिक्षा के लिए प्राचीन काल में छोटे छोटे पारिवारिक विद्यालय हुआ करते थे जिनका संचालन शिक्षक स्वयं व्यक्तिगत रूप से करता था। इन पारिवारिक विद्यालयों को आश्रम अथवा गुरुकुल अथवा आचार्य कुल कहते थे।

गुरूकुल प्राय: नगरों व शहरों के कोलाहल से दूर उपवनों तथा जंगलों में प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण एकान्त रमणीय स्थानों पर स्थित होते थे जिसके संचालन में गुरूपत्नी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती थी। गुरूपत्नी माता की तरह आश्रमवासी शिष्यों की देखभाल करती थी। गुरूकुल में शैक्षिक तथा आध्यात्मिक पर अत्यन्त बल दिया जाता था।

वेश-भूषा : वैदिक काल में गुरूकुलों में रहने वाले छात्रों की वेश-भूषा भी निश्चित रहती थी। शरीर के ऊपरी भाग के वस्त्र के रूप में मृगचर्म का उपयोग किया ज़ाता था प्रत्येक वर्ण के आधार पर वेश-भूषा निर्धारित की गई थी जिसमें क्षत्रियों को धब्बेदार हिरण की खाल, ब्राह्मण काले वर्ण के हिरण की खाल तथा वैश्य बकरे की खाल का उपयोग करते थे। शरीर के निम्न भाग को ढकने के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य क्रमश: सन्, रेशम तथा ऊन से बने वस्त्रों का प्रयोग करते थे। यज्ञोपवीत धारण करने का भी प्रावधान था।

दिनचर्या : गुरूकुल में प्रवेश लेने के उपरान्त छात्रों को कठोर नियमों वाले अनुशासन में रहना होता था। छात्रों ब्रह्म मुहूर्त में उठकर अपने नित्य कर्मादि कार्यो से निवृत होकर तत्पश्चात् विद्याध्ययन का कार्य करते थे। भिक्षाटन भी गुरूकुल परम्परा की एक विशेष पद्धति थी जिससे छात्रों के विनम्रता, सामाजिकता, भद्रता, सहनशीलता एवं सहकारिता जैसे व्यक्तिगत गुणों का विकास होता था। पशुपालन के व्यावहारिक अनुभवों से छात्रों में आत्मनिर्भरता, व्यावसायिकता, सहानुभूति, पशुप्रेम, आदि गुणों का विकास होता था। खेती से प्रकृति के प्रति पेड़ पौधों के प्रति वात्सल्य, सौन्दर्य, समर्पित भावनाओं का विकास होता था।

शिक्षा पद्धति : वैदिक काल में पाठ्य विषयों को एकाग्र तथा

समन्वित रूप से पढ़ाने की पद्धति प्रचलित थी। गुरू जी के सम्मुख बैठकर शिष्य शास्त्रों का अध्ययन करता था। वैदिक काल में शिक्षा के कण्ठस्थीकरण पर अधिक बल दिया जाता था। गुरूकुलों में शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम की व्यवस्था थी जिसमें धर्म, दर्शन, वेद, वेदांग, नीतिशास्त्र आदि विषय पढ़ाये जाते थे। इसके अतिरिक्त प्रयोगात्मक ज्ञान भी प्रदान किया जाता था। अपना विद्या के अन्तर्गत इतिहास, ज्योतिष, गणित, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भूगर्भ विद्या, भौतिकशास्त्र, कृषि आदि विषय पढ़ाये जाते थे। विशेषतया छात्रों की शिक्षा प्रणली में अधिकतर प्रयोगात्मक पक्ष पर बल दिया जाता था जिससे बौद्धिकस्तर तथा चिन्तनस्तर का विकास होता था। गुरूकुल शिक्षा में मुख्यतया निम्नवत् शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता था–

योग : इससे शरीर में पुष्टता आती थी तथा चिन्तन शक्ति का विकास होता था।

सूर्यनमस्कार : इससे शरीर में पौष्टिकता तथा चक्षुओं में रोशनी की वृद्धि होना, स्फूर्ति आना।

धनुर्विद्या : इससे शारीरिक क्षमताओं में वृद्धि होना।

मल्लयुद्ध : इससे छात्रों में आपस में प्रेम भावना को सुदृढ़ बनाने में सहायता मिलती थी।

मन्त्रों का गायन : इससे छात्रों में संगीत के प्रति तथा मानसिक योग्यता का प्रभाव दिखाना।

शास्त्रार्थ : गुरू जी के समीप बैठकर छात्रों का शास्त्रार्थ का होना जिससे तर्क वितर्क से उनकी मनन शक्ति में तीव्रता का होना।

इस प्रकार के क्रिया कलापों से उनके चारित्रिक मानसिक, विकास का शीघ्रता से विकास होता था।

शिक्षण विधि : वैदिक काल में छात्रों को ज्ञान प्राप्त करने की दो मुख्य विधियां तप और स्वाध्याय प्रचलित थीं।

1. तप : इस विधि से छात्र स्वयं मनन, चिन्तन, तथा आत्म अनूभूति करके ज्ञान प्राप्त करते थे।

2. श्रुति : इस विधि से छात्र गुरू मुख से सुनकर सीखते थे।

परीक्षा प्रणाली : वैदिक काल में औपचारिक शिक्षा प्रणाली में परीक्षाएं सामान्य नहीं होती थी अर्थात् गुरूकुल परीक्षा विहीन प्रणाली ही प्रचलित थी। अध्यापक प्रत्येक दिन छात्रों के ज्ञान का परीक्षण करते थे जब तक सन्तुष्ट नहीं हो जाते थे तब तक आगे का पाठ नहीं पढ़ाते थे। छात्रों को विद्वानों के समक्ष सभाओं में अपने ज्ञान को प्रमाणित करना पड़ता था।

दण्ड व्यवस्था : वैदिक काल की शिक्षा पद्धति में दण्ड की व्यवस्था नहीं होती थी। आवश्यकता पड़ने पर छात्र को उद्दालक व्रत का पालन करना पड़ता था। उद्दालक व्रत में छात्र को लगभग तीन माह तक अत्यन्त अल्प आहार पर रहकर आत्मशुद्धि करनी होती थी।

वर्तमान काल में गुरूकुल शिक्षा का स्वरूप

वर्तमान भौतिक जगत के इस युग में प्रोद्यौगिकी के बढ़ते प्रचलन के कारण गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में कमी देखी गई है। वैदिक काल में सम्पूर्ण देश में शिक्षा ग्रहण करने के लिए छात्रों की सर्वप्रथम अपने गृह से शिक्षा प्रारम्भ होती थी जो बाद में गुरूकुलों में परिवर्तित होती थी अर्थात सम्पूर्ण देश में शिक्षा के लिए गुरूकुल मुख्य स्थान थे। गुरूकुलों में विभिन्न प्रकार के विद्वानों का समावेश हुआ करता था। जिनमें मुख्यतया नीति शास्त्रज्ञ एवं विभिन्न विषयों के ज्ञाता होते थे जो छात्रों के नैतिक मूल्यों का विकास करते थे और छात्रों के मन में नूतन ज्ञान की अभिलाषा विकसित करते थे। उस समय गुरूकुल शिक्षा की एक अमिट छाप सम्पूर्ण देश में विराजमान थी।

आज की शिक्षा प्रणाली यद्यपि वैदिक शिक्षा प्रणाली से भिन्न होने के कारण गुरूकुलों की स्थिति दयनीय हो चुकी है। गुरूकुलों में छात्रों का अभाव हो रहा है जिसके कारण वहां पर अध्ययन अध्यापन का कार्य नाम मात्र ही चल रहा है। गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में मुख्यतः मध्यमवर्गीय परिवारों के ही बालकों का आगमन हो रहा है क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति सही न होने के कारण वह गुरूकुलों के प्रति अपना अधिक रूझान रखते हैं। परन्तु आज के युग में गुरूकुलों के

संचालकों का छात्रों के प्रति वात्सल्य पूर्ण व्यवहार न होने के कारण बहुत से छात्र गुरूकुल छोड़ कर चले जाते हैं।

अतः आधुनिक युग में संस्कृतभाषा में विद्यमान शास्त्रों की उपयोगिता का आज की शिक्षा परम्परा को नियोजित करने के लिए व अनेक प्रकार की समस्याओं के समाधान हेतु संस्कृतभाषा में निहित मूल्यों का संरक्षण एवं संवर्धन करने की विशेष आवश्यकता है जिसके लिए गुरूकुल शिक्षा पद्धति के आधारभूत सिद्धान्तों के आधारों पर ध्यान देना आवश्यक है।

वर्तमान में गुरूकुल शिक्षा प्रणाली की उपादेयता

भारतीय ज्ञान और ज्ञान की परम्परा आज भी विश्व के ज्ञान परम्परा का आधार स्तम्भ है। भारतीय दर्शन की पदावली शिक्षा एक विशेष सम्प्रेषण के अर्थ में ही अभिप्रेरित थी लेकिन समयान्तर के पश्चात् शिक्षा एक व्यापक मानव निर्माण की प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त होने लगी। गुरूकुल शिक्षा पद्धति में आदर्श–श्रद्धा–भक्ति–सेवा–आदर–आत्म अनुशासन–सादा जीवन–उच्च विचार– ब्रह्मचर्य नैतिक बल आदि विचारों को अनुसरण करवाने पर अधिक बल दिया जाता था।

वर्तमान युग में मनुष्यों में नैतिक मूल्यों का अभाव होने के कारण तथा उचित शिक्षा व्यवसाय न होने के कारण छात्रों में असन्तोष अनुशासन हीनता बेरोजगारी निर्धनता वर्ग संघर्ष दुराचार जैसी समस्याएं आती हैं जो वर्तमान में विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु शिक्षा की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। **Man Making Education** का होना अनिवार्य है तथा महात्मा गांधी जी का विचार सार्थक हो पाएगा कि "भारत कर्म भूमि है न कि भोग भूमि"। अर्थात कर्त्तव्य को सम्मुख रखते हुए अधिकार को प्राप्त करने की अभिलाषा करना हमारे भारतीय मनीषियों की उत्कृष्ट सोच रही है। इसी कारण भोग विलासिता का एक पाक्षिक दृष्टिकोण भारतीय शिक्षा पद्धति में मान्य नहीं है। गुरूकुल शिक्षा प्रणाली के आदर्श तत्वों को वर्तमान शिक्षा में समावेश करके ही इन समस्याओं से छुटकारा मिल

सकता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुरूकुल शिक्षा प्रणाली से निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है।

- शिक्षा के लक्ष्य के सन्दर्भ में वैदिक शिक्षण पद्धतियों की प्रासंगिकता।
- पाठ्यक्रम में सुधार हेतु वैदिक शिक्षण की उपादेयता।
- अनुशासन स्थापन में।
- अध्यापकों और विद्यार्थियों के अधिकार और कर्त्तव्यों को सुनिश्चित लिए।
- शिक्षा और समाज के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए।

वर्तमान युग में गुरूकुल शिक्षा पद्धति की सार्थकता के लिए उनके सिद्धान्तों का अनुसरण करना अतीव आवश्यक है।

गुरू-शिष्य सम्बन्ध : गुरूकुल में अध्यापक और छात्रों के बीच मधुर व आध्यात्मिक सम्बन्ध होते थे। जिससे उसमें सेवा तथा आदर्शों का समावेश होगा।

अनुशासन : गुरूकुल शिक्षा पद्धति में अनुशासन हमेशा था जिससे छात्रों में संयम प्रेम सौहार्द्र सम्बन्ध रहता था। अतः छात्रों को अनुशासन की शिक्षा भी होनी चाहिए।

चरित्र निर्माण : गुरूकुल में चरित्र निर्माण के बहुत प्रकार के नियम थे। सात्विक विचारों को ग्रहण करना, सत्य बोलना, जनहित भावना परोपकार आदि अद्यतन युग में कुछ नैतिक विचारों से सम्बन्धित शिक्षा अवश्य होनी चाहिए।

पाठ्यक्रम : पाठ्यक्रम में इतिहास, वेद, वनस्पति, चिकित्सा, ज्योतिष, गणित, भूगर्भविद्या, तर्कशास्त्र आदि का अध्ययन कराया जाता है जिससे भू-मण्डल में प्रकृति, मानव, जीव-जन्तु के बीच मित्रवत् भाव उत्पन्न होते थे। इनका भी विशेष महत्व है।

नारी शिक्षा : गुरूकुल शिक्षा पद्धति में नारी शिक्षा अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में थी। उसे पुरूष के ज्ञान बल और क्रियाओं का साझीदार माना जाता था। वर्तमान उनके उचित व्यवहार के अनुकरण की भी आवश्यकता है।

ज्ञान प्रदान स्थल : गुरूकुल शिक्षा पद्धति में छात्रों को उचित स्थान पर ज्ञान दिया जाता था गुरूकुल गुरूओं के द्वारा चलाये गए पारिवारिक विद्यालय होते थे जो एकान्त वातावरण में प्रकृति के मध्य अरण्य स्थान पर अधिक होते थे। वर्तमान में विद्यालयों को गुरूकुलों के आधार पर विकसित किया जाए तो उनमें नैतिक गुणों का विकास हो सकेगा और आत्मविकास के लिए स्वयं वातावरण का निर्माण कर लेंगे।

अत: प्राचीन शिक्षा प्रणाली के आदर्श तत्वों को वर्तमान शिक्षा में समावेश करके इन विकराल समस्याओं का समाधान सम्भव है। जीवन के वास्तविक गुणों मूल्यों व आर्दशों का अनुसरण करके हमारे छात्रगण भारतवर्ष की समृद्धि तथा वैभव का पुनरोद्धार कर सकेगें। जब हमारी शिक्षा में प्राचीन सनातन धर्म के सिद्धान्तों को सम्मिलित किया जाएगा तब ही हमारी शिक्षा प्रणाली अतीत की भान्ति विदेशी छात्रों को अपनी ओर आकर्षित कर पाएगी तथा भारतीय शिक्षा के गौरव को पुन: महिमामण्डित कर सकेगी। डा. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर ने ठीक कहा है कि- "हमारे युवा भारतीयों को उस विरासत को पहचानने दो जो उनकी अपनी है। ईश्वर करे की युवा पीढ़ी भारत की वास्तविक आत्मका को पहचानने तथा अपने सभी कार्यों में उसका अनुसरण करें"।

गुरूकुल शिक्षा पद्धति एवं उसके अनुसरण करने वर्तमान कालिक ओत-प्रोत भारतीय जीवन को एक नवजीवन दिया जा सकता है। वैदिक शिक्षा में विश्व बन्धुत्व की भावना जो आजकल विलुप्त सी प्रतीत हो रही है उसको नवीनता प्रदान करने के लिए गुरूकुल शिक्षा के तत्वों का अनुसरण वर्तमान कालिक शिक्षा में समाहित करके आज के समाज की अनेक प्रकार की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

अध्यापक शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ

नविता एवं दयानिधि तिवारी
एम. एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

विषय प्रवेश

'उपनीय तु यः शिष्य वेदम् अध्यापयेत् द्विजः।
संकल्प सरहस्यं च तम् आचार्य प्रचक्षते ।।'

अध्ययन अध्यापन के माध्यम से परा और अपरा जैसी विद्याओं को आचार्य शिष्य परम्परा से समझने का प्रयास इस भारत भूमि पर चलता आ रहा है।

'आचार्य पूर्वरूपं अन्तेवासी उत्तररूपम्।
विद्या सन्धि प्रवचनम् सन्धानम् ।।'

आचार्य अपने शिष्यों को विद्या(विभिन्न विषयों) को मध्यस्थ स्थापित (पाठ्यक्रम) करते हुए प्रवचन (व्याख्यान) के माध्यम से शंका समाधान पूर्वक अध्ययन प्रक्रिया चलाया करते थे।

भारतीय परम्परा रही है कि एक अध्यापक अपने शिष्यों को अपने गुणों से प्रभावित करे। अपने आचरणों से शिक्षा ग्रहण कराये तभी तो–

'आचारं ग्राह्यति इति आचार्यः'

कहते हुए स्पष्ट किया गया है कि आचार्य तो वह है जो अपने आचरण से सिखाये।

'आचिनोति बुद्धिम् इति आचार्यः'

आचार्य अपने शिष्यों की विभिन्न परीक्षणों द्वारा तथा विभिन्न क्रियाकलापों के द्वारा उसे बुद्धि से सन्मार्ग पर चलाता है।

प्राचीन समय में श्रृंखलाबद्ध अध्ययन अध्यापन होता था। आचार्य प्रज्ञावान् शिष्यों को पढाया करते थे। इस प्रकार विभिन्न विषयों के मर्मज्ञ आचार्य विभिन्न क्षेत्रीय प्रज्ञावान् शिष्यों को विभिन्न विषयों की विद्या सिखाते थे और वो विभिन्न प्रज्ञावान् शिष्य कनिष्ठों को विभिन्न विषयों का ज्ञान प्रदान करते थे। इस तरह प्रज्ञावान् शिष्यों पर आचार्यो को पूर्ण विश्वास हो जाता था तभी आचार्य सभी के समक्ष उन शिष्यों को (प्रज्ञावानों को) पढाने का पूरा हक प्रदान करते थे।। यानी प्रज्ञावान् शिष्य भी अध्यापन कार्यो में निपुण हो जाते थे। इस तरह अध्यापक शिक्षा की अवधारणा तथा विभिन्न विषयों में परंपरा होने की परिकल्पना का प्रारम्भ हुआ।

यह प्राचीन परम्परा आगे चलकर सामाजिक जीवन का एक अंग बन गया कि जो अध्ययन अध्यापन करने लगा वह ब्राह्मण कहलाने लगा जो विभिन्न विषयों का ज्ञाता होता था। एक अध्यापक के लिए-

चारों वेद, छः अंग, उपवेद, स्मृति धर्मशास्त्र, शस्त्र विद्या, राज विद्या, अर्थविद्या, व्यवहारकुशल आदि विषयों का मार्मिक ज्ञान होना चाहिए तभी वह अध्यापन का कार्य कर सकता था। वाद-विवाद वाक् पटुता तो उसके मूलभूत गुण माने जाते थे।

इस प्रकार से एक आचार्य के पद को प्राप्त करने हेतु उपरोक्त पाठ्यक्रम को पूरा करना अनिवार्य था। जब तक एक शिष्य प्रज्ञावान् बनकर उपरोक्त विषयों का अध्ययन करके आचरण मे नहीं उतारता था तब तक वह आचार्य नहीं बन सकता था। यहीं से आचार्य हेतु पाठ्यक्रम की अवधारणा प्रारम्भ हुई जिसे पूरा करना अनिवार्य था।

एक अध्यापक के लिए पाठ्यक्रम का आधार व्यक्ति, समाज, दर्शन एवं विषय को माना गया। विभिन्न दृष्टिकोण के आधार पर सामाजिक दृष्टिकोण, दार्शनिक दृष्टिकोण, विचार धाराओं एवं व्यक्तिगत मान्यताओं को आधार मानकर एक अध्यापक के निर्माण हेतु विषयों का समावेश होता गया। यह परिवर्तन विकास कहलाया और अध्यापकों के निर्माणार्थ पाठ्यक्रम में समय के साथ विकास होता रहा और यह-

- उद्देश्य के आधार पर
- प्रक्रिया के आधार पर,
- परिस्थिति के आधार पर

विकास होता रहा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा, नवोदय विद्यालय, उच्च शिक्षा के स्तर पर सेवारत अध्यापक प्रशिक्षण, दूरवर्ती शिक्षा, आदि अनेक महत्वपूर्ण सुझाव आए तथा इन सुझावों को लागू करने में कुछ नवीन प्रवृतियाँ समुपस्थित हुई। उन्हीं को ध्यान में रख कर एक अध्यापक के निर्माण में पाठ्यक्रम विकासार्थ उदीयमान प्रवृत्तियों के अन्तर्गत यहाँ चर्चा की जायेगी।

विषय विवेचन

प्राचीन काल से अब तक विभिन्न पाठ्यक्रमों के माध्यम से एक कुशल अध्यापक का निर्माण कैसे हो सके इस पर विचार किया गया है। आज का युग प्रतिक्षण बदलता जा रहा है। नित्य नइ प्रवृत्तियां उत्पन्न हो रही है। विभिन्न परिवर्तन देखने को मिलते जा रहे हैं। ऐसे में शिक्षा के क्षेत्र में भी स्वभावत: अनेक परिवर्तन आए हैं। एक छात्र में वर्तमान समाजोपयोगी विचारों से अवगत कराना एक अध्यापक के लिए चुनौती है कि इस यन्त्राधारित समाज में भी मानव के अस्तित्व को बचाते हुए समाज के भावी कर्णधारों छात्रों का सही निर्माण कर सकें।

अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम विकास

अध्यापक को समाज का निर्माता माना गया है। एक शिक्षक चाहे तो समाज की दिशा और दशा ही बदल सकता है। ऐसे में एक शिक्षक को सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक, आर्थिक, व्यावहारकि, सर्वशिक्षण विधियों से सुव्यवस्थित रूप से जानकार होना चाहिए। इसके लिए अध्यापकों में ये गुण आऐं इस हेतु अनेक अध्यापक प्रशिक्षण प्रकल्प प्रारम्भ किए गए। तथा उन प्रकल्पों के माध्यम से एक निश्चित विषयवस्तु पाठ्यक्रम के माध्यम से वो सभी विषयों से उन सभी क्षेत्रों से एक अध्यापक को अवगत कराया जाता है।

इसी पाठ्यक्रम में निम्न-

• **उद्देश्य के आधार पर**-नित्य नये सामाजिक, नैतिक, व्यावहारिक, आदि उद्देश्य बदलते रहते हैं उन्हें आधार मानकर अध्यापकों के पाठ्यक्रम में विकास यानि परिवर्तन किया जाता है अद्यतन किया जाता है।

• **प्रक्रिया के आधार पर**-शिक्षण के विभिन्न आयामों के आधार पर प्रक्रियाओं में परिवर्तन किया जाता है, जिस आधार पर पाठ्यक्रम में विकास किया जाए वह विकास है।

• **परिस्थिति के आधार पर**-पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाली विभिन्न परिस्थितियां हैं जिनको ध्यान में रखकर विकास किया जाता है, छात्रों की अभिवृत्तियां, उपलब्ध साधन, एवं उपकरण तथा विद्यालय का वातावरण आन्तरिक घटक है तथा सामाजिक परिस्थिति, राजनैतिक परिस्थिति, आर्थिक परिस्थिति, समाज एवं अभिभावकों की आकांक्षा आदि बाह्य घटक है। इनके आधार पर जब पाठ्यक्रम में विकास होता है।

इस प्रकार से अध्यापक के लिए जो जो विषयवस्तु उपयोगी होती है उन सब को समावेश यदि किया जाए तो वह पाठ्यक्रम में विकास माना जाता है।

अध्यापक शिक्षा के विभिन्न बोध और कौशलों को विकसित करने योग्य विषय को पाठ्यक्रम के विकास में प्रयुक्त किया जाता है।

अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम विकास में उदीयमान प्रवृत्तियाँ

इस प्रकार से जब हम देखते हैं कि पाठ्यक्रम में उद्देश्य प्रक्रिया के आधार पर तथा परिस्थिति के आधार पर पाठ्यक्रम में परिवर्तन होते हैं यही विकास है, तब हमें वर्तमान समय के उदीयमान विभिन्न प्रवृत्तियों पर भी चर्चा करनी पड़ती है।

अध्यापक शिक्षा के उदीयमान प्रवृतियों आधार

- व्यावहारिकता में परिवर्तन आया है।
- विद्यालयीय कार्यक्रमों में नये परिवर्तन आये हैं।
- अध्यापन में प्रयोगात्मकता पर विशेष बल दिया है।
- अध्यापकों में कौशलों की विविधता की मांग है।
- समसामयी विचारधारा से जोडना है।
- अध्यापक को सर्वगुण सम्पन्नता की आकांक्षा।

इन सभी आधारभूत आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर जब हम अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम के विकास में जब हम चर्चा करतें हैं तो निम्न उदीयमान प्रवृतियां हमारे समक्ष उपस्थित हो जाती है जिनसे पाठ्यक्रम के विकास में सहयोग मिलता है-

1. **दल शिक्षण (Team Teaching)**
2. **पैनल चर्चा विधि (Panel Discussion Method)**
3. **कम्प्यूटर आधारित शिक्षण (Computer Besed Teaching)**
4. **शैक्षिक पर्यटन विधि (Field Trips Method)**
5. **सेमिनार शिक्षण विधि (Seminar Teaching Method)**
6. **संगोष्ठी शिक्षण (Conference Teaching Method)**
7. **कार्यशाला प्रविधि (Workshop Teaching)**

दल शिक्षण (Team Teaching)

दल शिक्षण शब्द अंग्रेजी के Team Teaching से बना है। इसका शब्दिक अर्थ किसी दल द्वारा शिक्षण किया जाना है। परम्परागत शिक्षण व्यवस्था में कक्षा शिक्षण के लिए एक अध्यापक होता है जो कि उपयुक्त शिक्षण विधियों के स्थान पर विभिन्न क्षेत्रों में दक्ष अध्यापक एवं उनके सहायक होते हैं। यह दल विषयवस्तु तथा शिक्षण की आवश्यकता अनुसार उनके शिक्षण कार्य को प्रमुख रूप से सम्पादित

करता है।

अर्थ-दल शिक्षण का तात्पर्य कक्षा में एक दल द्वारा शिक्षण कार्य करने से है। इस शिक्षण प्रक्रिया में प्रमुख शिक्षक होता है जो कि अल्प सहयोगी शिक्षकों की उपस्थिति में कक्षा के छात्र-छात्राओं के सम्मुख विषय प्रस्तुत करता है। अन्य अध्यापक विद्यार्थियों के उप-समूह में इस विषयवस्तु पर चर्चा करते हैं अथवा संगोष्ठियां आयोजित करते हैं

दल शिक्षण की विशेषतायें

1. **सह-क्रियात्मक।**
2. **व्यवसायिक आधार।**
3. **रुचियों का ज्ञान।**
4. **कक्षा पर नियंत्रण।**
5. **विचार विमर्श विधियों के आयोजन में सुविधा।**

पैनल चर्चा विधि

इस विधि में शिक्षण का कार्य विशेषज्ञों के एक समूह द्वारा आपसी चर्चा के माध्यम से किया जाता है। इस विधि में प्रकरण या समस्या से संबन्धित अलग-अलग क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं जो कि बारी-बारी से उस समस्या पर विचार व्यक्त करते हैं। इस प्रकार विद्यार्थियों को विशेषज्ञों का विचार सुनने व समझने को मिलता है।

परिभाषा-कार्ट राईट (Cart Wright) के अनुसार पैनल चर्चा विचार- विमर्श की आधुनिक विधि है जिसमें चर्चा का नियंत्रण समूह द्वारा किया जाता है।

पैनल चर्चा के लिए व्यक्तियों की आवश्यकता

1. अनुदेशक (Instructor)
2. अध्यक्ष (Chairman)
3. विशेषज्ञ (Specialists)
4. विद्यार्थी अथवा श्रोतागण (Students or Audience)

विशेषताएं

1. समस्या को समझने के लिए यह विधि विद्यार्थियों को पर्याप्त अवसर देती है।
2. इस विधि द्वारा विद्यार्थियों में तर्क शक्ति का विकास किया जाना संभव है।
3. विद्यार्थी में समस्या समाधान की प्रवृति का विकास होता है
4. सृजनात्मक चिंतन के विकास में सहायक है।
5. इसको विचारों को स्पष्ट करने वाली विधि कहा गया है। शंका समाधान करने की यह उत्तम विधि है।

कम्प्यूटर आधारित शिक्षण

इसका अर्थ है-कम्प्यूटर टेक्नोलोजी की मदद से शिक्षण करवाना तकनीकी दृष्टिकोण से देखा जाए जो कम्प्यूर संबन्धित या कम्प्यूटर आधारित शिक्षण से अभिप्राय इस प्रकार के अनुदेशनात्मक कम्प्यूटर प्रोग्रामों से है जिन्हें शिक्षा शक्तियों तथा अनुदेशकों द्वारा निर्धारित अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की प्रभावपूर्ण उपलब्धि हेतु अनुदेशन या शिक्षण संबन्धित आंकड़ों के व्यवस्थापन तथा प्रबन्धन के लिए काम में लिया जाता है।

शैक्षिक पर्यटन विधि

क्षेत्र भ्रमण का प्रचलन प्राचीन समय से ही चलता आ रहा है। शिक्षा क्षेत्र के विचारक अरस्तु, सुकरात, कमेनियस आदि ने शैक्षिक भ्रमण के महत्व को स्वीकार किया है। किन्तु इसका विधिवत प्रयोग इन्होने भूगोल व इतिहास शिक्षण में किया है।

अर्थ एवं परिभाषा

इसमें शिक्षार्थी अपने विद्यालय कक्ष के बाहर जाकर सांस्कृतिक अथवा प्राकृतिक पर्यावरण का प्रत्यक्ष अवलोकन एवं निरीक्षण करके पाठ्यक्रम के किसी महत्वपूर्ण अंश का अध्ययन करते हैं। पर्यटन का उद्देश्य मूलतः शैक्षणिक होता है। यदि पर्यटन से शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति

नही होती तो यह शैक्षिक पर्यटन नही कहलाता।

पियर्स एवं लोरबर

शैक्षिक पर्यटन का उद्देश्य बालक को कक्षा के बाहर वास्तविक विश्व का ज्ञान कराना है।

सेमिनार शिक्षण विधि

शिक्षा के क्षेत्र में उच्च अधिगम के लिए यह एक महत्वपूर्ण प्रविधि है। इस प्रविधि का आयोग अनुदेशन एवं अधिगम परिस्थितियों का उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। इसमें एक बडे समूह को सभा का आयोजन कर तात्कालिक गम्भीर समस्याओं पर विचार किया जाता है।

सेमिनार अर्थ एवं परिभाषा

शिक्षकों, अनुदेशकों तथा निर्देशकों की सभा का एक ऐसा आयोजन जिसमें कक्षा अनुदेशन, एवं विद्यालय संबन्धि समस्याओं पर विचार- विमर्श कर किसी एक निर्णय पर पहुंचने का प्रयास किया जाता है।

इस विधि में 20-25 से लेकर सैंकडों सदस्य भाग लेते हैं तथा इसका आयोजन समकालिक रूप में किया जाता है। प्रकरण के पक्षों पर प्रपत्र भी आमन्त्रित किये जाते है।

संगोष्ठी शिक्षण

देखा जाए तो संगोष्ठी का प्रत्यय नया नहीं है। यह बहुत प्राचीन है। ब्रिटेन का राजा आर्थर अपने 'नाईट्स' (बहादुर योद्धा), सुकरात अपने अनुयायियों के साथ इसका प्रयोग करता था। आजकल इसका प्रचलन किसी विशेष शैक्षिक समस्या को सुलझाने में किया जाता है। अतः यह एक नवीन प्रत्यय प्रतीत होता है।

अर्थ

संगोष्ठी शब्द का अर्थ अंग्रेजी के कान्फ्रेंस (Conference) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। 'कान्फ्रेन्स पर्यवेक्षकों तथा अध्यापकों की एक

बैठक है जिसमें कक्षागत अथवा शैक्षिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करते हैं।'

कार्यशाला प्रविधि

कार्यशाला शब्द यान्त्रिकी (Engineering) से लिया गया है। कार्यशाला मशीनों के मरम्मत एवं निर्माण के लिए होती है जहां सैद्धान्तिक ज्ञान को प्रायोगिक रूप में काम में लिया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी सिद्धान्त एवं क्रियात्मक पक्ष को जोडने हेतु कार्यशाला का आयोजन किया जाता है।

अर्थ

यह एक शिक्षण प्रविधि है जिसमें विद्यार्थी न केवल विचार-विमर्श करतें है अपितु यहां सामूहिक रूप से रचनात्मक कार्य भी करते हैं। कार्यशाला शैक्षिक समस्याओं के समाधान ज्ञात करने हेतु सामूहिक प्रायोगिक प्रयास है।

कार्यशाला में व्यक्ति को स्वयं कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है, इससे उसमें कौशल का विकास होता है। क्रियात्मक पक्ष होने पर उसके द्वारा त्रुटि करने की संभावनाऐं कम हो जाती हैं।

विशेषताऐं

1. कार्यशाला में शिक्षा के क्रियात्मक पक्ष पर बल दिया जाता है।
2. यह कार्य करके सीखने पर जोर देती है।
3. इसमें व्यक्ति के मनोगत्यात्मक पक्ष का विकास होता है।
4. इसमें सदस्य सक्रिय रहकर विषय का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करता है।
5. कार्यशाला में कम समय में अधिक ज्ञान का अर्जन एवं जीवनोपयोगी है।
6. कार्यशाला में प्रजातांत्रिक मूल्यों को विकसित किया जाता है।

निष्कर्ष

वर्तमान परिवर्तनशील युग में अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम के विकास में उदीयमान प्रवृतियों की चर्चा करते हैं तब हमें वर्तमान समय के अनुकूल उद्देश्य, प्रक्रिया तथा परिस्थितियों का आंकलन करना पड़ता है तभी हम विभिन्न प्रवृत्तियों के माध्यम से पाठ्यक्रम का विकास कर पायेंगे।

- अध्यापकों को अन्तः क्रिया को सक्रिय बनाने में सहायक पाठ्यक्रम होना चाहिए।
- वर्तमान समय के प्रत्येक पहलू को साथ लेकर चलने वाली स्थिति होनी चाहिए।
- छात्रों को विभिन्न कौशलों से जोड़कर पढ़ाने की निपुणता अध्यापक में आ सके ऐसा पाठ्यक्रम होना चाहिए।
- विद्यालयीय विभिन्न क्रिया कलापों को भी स्थान देना चाहिए।
- प्रयोगात्मकता पर विशेषरूप से ध्यान देना चाहिए।
- सूक्ष्म शिक्षण में और सौष्ठता आनी चाहिए।

उपरोक्त सभी विचारों को ध्यान मे रखते हुए शिक्षण की विभिन्न प्रवृत्तियों को दल शिक्षण, पैनल चर्चा, आदि उपरोक्त उदीयमान प्रवृत्तियों के माध्यम से अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में विकास किया जा सकता है।

सारांश

अध्यापक के सामने विभिन्न प्रकार की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न स्तर पर चिंतन करते हुए पाठ्यक्रम निर्धारण किया जाता है। जब पूर्व पाठ्यक्रम में वर्तमान समय के उद्देश्य, प्रक्रिया एवं परिस्थिति को आधार मानकर यदि कुछ परिवर्तन द्वारा नया स्थापित किया जाता है तो उसे पाठ्यक्रम का विकास माना गया है यह अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम के संदर्भ में होवें तब अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम का विकास कहा जाता है। इस परिस्थिति में विभिन्न प्रवृतियाँ अपनाया जाता है। जिनके माध्यम से पाठ्यक्रम में विकास संभव होता है। ऐसे ही

वर्तमान समय में उदीयमान प्रवृतियां निम्न हैं-

- दल शिक्षण
- पैनल चर्चा
- कम्प्यूटर आधारित
- शैक्षिक पर्यटन
- सेमीनार
- संगोष्ठी
- कार्यशाला

इन सभी प्रवृत्तियों के माध्यम से पाठ्यक्रम में निम्न विकसित रूप हम देख सकते हैं-

- प्रजातांत्रिक सामाजिक दर्शन
- समूह प्रक्रिया एवं सामाजिक व्यवहार
- अधिगम मनोविज्ञान तथा शिक्षण सिद्धान्त
- विकास का मनोविज्ञान
- स्वास्थ्य शिक्षा
- विद्यालय प्रशासन एवं मानवीय संबंध
- विशिष्ट विधियां
- शैक्षिक तकनीकी

इस तरह से उपरोक्त विचारों को पाठ्यक्रम के विकास के रूप मानना है जिससे निम्न उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है-

- अध्यापक एवं छात्र संबन्धी व्यवहार में सक्रियता।
- छात्रानुकूल शिक्षण प्रक्रिया में सरलता।
- छात्राधिगम में सहायता।
- शिक्षण कौशलों के प्रयोग में सौकर्यता।
- सरल, सहज रीति से अध्यापन।

• पूर्व सन्नद्धता में सुष्ठुता।

इस तरह से अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम के विकास में उद्दीयमान प्रवृत्तियों के माध्यम से उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त कर सकते हैं।

विशेषतः

अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में विशेष करके जिस स्तर का शिक्षण हम कराते हैं उस स्तर की जानकारी पूरी होनी चाहिए। बी.एड़. में माध्यमिक स्तर विद्यालयों के प्रशासनिक कार्यक्रमों को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए, विद्यालय के विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक क्रिया प्रणाली के बारे में पाठ्यक्रम पक्ष पर चर्चा करें प्रयोग करें। समय का ध्यान देखकर पाठ्यक्रम का निर्धारण करें। पहले सिद्धान्त पढा दें फिर प्रयोग पक्ष को रखें। प्रयोग पक्ष पर विशेष ध्यान देवें जिससे अध्यापक वास्तविक अध्यापन करते समय आत्मविश्वास, आत्मप्रतिष्ठा को प्राप्त कर शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने में सक्षम हो सकें।

भाषा शिक्षण में नवाचार

हितेश नारायण मुद्‌गल एवं रोहित थपालियाल
एम. एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

प्राचीन काल में भाषा-शिक्षणार्थ अनेक प्रकार की पद्धतियों का प्रयोग किया जाता था परन्तु आज भाषा शिक्षण हेतु नई-नई विधियों का प्रयोग किया जाने लगा है। भाषा-शिक्षण में नवाचार को जानने से पूर्व भाषा एवं शिक्षण शब्द को भी जानने का प्रयास भी हम करते हैं।

भाषा का अर्थ, व्युत्पत्ति और परिभाषा

भाषा शब्द संस्कृत की भाष् भाषणे धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका तात्पर्य बोलना या कहना, अभिव्यक्तिकरणादि से है, अर्थात् इस शब्द का अर्थ निकला विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम।

अमर सिंह जी भी स्वकीय अमरकोष में लिखते हैं-

'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती।'

'व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः।'

अपभ्रंशोऽप शब्द स्याद् शास्त्रे शब्दस्तु वाचक :।'

काव्यादर्श में दण्डी भाषा को परिभाषित करते हुए बताते हैं- 'ये समस्त तीनों लोक अन्धकारमय हो जाता यदि शब्द रूपी ज्योति से यह संसार प्रदीप्त नहीं होता।'

भाषाविज्ञानी श्री भोलानाथ तिवारी जी के शब्दों में-

'भाषा वह साधन है, जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं।'

प्लेटो के अनुसार-**'भाषा और विज्ञान में थोड़ा ही अन्तर है, विचार आत्मा की मूक या अध्वान्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा**

देते हैं।'

आज के इस वैज्ञानिक युग के अनुसार छात्रों के अधिगम के लिए रोचक सामग्री की आवश्यकता है। अतः "SMART CLASS" जैसी अनेक वैज्ञानिक अवधारणाओं को भाषा शिक्षण में अपनाया जा रहा हैं। उपर्युक्त सभी अवधारणाओं को ध्यान में रखकर हम यह कह सकतें है कि भाषा उच्चारण अवयवों से उत्पत्ति यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।

भाषा एवं वाणी भी लगभग पर्याय माने जाते हैं, भाषणात् भाषा भी तभी कहा जाता है, अर्थात् भाषण या बोलने की प्रक्रिया ही भाषा है।

मार्कण्डेय (पुराणान्तर्गत) श्री दुर्गा सप्तशती में भी लिखा है-

'देवीं वाचमजनयन्तः देवास्तां विश्वरूपताः पशवोः
वदन्ति,

भर्तृहरि भी-

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।

अपि च-

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात् प्रियं हि वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।।

भाषा विज्ञान -

कोयल काको देत है, कागो काको लेत।
केवल मीठे वचन ते, सबको मन हर लेत।।

कबीर दास जी भी -

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।

औरन को शीतल करे आपौ शीतल होय॥

नीति में भी इस भाषावाद की चर्चा की है-

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः, को भेदः पिक काकयोः।

वसन्ते समये याति, काकः काकः, पिकः पिकः॥

इस प्रकार भाषा की परिभाषाओं को जानने के बाद हम शिक्षण शब्द पर विचार करते हैं तो-

शिक्षण-शिक्षा शब्द से ही सम्बन्धित यह शिक्षण पद संस्कृत की शिक्षविद्योपादाने से सम्बद्ध है। शिक्ष-धातु में ल्युट् प्रत्यय होकर यु को अन् एवं णत्व होने पर शिक्षण पद निष्पन्न होता है, जिसका तात्पर्य पढ़ाना अधिगम कराना आदि से है। इसे अंग्रेजी में Teaching कहते हैं। शिक्षा शास्त्र में शिक्षण को कई प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है, निष्कर्ष रूप में हम कह सकतें हैं कि 'शिक्षण' क्रियाओं की वह प्रणाली जिसके अन्तर्गत शिक्षक एवं विद्यार्थी के मध्य विषय वस्तु के सन्दर्भ में शिक्षण कहते हैं। शिक्षण में तीन तत्त्व प्रमुख हैं- पहला शिक्षक, दूसरा शिक्षार्थी व तीसरा विषयवस्तु। यदि उपरोक्त तत्वों में से एक भी कम हो जाए तो हम उसे शिक्षण के रूप में नहीं अपना सकते।

अब हम नवाचार पद की बात करें तो यह भी दो पदों से निष्पन्न होगा पहला नव अर्थात् नया आचार अर्थात् वृत्ति या यह भी कहा जा सकता है कि शिक्षणार्थ प्रयोग होने वाली वे तमाम प्रविधियाँ तकनीकी जो अधिगम में प्रयुक्त की जा सकती हैं अथवा होती हैं, शिक्षण में नवाचार की बात से तात्पर्य हम यह ले सकते हैं कि वे विधियाँ या वे समस्त तरीके जो उपरोक्त तीनों घटकों में प्रयुक्त हों या की जा सकें। अद्यतन परिप्रेक्ष्य में शिक्षण में नवाचार के लिए बहुत सारी प्रविधियाँ हैं, उन प्रविधियों में हम कुछ भी चर्चा करेंगें। जैसे-

भाषा प्रयोगशाला

भाषा के अध्ययन में अभ्यास की आवश्यकता होती है, इस समस्या के निवारणार्थ भाषा प्रयोगशाला का आविर्भाव हुआ है। भाषा शिक्षण के क्षेत्र में भाषा प्रयोगशाला नूतन आविष्कार है, इस आविष्कार

का सबसे पहले प्रयोग 1960 में अमेरिका में हुआ परन्तु आज सभी देशों में भाषा अध्ययनार्थ भाषा प्रयोगशालाओं का प्रयोग किया जा रहा है। भाषा प्रयोगशाला विद्युत नियंत्रित एक शिक्षण कक्ष है जिसका उपयोग सामूहिक रूप से भाषा शिक्षण के लिए किया जाता है, इसमें सभी छात्रों को बैठाकर भाषा का अभ्यास करातें हैं, सभी छात्रों के बैठने के लिए कुर्सियों की व्यवस्था होती है, इस कक्ष में बैठने की व्यवस्था इस प्रकार होती है कि एक छात्र दूसरे छात्र को नहीं देख सकता, प्रत्येक छात्र की मेज पर एक हेडफोन होता है और एक टेपरिकॉर्डर होता है, जिसमें छात्रों को निर्देशन दिया जाता है तथा उनकी समस्याओं को सुना जाता है, अध्यापक अपने स्थान पर बैठकर छात्रों का उच्चारण का संशोधन करता है। भाषा प्रयोगशाला में भाषा-अध्ययन का बार-बार अभ्यास कराया जाता है।

Compect Disk (CD) - CD के माध्यम से भी विभिन्न भाषाओं की CD उपलब्ध है। जिसमें विभिन्न भाषाओं का उच्चारण कैसे किया जाता है तथा आरम्भ से लेकर भाषा-शिक्षण के सिद्धान्त बताए जाते हैं। इन CD में किसी भाषा को सीखने के लिए पहले उनकी वर्णमाला का ज्ञान कराया जाता है, आज भाषा ज्ञान पिपासु इन CD के माध्यम से तथा अभ्यास के द्वारा अन्य भाषा को सीख सकता है।

लिंग्वाफोन

भाषा-शिक्षण में लिंग्वाफोन एक अत्यंत महत्वपूर्ण बिन्दु है, यदि कोई अन्य व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को जो उनकी भाषा को नहीं जानता। लिंग्वाफोन के माध्यम से वह व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की भाषा को भी उसी की भाषा में सुनकर उसकी बात का समझ सकता है। लिंग्वाफोन के माध्यम से हम देश की किसी भी भाषा को अपनी भाषा में बदल कर अपनी भाषा में समझ सकते हैं।

भाषा शिविर

भाषा की महत्वपूर्णता तथा उसके विकास में शिविर भी महत्वपूर्ण बिन्दु हैं। शिविर का आयोजन भाषा को सिखाने के लिए

किया जाता है। शिविर में किसी भी उम्र का व्यक्ति जो भाषा सीखने का इच्छुक है वह शिविर में आ सकता है। शिविर में रहने तथा खाने पीने की व्यवस्था भी. होती है। शिविर में भाषा को सिखाने तथा उसे बोलने का अभ्यास कराया जाता है।

अत: उपरोक्त भाषा-विषयक नवाचारों को या नवाचार से संबद्ध माध्यमों पर चर्चा करने से हमें यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि Practice Men be Perfect अथवा **करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान** अर्थात् किसी भी क्षेत्र में मनुष्य प्रगति के लिए यदि प्रयासशील है तो सफलता उसे अवश्य ही मिलती है। भाषा में भी जितना हम प्रयास काल भाषा या किसी भी अन्य चीजों को सीखने के लिए प्रयास अपेक्षित था, है और रहेगा। फर्क केवल इतना है कि इससे वैज्ञानिक युग में उपकरणों, यंत्रों की प्रचुरता हो गई है। अत: मनुष्य का यन्त्रीकरण हो चुका है, जिससे वह यन्त्रवत् अपने कार्य को सम्पादित करता है।

उक्त भाषा-विषयक सहायक बिन्दुओं को भी भाषायी नवाचारों के लिए प्रभावी माना जाता है। क्योंकि एक दूध पीता बालक भी अपनी मातृभाषा को जिस प्रकार माता के दूध के साथ सीखता है, उसी प्रकार एक भाषा-पिपासु भाषा-शिक्षण में नवाचार विधियों के माध्यम सें अथवा अभ्यास आदि माध्यमों से किसी भी भाषा का मर्म जानने के लिए इच्छुक रहता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तिवारी, भोला नाथ, भाषाविज्ञान
2. शर्मा एवं एन, आर. सक्सेना शिक्षा शास्त्र, National Education Test, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2011
3. कुमार अरुण उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसी दास बंगलो रोड, दिल्ली, 2011
4. त्रिपाठी रूप नारायण एवं पाण्डेय रमाकान्त: जयन्ती (द्वितीयं पुष्पम्) केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुरम्, 2000
5. यादव, सियाराम पाठ्यक्रम विकास, अग्रवाल पब्लिकेसन्स ज्योति, ब्लॉक हॉस्पीटल रोड, आगरा-2, 2008

भाषा शिक्षण में नवाचारिक अभ्यास

राजवीर शर्मा एवं संदीप कुमार
एम.एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन भाषा है। एक दूसरे के प्रति भावाभिव्यक्ति, संवेदना आदि के प्रकटीकरण से लेकर कक्षाकक्ष में छात्रों को अधिगम कराने में सर्वाधिक सहयोगी के तौर पर भाषा ही दिखाई देती है अर्थात् शिक्षा कालिक समस्त विषय किसी न किसी भाषा के माध्यम से ही सीखे जाते हैं। भाषा के बिना संप्रेषण प्रक्रिया अधूरी सी हो जाएगी। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि मानव व्यवहार ही भाषा है।

संसार के विभिन्न देशों में विभिन्न भाषाओं के माध्यम से पारस्परिक व्यवहार घटित हो रहा है। यद्यपि कोई न कोई भाषा किसी न किसी रूप में प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार से प्रदर्शित होती है। तथापि भारत सहित अन्य देशों में विभिन्न भाषाओं का अध्ययन अध्यापन अनादिकाल से प्रथित है। तब से लेकर आज तक भाषा सीखने के अनेकों तरीके निरंतर विकसित होते रहे हैं और सरलता पूर्वक छात्रों को भाषाओं का ज्ञान कराने के प्रयास होते रहे हैं। आज हम सूचना संप्रेषण तकनीकी से प्रभावित हैं सूचना संप्रेषण के इस अति अभिनव काल में भाषा शिक्षण में नवाचार की बात करना कोई नई बात नहीं है।

नवचार शिक्षण का अभिनव तरीका है आज मल्टीमीडिया के युग में जबकि पारम्परिक शिक्षण विधियों के माध्यम से छात्र ऊब महसूस कर रहा है ऊब और अरुचि का यह क्रम आत्मानुशासन और आनन्दयुक्त युवक की जगह तनाव ग्रस्त अथवा विध्वंसक मानव का निर्माण न कर दे इस बात पर ध्यान जाना आवश्यक है। क्योंकि शिक्षा एक प्रकाश है जो विकास हेतु मानव जाति को सही दिशा निर्देश करती

है। शिक्षा केवल छात्र को साक्षर ही नहीं कर रही वरन ज्ञानात्मकता और आत्मनिर्भरता एवं जहां को बदलने की इच्छा अर्थात् किसी भी क्षेत्र में प्रगति के लिए नई उम्मीद रचनात्मकता को विकसित करने की इच्छा का पोषण करती है। शिक्षा के इन अधुनातन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नवाचारिक अभ्यास महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नवाचार का लाभ छात्रों और शिक्षकों दोनों को है।

शिक्षा मानव की हर प्रकार की गतिविधियों का शुरुआती बिन्दु है। अगर शिक्षा मन में आत्मानुशासन और ज्ञान प्राप्त करने की प्रतिबद्धता जगाने में विफल रहती है तो यह यह छात्र की गलती नहीं है आवश्यकता है परिवर्तन की, छात्रों की ऊब दूर करने वाली शिक्षा की, जरूरत है नवाचार की शिक्षा को हम खेल में परिवर्तित करके छात्रों में रुचिका उत्पादन कर सकते हैं, जिससे शिक्षा एक मजेदार प्रक्रिया बन जाए, रोमांच बन जाए, बजाए बोझ और उब के। यह छात्रों के विकास का अभिन्न हिस्सा है जिससे उन्हें अच्छा नागरिक बनने में मदद मिलती है।

शिक्षा किसी भी समाज के विकास और प्रगति के लिए एक इंजन है, यह न केवल ज्ञान कौशल और मूल्यों को प्रदान करती है बल्कि यह उसके निर्माण के लिए भी जिम्मेदार है जो मानव पूंजी है जो तकनीकी, नवाचार और आर्थिक विकास को जन्म देती है। शिक्षण के पारंपरिक या नवीन तरीकों की समीक्षक जांच कर रहे हैं और ज्ञान के आदान प्रदान में कुछ संशोधनों का सुझाव दिया है जैसे प्रत्येक शिक्षण पद्धति की शक्तियों और कमजोरियों की पहचान करना और नवीन संभावित संशोधनों का सुझाव दिया है कि परम्परागत तरीकों में उन्हें शामिल किया जा सके। नवाचारिक अभ्यास हेतु कुछ प्रक्रियाएं अपनाई जा सकती हैं।

मल्टीमीडिया सीखने की प्रक्रिया

मल्टीमीडिया परियोजनाओं को चलाना व बनाना दोनो चुनौतीपूर्ण कार्य हैं। किन्तु अधिगम का अभिनव साधन है। संत कन्फ्युशियस ने

कहा है कि **'मैंने सुना है और मैं भूल गया, मैं देख रहा हूं और मुझे विश्वास है मैं समझता हूं मुझे क्या करना है।'**

संत कन्फ्यूशियस का यह कथन स्पष्ट करता है कि केवल सुना हुआ व्यक्ति भूल सकता है कि आंखो देखा और कानों से सुना हुआ जल्दी नहीं भूला जा सकता। दृश्यश्रवण उपकरण का अधिगम अधिक स्थाई रहता है। मल्टीमीडिया के माध्यम से नवाचारिक प्रयोग करते हुए भाषा विकास के लिए लघुकथा, एकांकी कविता आदि का प्रदर्शन शिक्षण काल में किया जा सकता है। दूसरे समूह में छात्रों को इस तरह की परियोजनाओं के निर्माण द्वारा भाषा का अच्छा अभ्यास कराया जा सकता है। परियोजना निर्माण एक सामूहिक प्रक्रिया है इससे छात्रों में सामाजिकता का भी विकास संभव है।

एनीमेशन फाइल निर्माण करके भी अभिनव अभ्यास कराया जा सकता है। एनीमेशन फाइल एक लघु फिल्म बनाने की प्रक्रिया है जिसमें कुछ शब्दों या चित्रों अथवा वाक्यों को बनाया, चित्रित किया जाता है, जो कि चलते फिरते दिखाई देते हैं। भाषा शिक्षण के अभ्यास हेतु इसका प्रयोग प्रोपीजीशन्स, फिल इन द ब्लैंक्स आदि के लिए किया जा सकता है। जो एक अति आधुनिक और अभिनव प्रयोग है।

हास्य भावना के साथ शिक्षण

हास्य मनुष्य का सर्वोत्तम गुण है। हास्य एक प्रभावी शिक्षण का माध्यम है। अध्यापकों और छात्रों के बीच सौहार्द्रपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देता है, तनाव कम करता है। विज्ञापन के क्षेत्रों में कई अध्ययनों में पाया गया कि हास्य विज्ञापन को रुचिकर बनाता है। आचार्य रजनीश ने कहा है कि **'हास्य बुद्धिमत्ता का एक आवश्यक अंग है, हास्य बिना मनुष्य एक पुष्पविहीन वृक्ष के समान है।'** यहाँ हास्य का समर्थन करने से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि अध्यापक कक्षा में चुटकुले सुनाए। भाषा शिक्षण को हास्य पूर्ण बनाने के लिए एक अध्यापक कुछ कार्टून चित्र के साथ प्रयोग में ला सकता है। अखबार आदि में सम सामयिक मुद्दो पर ऐसे व्यंग्य चित्र प्रायः देखने को मिलते है। वार्तालाप

विधि यद्यपि पारम्परिक है कि आज अभिनव रूप में प्रयुक्त हो रही है। कॉमिक्स इसका उदाहरण है। कुछ पाठ्य पुस्तकों में इस शैली सम्मिलित किया जा रहा है। यह भी नवाचारिक अभ्यास का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

शिक्षण को खेलपूर्ण बनाकर

शिक्षण का अभ्यास यदि खेलपूर्ण हो तो ऊब पैदा नहीं करता है। खेल विधि भी पारम्परिक विधियों में ही किन्तु इसका अभिनव रूप और आनन्द प्रद व रुचिकर है। जब मैं विद्यालय में पढ़ता था तब गुरुजी एक कविता के माध्यम से स्वयं अभिनव करके वाक्य निर्माण प्रक्रिया खेल मैदान में सिखाया करते थे–

गन्तृ गच्छति–गाड़ी जाती

मन्दं गच्छति–धीरे जाती आदि

इसके साथ वे गाड़ी का अभिनव स्वयं करते थे और हम सब छात्र रेल के डिब्बे होते थे। आज इसको मीडिया के माध्यम से लघु फिल्म का स्वरूप प्रदान कर मौखिक वाक्य रचना व उच्चारण संशोधन का विकास कराया जा सकता है।

लेखन प्रतियोगिताएं

लेखन में रुचि छात्र नहीं ले पाते इसलिए लेखन कौशल का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। इसको विकसित करने के लिए भी अभिनव अभ्यास के अनेक उपाय उपलब्ध हो चुके हैं। सत्रीय कार्य असाइन्मेंट भी तरह का एक प्रयोग है किन्तु इस विधा के उत्तम विकास हेतु विशिष्ट को अवलम्बित करके लेखन प्रतियोगिता का आयोजन करके भाषा लेखन की दक्षता का विकास किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त शब्द कोष विकास हेतु वर्ग पहेली शब्द पहेली व पजल्स का प्रयोग करके नए शब्दों को सीखने का अभ्यास किया जा सकता है।

नवीन अध्यापकों को इन सब प्रक्रियाओं से प्रशिक्षण के समय परिचित कराया जाना चाहिए व इन नवचारिक अभ्यासों का अभ्यास

सुचारु रूप से कराया जाना चाहिए। जिससे शिक्षा एक उबाऊ और तनाव पूर्ण प्रक्रिया न बनकर आनन्दपूर्ण व रुचिपूर्ण बन सके और छात्रों के इन्द्रियानुभविक ज्ञान की वृद्धि हो सके नई इच्छाएं, उम्मीदें प्रगति रचनात्मकता में शिक्षा सहायक हो सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. माथुर, एस. एस., शिक्षा मनोविज्ञान, 1998 विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पेज 451
2. आनन्द वैराग्य, स्वामी, शिक्षा ओशो की दृष्टि में, 2011 फ्युजन बुक्स दिल्ली–20, पेज 41
3. अंतर्जाल। इंटरनेट

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा-पद्धति की प्रासंगिकता

दीपक कुमार झा
एम. एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विश्व के सामने सबसे बड़ा संकट गुरुकुल शिक्षा पद्धति की ह्रास का है। आज सम्पूर्ण विश्व में अनाचार, कदाचार एवं भ्रष्टाचार की वृद्धि हो रही है। सम्पूर्ण भूमण्डल में ऐसे मानव संशाधनों के अभाव के लिए हमारी आधुनिक शिक्षा प्रणाली भी कम जिम्मेदार नहीं है। वर्तमान समय में शिक्षा का उद्देश्य चरित्र-निर्माण के की अपेक्षा भौतिक उपलब्धियों को हासिल करना हो गया है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने व्यक्ति में पहल व नेतृत्व की क्षमता विकसित करने के बजाय उसे अनुकरण करने के लिए मानसिक रूप से तैयार किया है। परीक्षा में अच्छे अंक, अच्छी नौकरी की एकमात्र कसौटी बना दी गई है पर यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी परीक्षा में अच्छे अंक हासिल करमा, एक अच्छे चरित्र की गारंटी नहीं हो सकता। आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने शिक्षित मानव संसाधन राष्ट्रीय भावनाओं से पृथक् सामाजिक, स्वदेश तथा विश्व के प्रति पूर्ण उपेक्षा का भाव रखा है। छात्रों में उद्दण्डता एवं अनुशासनहीनता की प्रवृत्ति बढ़ रही है जिससे विश्व की प्रगति भी अवरुद्ध हो रही है। हमारे देश में गुरुकुल के ऋषि, मुनियों, बुद्ध, महावीर, जैन इत्यादि के सत्य को ईश्वर का स्वरूप माना है। ''सत्यम् वद धर्म चर'' का जो उपदेश ऋषियों ने दिया है आज हम उसका पालन नहीं कर रहे हैं। असत्य संभाषण सामान्य बात हो गई है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के कारण ही मनुष्य स्वकेन्द्रित हो गया है कि उसे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के आगे समाज एवं राष्ट्र का हित दिखाई नहीं देता। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के माध्यम से प्राचीन काल में मानव समझ गए थे कि जीवन में शान्ति असीमित भागों से नहीं, अपितु

त्याग से ही प्राप्त हो सकता है। कहा भी गया है–"त्यागत् शान्ति अनन्तरम्।" ईशावास्योपनिषद् भी हमें त्यागपूर्व भागों के लिए निर्देशित करता है। यथा–

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।"

अर्थात् संसार में जो कुछ भी दृष्टिगत हो रहा है उस सभी में परमेश्वर का निवास है। इस विश्व की अभोग्य वस्तुओं का त्याग भाव से उपयोग करना चाहिए पर परधन को 'लोष्टवत्' समझना चाहिए। आज हम गुरुकुल के उपदेश को भूल कर धृतराष्ट्र के समान पुत्रमोह वश अनीति मार्ग से धान संचय में लगे है। वे प्रायः इस बात को भूल जाते हैं कि यदि उनकी संतान सुसंस्कारी एवं गुणी नहीं हुई तो माता-पिता के परिश्रम एवं ईमानदारी से संचित धान को भी अनुचित ढंग से अपव्यय कर पुनः कष्टमय जीवन यापन करेगी। कहा भी गया है–

"पूत कपूत तो का धन संचय।

पूत सपूत तो का धान संचय॥"

गुरुकुल शिक्षा के माध्यम से शिक्षा गुरुओं ने जो उपदेश दिए है उन सब में प्रेम, करुणा, सहानुभूति, ईमानदारी, समता, एकता आदि की बातें कही गई हैं। सभी गुरुकुल के धर्म-गुरुओं ने सत्य, अहिंसा, सदाचार, सदव्यवहार आदि की अमुचित शिक्षा दी है। गुरुकुल की शिक्षा का मूलमन्त्र तो पूरे विश्व को कुटुम्ब मानने की भावना में निहित है। यथा–

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

वर्तमान में राजनीतिक स्वार्थों से बारम्बार शिक्षा-प्रणाली में आमूलचूल बदली गई नीतियों ने, शिक्षा परिसरों की प्रतिभा और शोध को बढ़ावा देने के बजाए परीक्षा और दाखिला-प्राप्ति के चक्रव्यूह से घिरे दुर्गो में बदल दिया है। उसके प्रवेश द्वार में फंसे बनेक मेधावी छात्र और शोधार्थी उत्तम शिक्षा से वचिंत हो जाते हैं तथाा प्रतिभाविहीन छात्र

पैरवी-पैसे के बल पर उत्तम शिक्षालयों में नामांकित होने के बावजूद भी ज्ञानाभाव में उत्तम शिक्षा नहीं प्राप्त करते। परिणामतः शिक्षालयों में वैमनस्य बढ़ रहा है तथा ज्ञान का स्तर कुंठित हो रहा है। आधुनिक शिक्षा पुनः एक जाति धर्म आधारित प्रणाली पर आर कर टिकी है। जो हमारे देश के लिए शनैः शनैः आत्मघाती सिद्ध हो रहे हैं। इस दृष्टि से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा की प्रासंगिकता पुनः हो गई है।

गुरुकुल शिक्षा के विषय में प्राचीन काल से ही अत्यन्त गंभीर चिन्तन किया जाता रहा है। वेदों में इस शिक्षा के लिए जो शुद्ध वातावरण प्रस्तुत किया गया है वह अत्यन्त सुन्दर है। यथा-

'उपदद्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां धिया विप्रोजायत।''

अर्थात् नदियों के संगम पर, पर्वतों की तलहटी में, वन प्रान्तों में नगरीय सभ्यता से दूर सात्विक विचारों का अभ्युदय होता है। इन प्राचीन शिक्षा-संस्थाओं में केवल धार्मिक और नैतिक शिक्षा ही नहीं दी गई, अपितु विभिन्न प्रकार के ज्ञान-विज्ञान का भी आधार प्रस्तुत किया है। उपनिषद् में नारद ने अपने पाठ्यक्रम में ऋग्वेद से प्रारम्भ करके देवजन आदि विभिन्न विद्याओं की चर्चा की। उस समय उन गुरुकुलों, जो विभिन्न ऋषियों के आश्रम भी हुआ करते थे, में विभिन्न विषयों के ज्ञानार्जन का स्थल भी हुआ करता था।

वे प्रायोगिक विज्ञान के भी बहुत बड़े केन्द्र थे। इसका प्रमाण हमें रामायण में राम के बनवास के समय प्राप्त होता है। जिसमें विभिन्न ऋषियों ने अपने आश्रम में आने पर राम को अनेक प्रकार के शास्त्रास्त्र दिए तथा उन्हें चलाने की विद्या भी सिखाई क्योंकि वे जानते थे कि जब ब्रह्म और क्षत्र मिलकर चलते हैं तब सबंका कल्याण होता है। दूसरे शब्दों में हम इसे ज्ञान और कर्म का संयोग कह सकते हैं। इसी को 'शापादपि शरादपि' कहकर अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। गीता में भी कहा गया है-

'यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिध्रुवा नीतिमतिर्मम।।'

गुरुकुल शिक्षा अपने त्याग, तपस्या तथा ब्रह्मचर्य जीवन में

अनुप्राणित थी, ब्रह्मचारी नगरीय दोषों से सर्वथा पृथक था। जैसा अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में कहा गया है–विद्वाननों ने ब्रह्मचर्य और तपस्या के बल पर मृत्यु को दूर भगा दिया। इस दृष्टि से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति के उपदेशों का पालन किया जाए तो सम्पूर्ण विश्व से दुष्कर्म रूपी दोष से कामातुर मानव जनों को वंचित किया जा सकता है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की यह भी विशेषता रही है कि- उसमें सबको शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध थे इसका ज्वलन्त प्रमाण है–सान्दीपनि मुनि के आश्रम में कृष्ण जैसे धनाढ्य तथा सुदामा जैसे निर्धन छात्र एक साथ अध्ययन करते थे।

महाभारत काल से गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का पतन आरम्भ हुआ। आचार्य छात्रों को गुरुकुल में न लेकर उनके घरों पर जाकर शिक्षा देने लगे। शिक्षा के समान अवसर प्राप्त न होने के फलस्वरूप ही कर्ण, एकलव्य आदि अनेक शिष्य इस गुरुकुल शिक्षा पद्धति से वंचित रह गए तथा यह शिक्षा कुछ क्षेत्रों में सिमटती चली गई। शिक्षा के संकुचित होते ही महाभारत युद्ध के रूप में प्रकट हुई। जिसके परिणाम स्वरूप यह पथप्रदर्शक राष्ट्र अज्ञान के अन्धकार में गिरता चला गया और धीरे-धीरे ज्ञान का लोप हो गया।

कालान्तर में 'स्त्रीशूद्रो नाधीयताम्' कहकर गुरुकुल प्रणाली को समाप्त करने का षड्यंत्र किया गया। रही सही कसर मुस्लिम आक्रान्ताओं आक्रमण से पूरी होगई। इस्लाम के स्थापित हो जाने पर मुस्लिम काल में गुरुकुल प्रणाली की जगह मदरसा शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ हो गई। जो मुख्यतः इस्लाम के सिद्धान्तों के दायरे में कैद हो गई। जिससे जनमानस में आक्रोश फैल गया। पुनः ब्रिटिश काल में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की जगह 'मैकाले की शिक्षा प्रारम्भ हुई। जिसमें त्याग और तपस्या का कोई स्थान नहीं था। ब्रिटिश शिक्षा-पद्धति का उद्देश्य ब्रिटिश शासन को बाबूओं की आपूर्ति था। जो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर व्रजपात के समान माना गया। शिक्षा में दोष उत्पन्न होने के कारण ही प्राचीन भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति का प्रचलन हो रहा था। धीरे-धीरे आर्य-समाजियों ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को पुनः जीवन्त करने का भागिरथी प्रयास आरंभ किए। जिसके परिणामस्वरूप इस भौतिकवादी युग में भी करोड़ों विद्वान्

संस्कृतप्रेमी आज भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। परन्तु संख्याबल की दृष्टि से गुरुकुल प्रभावी शिक्षा वर्तमान युग में जनता तक अधिक नहीं पहुंच सकी और डी.ए.वी आदि संस्था में पश्चात्य पद्धति की ओर अग्रसर होती गई। जो शिक्षा धन की प्रमुखता के कारण अमीर तथा गरीब के बीच की खई को प्रगाढ कर रही है। जिससे अविच्छिन्न रूप से चली आ रही गुरु शिष्य परम्परा धीरे-धीरे समाप्त होने लगी है।

निष्कर्ष रूप में हम पातें है कि-आजादी की लड़ाई के दौरान ही करोड़ों भारतीयों की आंखों में एक सपने ने जन्म लिया था, उस सपने के प्रतीक के रूप में गुरुकुल शिक्षा पद्धति को नष्ट करने बाले अंग्रेजों से मुक्त होकर स्वतंत्र भारत ने अपने राष्ट्रीय बरगद को चुना। वह दुनिया को यह सन्देश देना चाहता था कि हमारी प्रत्येक शाखा एक सम्पूर्ण वृक्ष है। हमने इस सपने को पूरा करने के लिए अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, तकनीकि साधनों का सहारा लेकर वट वृक्ष की प्रत्येक शाखा को बड़ी आशाओं के साथ सींचा और संभाला। हमारी इस भ्रम-साधना में मानो कहीं भयंकर नई शिक्षा प्रणाली में दोष के कारण चूक हो गई और वट वृक्ष की शाखाओं में लगे गुरुकुल शिक्षा पद्धति रूपी फल के अभाव में भ्रष्टाचार की कड़वाहट इतनी बढ़ी कि 15 अगस्त 1997 ई. को लाल किले के प्राचीर से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री. आई. के. गुजराल ने देश को तरु से देश को जनता को सम्बोधित करते हुए कहा कि-''मैं भ्रष्टाचार के खिलाफ असहाय हूं।'' इसी तरह हाल ही में दिल्ली की सड़कों पर खुलेआम दुष्कर्म आदि घटनाओं ने सम्पूर्ण विश्व में ज्ञान की ज्योति जलाने वाले भारत के शशीमुख पर कालिख पोत दी है। अतः मुझे आशा ही नहीं वरन पूर्ण विश्वास है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल निश्चय ही भारत में भ्रष्टाचार, आतंकवाद, स्त्री पर अत्याचार आदि दोषों से मुक्ति पाते हुए भारत को पुनः विश्वगुरू के पद पर पदस्थापित किया जा सकता है।

शैक्षिक प्रबन्धन में उदीयमान प्रवृत्तियाँ

भरणी प्रकाश मुदगल
एम. एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

मनवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु विविध प्रकार के संगठनों की आवश्यकता होती है जैसे कि औपचारिक एवं अनौपचारिक, आर्थिक, सामाजिक, व्यावसायिक, राजनैतिक आदि। संगठन निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का एक समूह होता है तथा इन संगठनों को निर्देशित, समन्वित तथा एकीकृत करने के लिए ही प्रबन्धन की आवश्यकता होती है।

प्रबन्धन का सरल शब्दों में अर्थ संगठन में व्यक्तियों से कार्य कराना है। अंग्रेज शब्द मैनेज-मैन-टेक्टफुली को ही मैनेजमेन्ट कहते हैं। अतः प्रबन्धन का अर्थ व्यक्तियों से कार्य लेना है।

शैक्षिक प्रबन्धन से अभिप्राय

शैक्षिक प्रबन्धन अथवा शिक्षा में प्रबन्धन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की जाती है जिनमें मानवीय स्रोत अपनी योग्यता तथा क्षमता का पूरा-पूरा प्रदर्शन कर सके। शिक्षा प्रबन्धन शिक्षा का गतिशील अंग शैक्षिक दर्शन शिक्षा के लक्ष्य इंगित करता है शैक्षिक मनोविज्ञान अध्ययन के सिद्धान्त स्थिर करता है। शैक्षिक प्रबन्धन सम्बन्धित बातों को कार्यरूप में परिणत करता है।

शिक्षा प्रबन्धन एक विशेष प्रक्रिया है। मानव समूह तथा संस्थाओं के संचालन के लिये अर्थात् विद्यालय के कर्मियों तथा विद्यालयी संस्था के संचालन के लिये शैक्षिक प्रबन्धन का होना अत्यन्त आवश्यक है।

शैक्षिक प्रशासन का सम्बन्ध मुख्यतः शिक्षा से होता है। अतएव शिक्षा के क्षेत्र में व्यवस्था जिस ढांचे या तन्त्र को खड़ा करती है, शैक्षिक प्रशासन उसे कार्यान्वित करने में सहायक होता है जिससे शैक्षिक उद्देश्यों की अधिकाधिक प्राप्ति सम्भव होती है। शैक्षिक प्रशासन के अन्तर्गत शिक्षा के सम्बन्ध में योजना बनाना, संगठन पर ध्यान देना, निर्देशन तथा पर्यवेक्षण आदि अनेक कार्य सम्पादित करना आता है।

कक्षाभवन, पुस्तकालय, क्रीड़ा-स्थल, कार्यालय पाठ्येत्तर क्रियाओं का सफलतापूर्वक संयोजन करना और निरन्तर प्रगति के लिये प्रयत्न करना शैक्षिक प्रशासन का ही कार्य होता है। शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक व्यक्ति अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं। उनकी कार्य की प्रति लगन, सभी व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को मधुर बनाना तथा उनकी कार्यक्षमता को उचित प्रोत्साहन देना, सहयोगपूर्ण ढंग से कार्य करना, प्रशासन के कार्यों में ही सम्मिलित होता है। विद्यालयों के प्रधानाचार्य, प्रबन्धक, शिक्षक, विद्यार्थी, अन्य कर्मचारी, जिला विद्यालय निरीक्षक, उपनिदेशक, निदेशक आदि सभी मिलकर शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयास किस प्रकार कर रहे हैं इसका पता लगाना तथा वे अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों को ठीक प्रकार से समझने तथा कार्यान्वित करने में कहां तक सक्षम हैं इसका निरीक्षण करना भी प्रशासन का ही कार्य है।

ब्रुक एडमस–शैक्षिक प्रशासन में अनेक को एक सूत्र में बांधने की क्षमता होती है। शैक्षिक प्रशासन प्रायः परस्पर विरोधियों तथा सामाजिक शक्तियों को एक ही संगठन में इतनी चतुराई से जोड़ता है कि वे सब मिलकर एक इकाई से समान कार्य करते हैं।

जॉर्ज आर. टेरी के अनुसार प्रबन्धन एक विशेष प्रक्रिया है। जिसमें नियोजन संगठन, उत्प्रेरणा एवं नियन्त्रण शामिल होते हैं। इन सभी क्रियाओं में कला एवं विज्ञान दोनों का प्रयोग होता है और इनका अपने इसी क्रम में पूर्वनिश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अनुसरण किया जाता है।

एस. एन. मुखर्जी–एसशैक्षिक प्रशासन वस्तुओं के साथ-साथ मानवीय साधनों की व्यवस्था से सम्बन्धित है अर्थात व्यक्तियों के मिलजुलकर और अच्छा कार्य करने से सम्बन्धित है। वास्तव में, इसका

सम्बन्ध मानवीय सजीवों से अपेक्षाकृत अधिक है तथा अमानवीय वस्तुओं से कम।

अमेरिका मैनेजमेंट एसोशिएशन के अनुसार प्रबन्धन का कार्य मानवीय एवं भौतिक संसाधनों को ऐसी गतिशील संगठनात्मक इकाइयों में परिवर्तित कर देना है जिसके द्वारा उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इस प्रकार कार्य किया जा सके कि जिनके लिए प्रबन्धन किया जा रहा है। उन्हें सन्तुष्टि प्राप्त हो सके तथा जो कार्य कर रहे है उनमे नैतिक स्तर बनाये रखते हुए उत्तरदायित्व निभाने की भावना बनी रहे।

हेनरी फेयॉल–जिनको प्रशासन प्रक्रिया का पिता कहकर पुकारा जाता है। उनके शब्दों में–अन्य प्रशासन की भाँति शैक्षिक प्रशासन पांच तत्वों-नियोजन, संगठन, निर्देश, समन्वय तथा नियंत्रण की एक प्रक्रिया है।

Like other administration, Educational Administration is a process of five elements which are as follows- planning, organization, direction, Co-ordination and control.
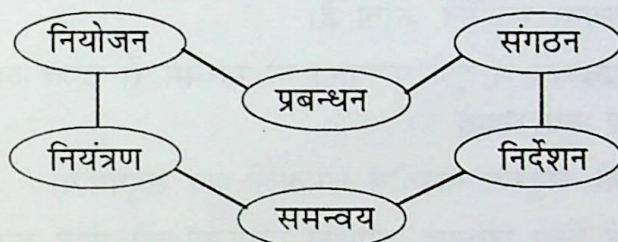
उदीयमान प्रवृत्तियां

जैसा कि प्रसिद्ध लेखक जॉर्ज वर्नाड शॉ ने कहा है कि सिर्फ अपने अतीत का संग्रह ही नहीं करना है अपितु हम अपने भविष्य के लिए भी उत्तरदायी है इस आधार पर हमे एक नव चिंतन की ओर बढ़ना पड़ता है तथा समृद्ध क्षेत्र जो इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं उनको भी देखना पड़ता है। ऐसी ही कुछ संस्थाओं जैसे Globally Responsible Leadership Initiativ, World Business School Council for Sustainable Business, PRME- Principles for Responsible Management Organization, के द्वारा बनाए गए एक कार्यक्रम के अनुसार वैश्विक परिदृश्य में शैक्षिक प्रबन्ध को हम भविष्यकालिक योजनाओं उत्तरदायी नेतृत्व,

सामाजिक एवं राजनैतिक परिप्रेक्ष्य के आयामो के रूप में देख सकते हैं। निम्नांकित चित्र के माध्यम से उसको दर्शाया गया है। तथा उसके आधार पर हम व्यक्तिगत से संस्थागत तथा संस्थागत से वैश्विक एवं मानवता की ओर अग्रसर करने वाली प्रक्रिया के रूप में प्रबन्धन को देखा गया है साथ ही साथ उपयोगिता अनुरूप शिक्षा के साथ नई दिशा में बढ़ने के रूप में शैक्षिक प्रबन्धन को दर्शाया गया है।

इन सबके आधार पर शैक्षिक प्रबन्धन के कार्य भविष्य के आवश्यकताओं को ज्ञात करना, वर्तमान परिस्थितियों का अवलोकन करना, नए अवसरों को परिभाषित करना तथा मानव एवं मानवीय क्षमता को सतत् विकाशील बनाना है।

निष्कर्ष

1. शैक्षिक प्रबन्धन नवाचारिक अनुप्रयोगों द्वारा सशक्त नेतृत्व क्षमता का विकास करता है।
2. शैक्षिकप्रबन्धन कर्मचारियों, छात्रों, शिक्षकों, एवं समाज के मध्य अच्छे सम्बन्ध स्थापित करता है।
3. शैक्षिक प्रबन्धन में पूर्ण गुणवत्ता के माध्यम से उच्च आदर्शों को बनाए रख सकते हैं।
4. भविष्य के अनुरूप मानवीय क्षमताओं का सदुपयोग।
5. समाज के लिए लाभप्रद अपेक्षित परिणामों को प्राप्त करना।

सन्दर्भ सूची

कुलश्रेष्ठ, एस. पी.–शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, फोर्थ एडिसन, 2011

अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में उभरती हुई नई प्रवृत्तियाँ

प्रवीण बंगवाल/आशा
एम. एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

शिक्षा एक व्यापक प्रक्रिया है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य का, राष्ट्र का, समाज का, संस्कृति का विकास होता है। शिक्षा का वह स्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य का सत्य पथ प्रदर्शक होता है। जिस प्रकार शरीर के विकास के लिए भोजन की आवश्यकता होती है उसी प्रकार समाज, मनुष्य, राष्ट्र के विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है। शिक्षा जितनी बालकों के लिए आवश्यक है। उतनी ही अध्यापकों के लिए भी आवश्यक है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसके अध्यापकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। कोठारी आयोग का प्रारम्भिक वाक्य सार्थक है-"भारत के भाग्य निर्माण कक्षा में हो रहा है।" प्रशिक्षित एवं योग्य अध्यापकों के बिना शिक्षा के क्रम में उन्नति असम्भव है। योग्य अध्यापकों से ही देश का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

अध्यापकों को उचित प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। सभी शैक्षिक सम्बन्ध अनुभवों का सम्मेलन ही अध्यापकशिक्षा है। अध्यापकशिक्षा व्यक्ति को शिक्षण व्यवहार में दायित्व परिपालन करने में योग्यता का सम्पादन करती है। मुनरो के शैक्षणिक शोध के एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार-"अध्यापक शिक्षा से अभिप्राय उन सभी शैक्षणिक अनुभवों से है, जो किसी व्यक्ति को विद्यालय में शिक्षण तैयारी हेतु योगदान देते हैं, लेकिन इस शब्द का अधिकतर प्रयोग, उन पाठ्यक्रमों के कार्यक्रमों और अन्य अनुभवों, जो एक शैक्षणिक संस्थान द्वारा, घोषित उद्देश्यों के लिए व्यक्ति को शिक्षण हेतु तैयार और अन्य शैक्षणिक सेवाओं एवं उनके विकास में योगदान के

लिए दिए जाने से लगाया जाता है। शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है जिसमें छात्र शिक्षक और पाठ्यक्रम आते हैं। पाठ्यक्रम वह साधन है जिसके द्वारा शिक्षा व जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति होती है। कनिंघम के अनुसार– ''पाठ्यक्रम कलाकार (शिक्षक) के हाथ में एक साधन है जिससे वह अपनी सामग्री (शिक्षार्थी) को अपने आदर्श (उद्देश्य) के अनुसार अपनी चित्रशाला (विद्यालय) में ढाल सके।

वर्तमान समय अत्यधिक चुनौतीपूर्ण है। मनुष्य जहां एक ओर अपनी बुद्धि एवं विवेक से नवीन ज्ञान का अर्जन करके मानव जीवन की कुछ समस्याओं के समाधान के उपाय ढूंढ रहा है। शिक्षा मानव समस्याओं के समाधान का एक प्रमुख साधन है। इस कारण समाज भी समस्याओं के निराकरण हेतु शिखा की ओर ही निगाहें लगाए रहता है। अतः शिक्षा का दायित्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। इसके लिए शिक्षा के माध्यम से अपेक्षित परिवर्तन हेतु पाठ्यक्रम में भी आवश्यक परिवर्तन करने आवश्यक हो जाते हैं। परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम विकास की अनेक नवीन प्रवृत्तियों का उदय होता है। अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी अनेक नवीन प्रवृत्तियां उभर कर सामने आई जो अध्यापक शिक्षा को सर्वोत्तम बनाने के लिए महत्वपूर्ण है। वर्तमान युग विज्ञान का युग है। मानव जीवन का प्रत्येक पक्ष वैज्ञानिक अविष्कारों से प्रभावित है। शिक्षा व्यवस्था भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। शिक्षा तकनीकी के क्षेत्र में भी बहुत–सी नवीन प्रवृत्तियां उभर कर सामने आयी है जिसने शिक्षा का स्वरूप बदल कर रख दिया है।

अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्रणाली विश्लेषण, क्रियात्मक अनुसन्धान, कम्प्यूटर आधारित शिक्षा, इंटरनेट, ई–बुक, ई–लर्निंग, अभिक्रमित अधिगम विषयों का समावेश हुआ है। क्रियात्मक अनुसन्धान विद्यालयों की कार्यप्रणाली में एक महत्वपूर्ण विधा है। आई.सी.टी. वर्तमान युग की एक क्रान्तिकारी उपलब्धि है। प्रतिदिन शिक्षा की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए तथा छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सूचना संप्रेषण तकनीकी का अत्याधिक महत्व है। सूचना सम्प्रेषण तकनीकी ने अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रभावशाली शिक्षक तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसकी सहायता से अध्यापक

प्रशिक्षण में नवीन विधियों जैसे- माइक्रोटीचिंग, समूह प्रशिक्षण, वीडियोटेप आदि का प्रयोग करके अध्यापक प्रशिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। वही शिक्षा सही अर्थों में शिक्षा है जो मूल्य-परक होगी। शिक्षा मूल्य केन्द्रित तभी होगी जब पाठ्यक्रम मूल्य परक होगा। जो विद्यालय द्वारा समस्त अनुभवों का योग है। वर्तमान युग में मानव अपने मूल्यों को भुलता जा रहा है जिससे देश में भ्रष्टाचार और अशांति फैल रही है। इसका कारण मूल्यों का ह्रास होना है। शिक्षण भावी देश के लिए युवाओं को तैयार करता है। यदि अध्यापक स्वमूल्यों को जानता होगा तभी वह अपने छात्रों में मूल्यों को स्थानांतरित कर सकेगा। इसलिए अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में मूल्यशिक्षा को सम्मिलित किया गया है। वर्तमान युग में शिक्षा के क्षेत्र में नवीन क्रान्तिकारी परिवर्तन आए है। आज कई विद्यालयों में Smart Classes द्वारा अध्ययनकार्य किया जाता है। Smart Classes के द्वारा के बौद्धिक विकास को बढ़ाया जा सकता है। इससे अधिगमकार्य मनोरंजक, सरल बनाया जाता है। जिससे छात्र विषय को सरलता से समझ सकता है। छात्र अध्यापक के पाठ्यक्रम में समूह शिक्षण, शैक्षिक भ्रमण, प्रोजैक्ट का तथा दृश्य-श्रव्य सामग्री आदि अनेक बिंदुओं को रखा गया है जिससे कि अध्यापक इनके बारे में ज्ञान प्राप्त करता है। आर.टी.ई. एक्ट ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण तथा क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। इस एक्ट के अनुसार 6-14 वर्ष के छात्रों को अनिवार्य रूप से शिक्षा प्रदान की जाएगी। परन्तु यह एक्ट कहीं-न-कहीं पूर्ण रूप से क्रियान्वित नहीं हो पाया है। इसका कारण यह है कि कहीं-न-कहीं शिक्षक और जनता को इस एक्ट का पूर्ण ज्ञान नहीं है। अध्यापकशिक्षा के पाठ्यक्रम में इस एक्ट के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को रखा जाना चाहिए ताकि शिक्षक इस एक्ट की महत्वपूर्ण धाराओं को समझ सके और इस एक्ट को भली प्रकार से क्रियान्वित करने के लिए अपना योगदान दे सकें। विद्यालयों में छात्रों की निजी समस्याओं एवं व्यवसायिक समस्याओं के समाधान हेतु विद्यालयों में शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन एवं परामर्श के लिए अध्यापकों की आवश्यकता होती है वह तभी इस कार्यो को सुचारू रूप से यदि अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में हाल ही में यह विषय को सम्मिलित

किया गया है। कक्षा में सभी छात्र मानसिक और शारीरिक से स्वस्थ हो यह आवश्यक नहीं है कक्षा में ऐसे छात्र भी होते है जो मानसिक तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ नहीं होते हैं परंतु वह भी हमारे देश का हिस्सा है उन्हें शिक्षित करना हमारे समाज का उद्देश्य है इसीलिए अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में इस विषय को सम्मिलित किया गया है। ताकि भावी अध्यापक इन छात्रों का आसानी से अधिगम करवा सके। इसके अतिरिक्त, मानवाधिकार, शारीरिक शिक्षा इन नवीन प्रवृत्तियो को पाठ्यक्रम में रखा गया है।

निष्कर्ष

प्रभावशाली अध्यापक शिक्षा के लिए एक व्यवस्थित, सुसंगठित तथा एक सही पाठ्यक्रम की आवश्यकता होनी चाहिए। पाठ्यक्रम छात्र केन्द्रित, जीवन केन्द्रित, विषय केन्द्रित होना चाहिए। अध्यापक एक भावी पीढी का निर्माणकर्ता होती है उसका कार्य अपने छात्र को शिक्षित करना, उसकी सकीर्णता को दूर करना तथा उसमें लोकतांत्रिक भावनाओ का विकास करना है। यह तभी संभव है अगर अध्यापक में स्वयं ये गुण हो। इसलिए अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में इन गुणों का विकास करने वाले विषय होने चाहिए। पाठ्यक्रम में शिक्षार्थी के वे समस्त अनुभव समाहित होते हैं जिन्हें वह कक्षा कक्ष में प्रयोगशाला में, पुस्तकालय में, खेल के मैदान में, विद्यालय में सम्पन्न होने वाली अन्य पाठ्योत्तर क्रियाओं द्वारा तथा अपने अध्यापकों एवं साथियों के साथ विचारो के आदान प्रदान के माध्यम से प्राप्त होना चाहिए। अध्यापक शिक्षा का पाठ्यक्रम नवीन तथा परिवर्तनशील की देश परिस्थिति के अनुसार होना चाहिए। इन शिक्षा के क्षेत्र में एक नवीन क्रांति ला दी है। इन प्रवृत्तियों के कारण हमारे भारत की अध्यापक शिक्षा अन्य देशों की अध्यापक शिक्षा से कम नहीं है। इन प्रवृत्तियों के उदीयमान होने के कारण शिक्षा में तकनीकी कम्प्यूटर, इंटरनेट विशिष्ट शिक्षा, मूल्य शिक्षा ऐसे अनेक प्रवृत्तियों का उदय हुआ है जिसने अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में इन प्रवृत्तियों के उदय होने से अध्यापकों में तकनीकी का ज्ञान संचार हुआ है। आज भारत में शिक्षा व्यवस्था वैसे ही नहीं जैसे कुछ वर्षों पहले

थी। आज शिक्षा के क्षेत्र में नवीन क्रांति आ गई है। आज कई स्कूलों में Smart Class से शिक्षा दी जा रही है। इसके अतिरिक्त छात्रों की परीक्षा प्रणाली में भी काफी परिवर्तन हो गया। आज विद्यालयों में कई तकनीकों का प्रयोग बहुत बढ़ गया है। एक अध्यापक इन सभी शैक्षिक परिस्थितियों का सामना तभी कर पाएगा जब उसे इन सभी का ज्ञान होगा यदि उसे इन् सभी तकनीकियों का ज्ञान नही होगा तो वह विद्यालयों में होने वाले इन नवीन गतिविधियों को न तो कर पाएगा और न उसके बारे में अपने छात्रों को कुछ ज्ञान दे पायेगा यदि शिक्षक को इन नवीन परिवर्तनों का सामना करने के तैयार करना है तो अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में इन सभी नवीन उदीयमान प्रवृत्तियों का समावेश हो।

शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन में ज्योतिर्विज्ञान की भूमिका

विपिन शर्मा
शोध छात्र., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

मापन एवं मूल्यांकन की प्रक्रिया अत्यधिक प्राचीन है इसका उपयोग न केवल शिक्षा एवं मनोविज्ञान में ही किया जाता है अपितु भौतिकविज्ञान, संचार इत्यादि अनेक क्षेत्रों में किया जा रहा है। मापन एवं मूल्यांकन में घनिष्ठ सम्बन्ध है यतोहि मापन के पश्चात् ही किसी वस्तु, गुण आदि का मूल्यांकन संभव है।

वेदों, उपनिषदों, पुराणों, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में अनेक ऐसे दृष्टांत देखने को मिलते हैं जो मापन प्रक्रिया के उपयोग को स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं। यक्ष-युधिष्ठिर संवाद, यम नचिकेता संवाद, पहेलियों व वाक्य पूर्तियों आदि के द्वारा व्यक्तियों की योग्यताओं के निर्धारण के अनेक संदर्भ प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। वस्तुतः मापन एवं मूल्यांकन प्रक्रिया को उतना ही प्राचीन माना जा सकता है जितना प्राचीन मानव जीवन का इतिहास है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में अनेक बार औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से विभिन्न बातों का मापन करता रहता है। वस्त्र विक्रेता कपड़ा नाप कर देता है, डाक्टर मरीजों का तापमान नापता है। यद्यपि इनमें मीटर थर्मामीटर जैसे प्रमाणिक मापक साधनों (Standard Measuring Instrument) की आवश्यकता है परन्तु बिना किसी मानक साधान के अभाव में भी मापन हो सकता है। साक्षात्कार के द्वारा प्रतियोगियों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय इत्यादि क्रम (Rank) प्रदान करना अथवा व्यक्ति के प्रकार के आधार पर छात्रों को समूहों में बांटना। मापन की प्रक्रिया औपचारिक है जबकि मूल्यांकन की प्रक्रिया अनौपचारिक है

जो निरन्तर चलती रहती है, मूल्यांकन सभी वस्तुओं, गुणों एवं तथ्यों का निरन्तर होता रहता है। मूल्यांकन की प्रक्रिया गुणात्मक है जबकि मापन की प्रक्रिया परिमाणात्मक होती है।

भौतिक विज्ञान में मापन की प्रक्रिया प्रत्यक्ष होती है जबकि शिक्षा एवं मनोविज्ञान में अप्रत्यक्ष होती है। इसका प्रयोग वस्तुओं, पदार्थों, जीवों इत्यादि के भौतिक एवं व्यावहारिक गुणों के मापन के लिए किया जाता है।

व्यापक रूप से मापन एवं मूल्यांकन प्रक्रिया का विभाजन दो प्रकार से किया गया है-

1. भौतिक मापन
2. व्यावहारिक मापन

भौतिक मापन

भौतिक गुणों एवं विशेषताओं के मापन की प्रक्रिया अधिक सरल एवं शुद्ध होती है। क्योंकि भौतिक गुणों का मापन प्रत्यक्ष रूप में किया जाता है। यदि व्यक्ति की ऊंचाई का मापन करना है तो पैमाने के द्वारा किया जाता है। इसकी इकाई सुनिश्चित होती है। इस मापन का संदर्भ बिन्दु शून्य होता है तथा एक मापन (Scale) एक ही गुण या विशेषता का मापन करता है।

व्यावहारिक मापन

व्यावहारिक मापन की प्रक्रिया अपेक्षाकृत कठिन एवं जटिल होती है, क्योंकि वस्तु अथवा व्यक्ति के गुणों का मापन अप्रत्यक्ष रूप में किया जाता है उदाहरणार्थ बुद्धि, निष्पत्ति, व्यक्तित्व, प्रवणता एवं अभिरूचि आदि गुणों के मापन के लिए जिन परीक्षणों की रचना की गई है। उनका उपयोग मापन में अप्रत्यक्ष होता है।

व्यावहारिक मापन में कोई इकाई सुनिश्चित नहीं होती। मापन से साधारणतः अंक प्राप्त होती हैं। प्राप्तांक की कोई इकाई नहीं होती, तथा प्राप्तांक अर्थहीन होते हैं उनको सार्थक बनाये के लिये या उसका अर्थापन करने के लिये सांख्यिकी का प्रयोग किया जाता है।

व्यावहारिक मापन में शून्य का कोई विशेष अर्थ नहीं होता। यदि किसी छात्र का प्राप्तांक शून्य है तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसे कुछ नहीं आता अपितु जो प्रश्न पूछे गए थे, उन प्रश्नों के सही उत्तर नहीं दे सका। ''अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में किया जाने वाला मापन व्यावहारिक मापन के क्षेत्र के ही अन्तर्गत आता है।''

सामान्य रूप में मापन की प्रमुख प्रक्रिया के तीन कार्य होते हैं-

1. किसी वस्तु के गुण या चर की पहचान की जाती है एवं उसकी परिभाषा दी जाती है।
2. उन क्रियाओं तथा व्यवहारों को निर्धारित किया जाता है जिनसे उस गुण अथवा चर की अभिव्यक्ति की जाती है।
3. उस प्रक्रिया का प्रतिपादन किया जाता है जिससे निरीक्षणों को परिणाम अथवा प्राप्तांको में बदल लिया जाता है।

चरों (Variables) को व्यापक रूप में चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

अ. योग्यतायें (Abilities)

ब. निष्पत्ति (Achievement)

स. प्रवणता (Aptitude)

द. लक्षण (Trait)

अ. योग्यतायें (Abilities)-एक व्यक्ति क्या कर सकता है? इसे उसकी योग्यता कहते हैं जैसे बुद्धि। यदि कोई व्यक्ति कुछ करने का प्रयास करे तब वह क्या कर सकता है?

ब. प्रवणता (Aptitude)-एक व्यक्ति क्या कर सकेगा? उसे उसकी प्रवणता कहते है जैसे- शिक्षण की प्रवणता। यदि कोई व्यक्ति भविष्य में कुछ करना चाहेगा तब वह क्या कर सकेगा?

स. निष्पत्ति (Achievement)-व्यक्ति कि वे अनुक्रियायें जिनसे यह ज्ञात होता है कि उसने अब तक क्या सीखा है?

द. लक्षण (Trait) तथा व्यक्तित्व चर-किसी परिस्थिति में व्यक्ति के व्यवहार में स्थायित्व हो उसे लक्षण या व्यक्तित्व चर की

संज्ञा दी जाती है।

मापन के कार्य (Function of Mearuement)

मापन प्रक्रिया द्वारा वस्तु विशेष के गुणों को परिणाम से बदल लिया जाता है। इसके तीन मुख्य कार्य है-

1. साफल्य बताने का कार्य (Prognostic Function)
2. निदान करने का कार्य (Diagnostic Fuinction)
3. भविष्यवाणी करने का कार्य (Prediction Function)

मापन विधियां (Methed of Mearuement)

एक व्यक्ति के गुणों या चरों में बहुत विषमता होती है क्योंकि चरों का क्षेत्र एवं प्रकृति भिन्न होती है। इसलिए मापन की विधियां भी कई प्रकार की होती है जिन्हें मुख्यत: तीन वर्गों में बांटा गया है-

1. परीक्षा विधि (Test)
2. निरीक्षण (Observation)
3. मिश्रित (Mixed)

शिक्षा के अन्तर्गत केवल छात्रों की निष्पत्ति का मापन करना ही पर्याप्त नहीं है अपितु शिक्षण-प्रक्रिया, शिक्षण-विधियों, प्रविधियों, शिक्षण सहायक सामग्री, पुस्तकों, शिक्षण उद्देश्यों आदि सभी तत्वों एवं क्रियाओं की उपयुक्ता का मूल्याकंन करना भी आवश्यक होता है। शिक्षण प्रक्रिया के विकास एवं सुधार के लिये मूल्यांकन विधि अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है।

छात्रों की क्षमताओं, स्वभाव, व्यक्तित्व, योग्यताओं, अभिवृत्ति तथा रुचियों आदि का मापन एवं मूल्यांकन हम यदि ज्योतिर्विज्ञान के द्वारा किया जाए तो यह मापन अपेक्षाकृत कम श्रम एवं समय मे केवल तीन बातों की जानकारी द्वारा (जातक की जन्मतिथि, जन्म समय तथा जन्म स्थान) सही एवं उपयुक्त किया जा सकता है। यह मापन व्यक्ति की जन्मकुण्डली का निर्माण कर उसके सम्यक् अध्ययन द्वारा किया जा सकता हैं। ज्योतिर्विज्ञान 4000 वर्ष से भी अधिक प्राचीन प्रमाणिक

विज्ञान है। 16 अक्टूबर, 2000 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) ने यह निर्णय लिया कि ज्योतिष के अध्ययन को बढ़ावा दिया जाए तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों में तत्संबंधित विभाग स्थापित किए जाएं। 25 जनवरी, 2001 में UGC ने ज्योतिष के पाठ्यक्रम हेतु 'ज्योतिर्विज्ञानम्' नाम सुनिश्चित किया।

वर्तमान समय में भारत के ही नहीं अपितु विश्व के कई प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थानों में ज्योतिर्विज्ञान पर अध्ययन एवं शोधकार्य किया जा रहा है। परतु अध्यापक शिक्षा में हम इस प्राच्य विज्ञान से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं अतः मेरे द्वारा इस क्षेत्र में कार्य कर करने का प्रयास किया जा गया है।

ज्योतिष के द्वारा जन्मकुण्डली के द्वादश भावों का अध्ययन कर व्यक्ति के जीवन के सभी पक्षों को समझा जा सकता है, विशेषतः प्रथम भाव को अध्ययन द्वारा व्यक्तित्व को समझा जाता हैं, पंचम भाव के अध्ययन द्वारा बौद्धिक एवं शैक्षिक योग्यता का पता चलता है एवं दशम-भाव के अध्ययन द्वारा उसके व्यावसायिक पक्ष एवं कार्य क्षमता का ज्ञान होता है।

ज्योतिषशास्त्र की व्युत्पति **''ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्''** की गयी है, अर्थात सूर्यादि ग्रह और काल का बोधा करानेवाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है। इसमें प्रधानतः ग्रह नक्षत्र, धूमकेतु आदि ज्योतिः पदार्थों का स्वरूप, संचार, परिभ्रमणकाल, ग्रहण और स्थिति प्रभृति समस्त घटनाओं का निरूपण एवं ग्रह, नक्षत्रों की गति, स्थिति और संचारानुसार शुभाशुभ फलों का कथन किया जाता है।

अन्य शब्दों में आकाश में स्थित ज्योतिर्पिण्डों के संचार और उनसे बनने वाले गणितागत पारस्परिक संबंधों के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करने वाली विद्या का नाम ज्योतिषशास्त्र है।

ज्योतिष के प्रणेताओं ने बड़ी सूझबूझ से ग्रह-गणित और ग्रह रश्मि के प्रभावों-दोनों को मिलाकर त्रिस्कन्ध ज्योतिष शास्त्र का निर्माण किया।

ज्योतिष शास्त्र के त्रिस्कन्धात्मक स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए नारद ने कहा है-

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपस्कन्धात्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मल चक्षुर्ज्योतशशास्त्रमनुत्त्मम्।।

ज्योतिष शास्त्र के रूपत्रय निम्नलिखित है-

गणित या सिद्धांन्त

संहिता

होरा

व्यक्ति संबंधी अध्ययन होरा स्कन्ध के अन्तर्गत आता है।

होरा-जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति के अनुसार व्यक्ति के लिए फल का निरूपण इसमें किया जाता है। इस शास्त्र में जन्मकुण्डली के द्वादश भावों के रल, उनमें स्थित ग्रहों तथा दृष्टि रखनेवाले ग्रहों के अनुसार विस्तारपूर्वक प्रतिपादित किये जाते हैं।

ग्रह-भारतीय ज्योतिष में नव ग्रहों का विचार किया जाता है। ये ग्रह हैं- सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरू, शनि, राहु और केतु। प्रथम सात दृश्यमान आकाशीय पिण्ड हैं। राहु-केतु छाया ग्रह हैं।

भाव-ज्योतिषशास्त्र में फल निर्धारण 12 भावों के आधार पर किया जाता है। जो इस प्रकार है-

द्वितीय भाव		द्वादश भाव
	लग्न	एकादश
तृतीय भाव	प्रथम भाव	भाव
चतुर्थ भाव		दशम भाव
पच्चम	सप्तम भाव	नवम
भाव		भाव
	पष्ठ भाव	अष्टम भाव

व्यक्तित्व सम्बन्धी भाव-व्यक्तित्व संबंधी अध्ययन हेतु मुख्यत:

प्रथम भाव का अध्ययन किया जाता है।

शिक्षा सम्बन्धी भाव-शैक्षिक योग्यता संबंधी अध्ययन करने के लिए मुख्यतः चतुर्थ एवं पञ्चम भाव का अध्ययन किया जाता है।

कार्य-क्षमता सम्बन्धी भाव-कार्य-क्षमता सम्बन्धी अध्ययन करने के लिये मुख्यतः सप्तम एवं दशम भाव का अध्ययन किया जाता है।

कार्य-क्षमता सम्बन्धी भाव-कार्य-क्षमता सम्बन्धी अध्ययन करने के लिये मुख्यतः सप्तम एवं दशम भाव का अध्ययन किया जाता है।

ज्योतिषशास्त्र भारतीय विद्याओं का महत्वपूर्ण अंग है। शुभ घड़ी विचार, व्यक्तित्व अध्ययन, शैक्षिक विषय तथा व्यवसाय चयन इत्यादि के लिए निर्देशन प्राप्त करने हेतु मानव प्राचीन काल से ही ज्योतिर्विज्ञान की सहायता ले रहा है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ज्योतिष किसी न किसी रूप में व्यक्ति से जुड़ा है, कार्य व्यवहार के लिए अत्यन्त उपयोगी दिन, सप्ताह, मास, अयन, ऋतु, वर्ष, उत्सव, तिथि आदि का परिज्ञान इसी शास्त्र से होता है।

ज्योतिष शास्त्र हमें छात्रों की मनोस्थिति को समझने में सहायता प्रदान करता है। ज्योतिष के द्वारा हम छात्रों के व्यक्तित्व, बौद्धिक तथा व्यावसायिक क्षमताओं का मापन एवं मूल्याकंन कर उचित निर्देशन प्रदान कर सकते हैं।

वर्तमान समय मे (1) मनोवैज्ञानिक परीक्षण, (2) प्रश्नावली, (3) साक्षात्कार, (4) व्यक्तिवत अध्ययन इत्यादि मापन एवं मूल्यांकन के साधनों द्वारा छात्रों के व्यक्तित्व, बुद्धि, उनके स्वभाव, रुचियों, योग्यताओं एवं क्षमताओं का पता लगाया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें निर्देशन प्रदान किया जाता है, ताकि वह अपनी अधिकतम क्षमता से समाज में योगदान दे सकें। परन्तु ये मापन के साधान अपेक्षाकृत अधिक धन एवं श्रम साध्य होते हैं तथा इनकी प्रमाणिकता भी 100% नहीं होती है।

यह कार्य यदि ज्योतिर्विज्ञान के द्वारा किया जाए तो कम समय में केवल तीन बातों की जानकारी द्वारा उसका सही मापन एवं मूल्यांकन किया जा सकता है जो उचित निर्देशन प्रदान करने में भी सहायक सिद्ध होगा। ज्योतिष एक बहुप्राचीन एवं प्रमाणिक विज्ञान है, जो व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित सभी पक्षों का सूक्ष्म एवं व्यापक ज्ञान प्रदान करता है। ज्योतिषीय सिद्धान्तों द्वारा व्यक्ति की जन्मकुण्डली का निर्माण कर उसके द्वादश भावों का अध्ययन करके, व्यक्ति के जीवन के हर पहलु का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है तथा उसकी समस्याओं को भली-भांति समझ कर उचित निर्देशन प्रदान कर सकते हैं इन विषयों पर कई शोधकार्य भी किए गए हैं यथा-

''शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन में ज्योतिष की भूमिका का अध्ययन'' तथा ''आचार्य कक्षा के छात्रों का ज्योतिष कुण्डली के आधार पर शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन परक अध्ययन। एवं छात्रों के व्यक्तित्व के अध्ययन हेतु ''शैक्षिक मनोविज्ञान एवं ज्योतिषशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में छात्रों के व्यक्तित्व का विश्लेषणात्मक अध्ययन'' इत्यादि इस प्रकार भविष्य में भी छात्रों के मापन एवं मूल्यांकन हेतु इस दिशा में और भी नूतन कार्य किये जाने चाहिए ताकि इस क्षेत्र में विकास होता रहे।

अध्यापक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में शान्ति शिक्षा

सविता राय
शोध छात्र, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

आधुनिक युग में मानव ने विकास की ऊंचाईयों को छू लिया है परन्तु इस विकास के साथ ही उसके जीवन में अनेक समस्याएं प्रादूर्भूत हो गयी है। वर्तमान भौतिकता के युग में व्यक्ति तनाव, चिन्ता, अत्यधिक कार्यभार एवं सामाजिक दबाव का सामना कर रहा है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति नकारात्मक भावनाओं यथा विद्रोह, घृणा, असहिष्णुता के अधीन होता जा रहा है। मानवीय मूल्यों यथा प्रेम, अहिंसा, सद्भाव, सहयोग का ह्रास होता जा रहा है। मानवीय सद्गुण व्यक्ति एवं समाज में शान्ति का आधाार हैं। अत: वर्तमान में विघटित हो रहे मानवीय सद्गुणों के संचार के लिए शांति शिक्षा की अवधारण को स्वीकृत किया जा रहा है। यूनेस्को ने कहा है कि-"Violence begins from the minds" अर्थात् हिंसा व्यक्ति के मस्तिष्क से उत्पन्न होती है। इस दृष्टि से शान्ति स्थापना का प्रारंभ भी व्यक्ति के मस्तिष्क से ही होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में शान्ति शिक्षा के महत्व को स्थापित करके ही समूह, समाज, राष्ट्र एवं वैश्विक स्तर पर शांति स्थापित की जा सकती है। इस दृष्टि से विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण कर रही हमारी भावी पीढ़ी के मस्तिष्क में शान्ति के महत्व को स्थापित करने के लिए शिक्षण-प्रशिक्षकों एवं भावी शिक्षकों को शान्ति शिक्षा एवं इसके महत्व का ज्ञान होना आवश्यक है।

संपूर्ण विश्व में शान्ति शिक्षा की अवधारणा 21वीं सदी की देन है। इसके द्वारा लोगों में नकारात्मक भावनाओं को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है जिससे व्यक्ति अपने जीवन को शांतिपूर्ण ढंग से व्यतीत करने में समर्थ हो सके। यह शिक्षा मानवीय मूल्यों को महत्व करते हुए लोगों को ऐसे मूल्यों के प्रति विचार करने के लिए प्रेरित करती है

जिससे लोग हिंसा एवं घृणा से रहित हो सकें। शांति शिक्षा का उद्देश्य ऐसे शांत निश्चल वातावरण का निर्माण करना है जिसमें व्यक्ति सद्भावपूर्वक निवास करते हुए एक-दूसरे के सहयोग के लिए तत्पर हो।

अलबर्ट आइन्सटाइन महोदय के अनुसार-"शान्ति को सैन्य बलों के द्वारा स्थापित नहीं किया जा सकता है।" यूनेस्को के अनुसार शांति आधारित शिक्षा का उद्देश्य लोगों में हिंसा के प्रयोग की भावना को समाप्त करना है।

वैश्विक परिदृश्य

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न नामों से अनेक उच्चस्तरीय कार्यक्रमों के द्वारा शान्ति शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयास किया जा रहा है। जैसे-मानवाधिकार शिक्षा, शान्ति शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, सामाजिकन्याय शिक्षा इत्यादि। विभिन्न नामों से प्रचलित इस शिक्षा का मूल उद्देश्य एक ही है-समानता, सद्भाव, अहिंसा एवं प्रेम जैसे गुणों का विकास। यूनिसेफ एवं यूनेस्को द्वारा शान्ति शिक्षा के लिए विशेष प्रयास कर रहे हैं। यूनिसेफ ने शान्ति शिक्षा को विद्यालयों एवं अन्य शैक्षिक संस्थाओं के उन प्रयासों के रुप में वर्णित किया है जो-

1. जो शान्तिमण्डल के रूप में कार्य हैं और जहां छात्र हिंसक संघर्षों से सुरक्षित रहते हैं। अर्थात् जहां शिक्षकों एवं प्रबन्धकों द्वारा ऐसे वातावरण का निर्माण किया गया है जिसमें परस्पर सद्भाव एवं सहयोग का भाव हो।

2. ऐसे वातावरण का निर्माण करते हैं जिससे अधिगम समुदाय अर्थात् शिक्षकों एवं छात्रों में शान्तिपूर्ण एवं सम्मानजनक व्यवहार का सृजन हो।

3. प्रशासनिक नीतियों के अनुपालन में भेदभाव रहित होकर समानता के सिद्धांत का अनुपालन हों।

4. विवादों का समाधान शान्तिपूर्वक ढंग से हो एवं उसमें सम्मिलित लोगों की प्रतिष्ठा एवं अधिकार का सम्मान हो। अर्थात् जितने

लोग विवाद या किसी संघर्ष में सम्मिलित हैं चाहे वह अधिकारी हो या कर्मचारी, सबके सम्मान और प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए विवादों का उचित रूप से समाधाान हो।

5. सम्पूर्ण पाठ्यचर्या में शान्ति, मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और वैश्विक तथ्यों का एकीकरण एवं अवबोध का प्रयास हो। अर्थात् शान्ति शिक्षा कों एक अलग विषय के रूप में न सम्मिलित करके इसको सभी विषयों के साथ उचित प्रकरण एवं आवश्यकता के अनुरुप जोड़कर अन्तर्विषयी (Interdisciplinary) विषय के रुप में पढ़ाया जाए।

6. ऐसे शिक्षण-अधिगम विधियों का प्रयोग हो जो प्रतिभागिता, समस्या समाधान एवं एक दूसरे के मतभेदों के प्रति सम्मान पर बल देते हों।

यूनिसेफ ने 1920 में 'सभी के लिए शिक्षा' (EFA) के घोषणापत्र में स्पष्ट रुप से कहा है कि आधारभूत अधिगम की आवश्यकता केवन पठन-पाठन एवं गणना की योग्यता नहीं है अपितु ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति और मूल्यों को अर्जित करना है जिससे व्यक्ति सम्मानपूर्वक रहते हुए कार्य कर सके एवं विकास में सहभागी बन सके। इसमें आगे कहा गया है कि आवश्यकताओं की पूर्ति में सामाजिक न्याय, मतभेदों को स्वीकारने एवं शान्ति के प्रति उत्तरदायित्व निहित रहता है।

वर्ष 2001 को शान्ति संवर्धन के रूप में एवं वर्ष 2001-2010 के दशक को शान्ति संवर्धन के अन्तर्राष्ट्रीय दशक के रुप में आयोजित किया गया। शान्ति शिक्षा की उन्नति एवं प्रसार के लिए यूनेस्को द्वारा इस क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वाले व्यक्ति को शांति शिक्षा पुरस्कार भी प्रदान किया जाता है।

भारतीय परिदृश्य

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। शान्ति शिक्षा भारतीय संस्कृतिक मूलाधार है जो लोगों में अहिंसा, प्रेम, सद्भाव व सहयोग इत्यादि गुणों का समावेश करती है। यद्यपि शांति शिक्षा को आधुनिक युग की देन माना जा रहा है। परन्तु इसका बीज तो भारतीय

संस्कृति में प्राचीनकाल से ही है। भारतीय संस्कृति में स्व-शांति अर्थात् स्वयं के मन की शांति को महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि जो व्यक्ति स्वयं के मन की शांति के लिए प्रयत्न करता है वही दूसरों के लिए शांति का प्रयत्न कर सकता है। भगवद् गीता में कहा गया है कि जो निष्काम भाव से कर्म करता है वही शांति प्राप्त करने में समर्थ होता है-

''विहाय कामान् य सर्वान् पुमांश्चरित निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः सः शान्तिमधिगच्छति।।''

(भ.ग.6/16)

भारतीय संस्कृति विश्व बन्धुत्व का संदेश देती है। यह व्यक्ति में ऐसे दृष्टिकोण का विकास करती है जिससे लोगों में वसुधैव कुटुम्बकम् एवं विश्वमभवेत्येकनीडम् की भावना का प्रसार हो सके। भारतीय संस्कृति के संवाहक प्राचीन ग्रन्थ ऐसे उपदेशों से समृद्ध हैं जो मानव को सद्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं। भारतीय शिक्षा पद्धति में प्राचीकाल से आज तक गुरु द्वारा अपने शिष्यों को सभी के कल्याण हेतु प्रेरित करने की परंपरा स्वतः विद्यमान है। आकाश, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी इत्यादि की शांति की बात करने वाली भारतीय संस्कृति एवं इसकी शिक्षा पद्धति के संदर्भ में शांति शिक्षा कोई नवीन प्रवृत्ति नहीं है। परन्तु बदलते हुए वैश्विक परिवेश में भारतीय समाज भी बदलता जा रहा है और समाजीकरण की इस प्रक्रिया में हमारा समाज अपने सांस्कृतिक मूल्यों को विस्मृत करता जा रहा है। ऐसे में शांति शिक्षा के द्वारा शांति के महत्व को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है।

वर्तमान में भारत सरकार विशेष रुप से 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्' और अन्य कई संगठन शान्ति शिक्षा के द्वारा बाल्यावस्था में ही शांति के प्रयास के संस्कार को विकसित करने के लिए व्यापक स्तर पर प्रयासरत हैं। शांति शिक्षा की आवश्यकता को अनुभव करते हुए 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्' ने विद्यालय स्तर पर शिक्षकों के लिए दिशा निर्धारण कार्यक्रमों के आयोजन का प्रारंभ किया है। इनमें शिक्षकों को विवादों को सुलझाने एवं उनके प्रबन्धन की प्रक्रिया, हिंसा को समाप्त करने के उपाय, आक्रामकता एवं

अहं को नियंत्रित करने के तरीके आदि के सम्बन्ध में विशेष रुप से प्रशिक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रशिक्षण में शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे विद्यालय एवं समुदाय दोनों ही स्तरों पर लोगों को शान्ति स्थापना हेतु शिक्षित करेंगे एवं उनका मार्गदर्शन करेंगे। 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद' ने शान्ति शिक्षा को शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम का एक भाग बना दिया है। जिससे ऐसे शिक्षकों को तैयार किया जा सके जो अपने छात्रों में शान्ति को बनाए रखने की आवश्यकता की प्रतीति करा सकें एवं इस हेतु उनमें आवश्यक गुणों को विकसित कर सकें।

प्रतिस्पर्धा के वर्तमान युग में लोगों में भावनात्मक असुरक्षा की भावना बढ़ रही है जिससे व्यक्तियों में हिंसक प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। अतः अध्यापक शिक्षा में शांति शिक्षा के तत्व को महत्व प्रदान करने का यह उचित समय है। इसके द्वारा जहां एक ओर शिक्षकों को शांति शिक्षा के लिए प्रेरित किया जा सकता है वहीं विद्यालय स्तर पर शांति शिक्षा आधारित पाठ्यक्रम का विकास एवं उसके क्रियान्वयन हेतु उन्हें सशक्त बनाया जा सकता है।

वैश्विक पटल पर शांति शिक्षा को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने का उद्देश्य दो विश्व युद्धों की भयावहता से गुजर चुके विश्व को भविष्य में युद्ध की त्रासदी से बचाना है। अध्यापक शिक्षा के अन्तर्गत शांति शिक्षा को समाहित कर इसके द्वारा सहिष्णुता, दूसरों के विचारों को सम्मान प्रदान करना, अपने आवेगों को नियंत्रित करने की योग्यता तथा पारस्परिक सौहार्द्र भाव से कार्य करने की प्रवृत्ति आदि गुणों को छात्रों के अन्तकरण में स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। इसके द्वारा शिक्षक अपने छात्रों को हिंसा के परिणामों से परिचित करवाकर उनमें अपने विवादों एवं संघर्षों का निवारण अहिंसात्मक रुप से करने की योग्यता विकसित कर सकता है जिससे वे हिंसा से दूर रहें।

बदलते परिदृश्य में शिक्षक शिक्षा

अजय कुमार शर्मा
मेवाड़ विश्वविद्यालय

बदलते परिदृश्य में गुरू-शिष्य परंपरा

भारतवर्ष की प्राचीनता, दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता को अखिल विश्व के समृद्ध राष्ट्र निःसंकोच होकर स्वीकार करते हैं। इस देश की संस्कृति, भाषा को अनेक भाषाओं की जननी कहा जाता है। विदेशों में आज भी भारतवर्ष की छवि आध्यात्मिक गुरू के रूप में स्वीकार की जाती है। भारतीय संस्कृति में 'गुरू' की महत्ता तथा आवश्यकता के सम्बन्ध में जितना उल्लेख किया गया है, उतना अन्य किसी देश के साहित्य तथा संस्कृति में नहीं मिलता।

माता-पिता के पश्चात गुरू की मान्यता को वेद, उपनिषद् तथा परवर्ती साहित्य में एक मत से स्वीकार किया गया है। गुरू के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त करने के लिये तथा उनका गुणागान करने के लिये 'गुरूपूर्णिमा' 'व्यास पूजा' आदि विभिन्न नाम देकर विशेष दिवस भी निर्धारित किये गए हैं। शास्त्रों में गुरू के तीन भेद माने गये हैं-आचार्य, उपाध्याय और गुरू।

जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन संस्कार कर यज्ञ, विद्या एवं उपनिषद सहित वेद पढ़ाएं उन्हें आचार्य कहा जाता है। जीविका के लिये जो वेद के एकांश या वेदांशों को पढ़ाता है वही 'उपाध्याय' कहलाता है।

जो विप्र निषेक आदि कर्मों को विधिपूर्वक करता है और उपायों से भी सम्माननीय बनाता है वह 'गुरू' कहलाता है। शिक्षक के इन तीनों रूपों में शिष्य को पूर्ण विद्वान बनाने की प्रवृत्ति निहित है।

शिक्षण का गुण है कि वह उन उदात्त वृत्तियों को जीवन के सांचे में ढालने की वृत्ति भी शिष्य में उत्पन्न कर दे, जिससे ज्ञान व क्रिया का सामंजस्य हो जाए। इसीलिये शिक्षक को शास्त्रोक्त धर्म का ज्ञाता होना अनिवार्य है, क्योंकि आचरण से ही शिष्यों में धर्मानुष्ठान की भावना स्थिर की जा सकती है।

शिष्य शब्द अपने में पूर्ण है जो वास्तविक रूप से गुरू शिष्य सम्बन्ध को उद्घटित करता है। जो शिष्य गुरू की आज्ञा का पालन करके उनकी आशीर्वादात्मक वाणी को ग्रहण करता हुआ उनके हृदय में समाविष्ट हो जाता है, वही सच्चा शिष्य है। 'नारदपुराण' में शिष्य की तल्लीनता के विषय में कहा गया है कि- **''जो चाहना रखने वाला है और विद्या प्राप्त करना ही जिसके जीवन का एक मात्र प्रयोजन होता है वह एक गरुड़ पक्षी हंस के समान समुद्र में भी चला जाता है।''**

तात्पर्य यही है, कि विद्या का अर्थी सुदूर और दुर्गम स्थानों में भी पहुंच जाता है क्योंकि उसका तो एक मात्र लक्ष्य विद्या की प्राप्ति करना होता है।

परन्तु वर्तमान समय में गुरु-शिष्य सम्बन्धों में परिवर्तन ही नहीं आ रहा है कभी कभी लगता है कि जैसे ये सम्बन्ध संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं। आज की शिक्षा व्यवस्था में गुरु शिष्य सम्बन्धों में सुधार चाहते हैं तो परिवार, समाज को अपने दायित्वों का निर्वाह निष्ठापूर्वक करना होगा। हमें गुरु व शिष्य दोनों की मनोदशाओं का अध्ययन करना होगा। उनसे जड़ी संवेगात्मक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने के प्रयास पूरी ईमानदारी से करने होंगे।

गुरु और शिष्य एक दूसरे के पूरक है। अतः अपने शब्दों को विराम देते हुये कहना चाहूंगा कि-तुम बिन स्रजन अधूरा है,

हम नहीं तो तमका पहरा है

गर हम मिले तो, क्या सागर गहरा है?

बदलते परिदृश्य में गुरू-शिष्य परंपरा

गुरु और शिष्य

शिक्षक का गुण है कि वह उन उदात्त वृत्तियों को जीवन के सांचे में ढालने की वृत्ति भी शिक्षार्थी में उत्पन्न कर दे, जिससे ज्ञान व क्रिया का सामंजस्य हो जाए। इसीलिये शिक्षक को शास्त्रोक्त धर्म का ज्ञाता होना अनिवार्य है, क्योंकि आचरण से ही शिष्यों में धर्मानुष्ठान की भावना स्थिर की जा सकती है। उत्तम आचार व विचार की शिक्षा पाने पर ही शिक्षार्थी में चारित्रिक बल व बौद्धिक प्रकर्ष आ सकता है, अत: शैक्षणिक प्रक्रिया में शिक्षक को स्वयं आदर्श व्यक्ति होना अनिवार्य है।

शैक्षिक प्रक्रिया द्विमुखी प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों का ही क्रियाशील होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इस प्रक्रिया में तर्क, सोच-विचार, मनन-चिन्तन तथा औचित्य आदि का विचार शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों के ही द्वारा किया जाता है और अन्ततः एक विशिष्ट स्तर पर दोनों की सहमति होने पर ही शैक्षणिक प्रक्रिया की सफलता निर्भर करती है। शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही अपनी अपनी मूल प्रवृत्तियों, अभिरुचियों योग्यताओं, प्रतिभाओं, प्रेरणाओं एवं सांस्कृतिक मान्यताओं से प्रेरित होते हैं जिनके आधार पर ही उनका व्यक्तित्व निर्मित होता है अत: शिक्षक के लिये यह अनिवार्य है कि वह शिक्षार्थी की प्रवृत्ति को ध्यान में रख कर अनुकूल रीति का प्रयोग करते हुये शिक्षा प्रदान करे क्योंकि शिक्षा एक प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया है और प्रतिक्रियात्मक प्रभाव से ही शिक्षार्थी में ज्ञान का उदय होता है। अन्ततः ज्ञान के प्रकाश से ही शिक्षार्थी में निहित प्रतिभा एवं योग्यता, आत्म चिंतन एवं आत्म-मंथन के गुण से अनुप्राणित होकर प्रकाशित होती हैं।

शैक्षणिक प्रक्रिया में शिक्षक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। वह शिक्षार्थी के लिये आदर्श, सर्वगुण सम्पन्न तथा श्रेष्ठ अनुकरणीय व्यक्तित्व होता है। अपने गुणों के आधार पर ही वह शिक्षार्थी के व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास में उनकी उपयोगिता सिद्ध करने में सहायक बनता है इसी कारण शिक्षक का गुणवान होना अनिवार्य है।

शिक्षक व शिक्षार्थी के गुण

शिक्षक के गुणों का दर्पण उसका सच्चरित्र एवं प्रभावशाली सरल सम्पन्न व्यक्तित्व होता है जिसका अनुसरण व अनुकरण करना ही शिक्षार्थी का लक्ष्य होता है। अतः यह आवश्यक है कि वह शिक्षण कला में भी दक्ष हो अर्थात् शिक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत वह विशिष्ट विषय की प्रकृति एवं विद्यार्थी के लिये हृदयग्राही बन जाए। योजना की कुशलता तथा पाठ्य विषय को रूचिपूर्ण बनाने के प्रयत्न से वह विद्यार्थी की अभिरुचि, अभिवृत्ति व आवश्यकता को समझ कर उनसे विशिष्ट विषय की सामंजस्यता स्थापित कराने में सफल सिद्ध हो सके। इसके लिये शिक्षक को केवल विशिष्ठ विषय में ही नहीं वरन् उससे सम्बन्धित दार्शनिक मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक पक्षों से भी परिचित होना आवश्यक है। शिक्षार्थी चाहे किसी भी आयु का हो वांछित शिक्षा के अभाव में वह शिक्षक के लिये बालक तुल्य ही होता है। अतः शिक्षक का धर्म है कि वह विशिष्ट विषय को गत्यात्मक रूप में इस प्रकार पढ़ाये कि वह स्वयं विशिष्ट विषय व विद्यार्थी के बीच का माध्यम बन सके। अपने जीवन अनुभव से वह शिक्षार्थी को विशिष्ट विषय के माध्यम से जीवन मूल्यों के प्रति उचित अनुचित का आभास करा सके। साथ ही साथ शिक्षार्थी का सम्यक् रूप से मानसिक विकास करने में भी सक्षम हो। उपर्युक्त सभी गुणों से सम्पन्न केवल वही शिक्षक हो सकता है जो अच्छे व्यक्तित्व वाला, स्वस्थ, प्रसन्नचित्त, काम, क्रोध पर विजय रखने वाला, शिष्ट, मृदुभाषी, शुद्ध तथा स्पष्ट उच्चारण के साथ स्पष्ट व्यक्तित्व में निपुण हो। मधुर एवं निश्चल स्वभाव, सद्व्यवहार, सहानुभूतिपूर्ण, न्यायप्रिय आदर्श, दृढ़निश्चयी, परिश्रमशील, उदार तथा आत्मविश्वासी भी हो।

शिक्षक व शिक्षार्थी का सम्बन्ध ऐसा है जैसा कलाकार व उसकी कृति का। जिस प्रकार सब साधनों से परिपूर्ण होते हुये भी यदि कलाकार में कला कौशल व दिव्यात्मक क्षमता नहीं है तो उनकी कला कभी सार्थक सिद्ध नहीं हो सकती। इसी प्रकार यदि शिक्षक को समस्त विधियां व पाठ्य सामग्री उपलब्ध हो तो भी वह विशिष्ट मानवीय गुणों तथा अनुसंधनात्मक दृष्टिकोण के अभाव में योग्य अथवा सफल शिक्षक

नहीं बन सकता, वास्तव में ऐसा व्यक्ति शिक्षक होने का अधिकारी ही नहीं रहता। शिक्षक विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विकास का उत्तरदायी होता है, अतः उसको स्वयं अच्छे व्यक्तित्व वाला, आदर्शवादी, अनुशासनबद्ध, विद्यार्थियों की बौद्धिक व शारीरिक वृत्तियों एवं शक्तियों का पारखी, विद्यार्थियों में रूचि लेने वाला, समाज की आवश्यकताओं का ज्ञाता, वैज्ञानिक प्रगतिपूर्ण समय में नवीन प्रयोगों के प्रति सजग रहने वाला, विद्यार्थी को पुत्रतुल्य या सहोदर के समान स्नेह देने वाला तथा इसी प्रकार के अन्य गुणों से सम्पन्न होना अत्यन्त आवश्यक है। अध्यापक विद्यार्थियों का आध्यात्मिक एवं बौद्धिक पिता है। वह विद्यार्थियों को अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाता है और सभ्यता के दीपक को हमेशा प्रज्ज्वलित रखता है, वह विद्यार्थियों के शारीरिक बौद्धिक, भावात्मक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। वह विद्यार्थियों को मनुष्यत्व की ओर ले जाता है। अतः शिक्षक में व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण होने के साथ साथ कुछ अन्य गुण भी अपेक्षित रहते हैं।

(A) समान्य शैक्षणिक गुण (General Academic Qualities)

(i) विषय वस्तु में निपुणता (Mastery of the subject)

पर्याप्त सामान्य ज्ञान (Adequate Generla Knwledge)

ज्ञान की प्यास (Thrust for knowledge)

अभिव्यक्ति में प्रवाह (Fluency in Expression)

(B) व्यावसायिक कुशलता (Professional Efficiency)

(i) पर्याप्त व्यावसायिक प्रशिक्षण (सेवा पूर्व प्रशिक्षण) (Adequte Professional Training 'Preservice Training)

(ii) सेवा कालीन प्रशिक्षण (In service training)

(iii) शिक्षण अनुभव (Teaching Experience)

(iv) व्यवसाय के लिये प्रेम (Love for Profession)

(v) प्रगतिशील दृष्टिकोण (Pr0gressive Outlook)

(C) व्यक्तित्व के गुण (Personality Traits)

(i) वाह्य आकृति (External Appearance)

(ii) शारीरिक स्वास्थ्य (Physical health)

(iii) संवेगात्मक एवं मानसिक स्वास्थ्य (Emotional and mental health)

(vi) अच्छी बुद्धि (Good intellect) इससे सम्बन्धित गुण इस प्रकार हो सकते हैं–

(क) उच्चस्तरीय बुद्धिमता (High level of inteligence)

(ख) ईश्वर कल्पना शक्ति (Versatile imagination)

(ग) गम्भीर विवेक (Deep Understanding)

(घ) उत्सुक निरीक्षण (Keen observation)

(ड़) भेद ज्ञान की शक्ति (Power of Discrimination)

(च) मौलिक (Originality)

(छ) अच्छी स्मरण शक्ति (Good Memory)

(ज) दूरदर्शिता (Foresightedness)

(झ) साधन सम्पन्नता (Resourcefulness and alertness)

(त) व्यापक एवं विविध रूचियां (Broad and varied interest)

(v) उच्च चरित्र (High character)

(vi) बच्चों के लिये प्रेम (Love for children)

(vii) विनोदात्मक प्रवृत्ति (Sense of Huimour)

(viii) आशावादी दृष्टिकोण (Optimistic Outlook)

(ix) लोकतंत्रात्मक दृष्टिकोण (Democratic Outlook)

(x) न्याय और निष्पक्षता (Justice and Imarity)

(xi) सहानुभूति एवं विवेक (Sympathy and Wisdom)

(xii) समय पालन (Punctuality)

(xiii) आत्म विश्वास (Self Confidence)

(xiv) आत्म विश्लेषण (Self Analysis)

(xv) उत्साह व परिश्रम (Enthusiasm and Industriousness)

(xvi) मिलनसारता (Sociabity)

(D) विभिन्न दृष्टिकोणों से गुण (Qualities from different point of views)

(i) विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से (From the point of view of peooples)

(क) प्रसन्नचित्त प्रकृति विनोदात्मकता (Cheerful, happy, good natured jolly, sense of humour)

(ख) मानवता एवं मित्रता (Human and Friendly)

(ग) विद्यार्थियों को समझने में रूचि (interest in understanding peoples)

(घ) कार्य को रोचक बनाना (Making work interesting)

(ड़) आदर का पात्र बनना (Commanding respect)

(ii) अभिभावकों के दृष्टिकोण से (From the point of viewss of parentrs)

(iii) मुख्य अध्यापक या विभागाधयक्ष के दृष्टिकोण से (From the point of views of Head Master or Head of Deptt)

(vi) उच्च शिक्षा अधिकारियों के दृष्टिकोण से (From the point of views of Higher Educational Authority)

(v) शिक्षा शास्त्रियों के दृष्टिकोण से (From the point of views of Educationists)

इस प्रकार शिक्षक एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसका अनेक गुणों से सम्पन्न होना आवश्यक है। एक हस्तलिखित प्राचीन प्रति में गुरू की तुलना पक्षियों से करते हुए उसके गुणों का विश्लेषण किया गया है। जिस प्रकार किसी का रूप सुन्दर है तो वाणी नहीं, वाणी सुन्दर है तो

रूप नहीं अथवा वाणी तथा रूप सुन्दर न होते हुये भी क्रिया अच्छी है, क्रिया व उपदेश सुन्दर होते हुये भी साधुवेष नहीं है, साधुवेष तथा क्रिया होते हुये भी उपदेश नहीं है अथवा अनाधिकारी होने के कारण उसे अपने गुरू के उपदेश करने की आज्ञा नहीं मिली है, बुद्धिमान, शुचिहार, उत्तमक्रिया, मधुरवचन, उपदेश आदि से युक्त गुरू के अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। इस हस्तलिखित प्रति के सन्दर्भ से यह स्पष्ट हो जाता है कि हर युग में सभी आदर्श शिक्षक रहे हों यह आवश्यक नहीं हैं, परन्तु आदर्श शिक्षक की वांछनीयता सदा ही बनी रही है इसलिये शिक्षक के उपर्युक्त रूपों के तुलनात्मक विश्लेषण की आवश्यकता सम्भवतः लेखक को अनुभव हुई होगी।

शैक्षणिक प्रक्रिया में शिक्षार्थी का भी मेघासम्पन्न होना आवश्यक है। उसमें उत्कृष्ट जिज्ञासा से भी अधिक गुरूभक्ति व गुरूनिष्ठा का होना अनिवार्य है।

ब्रह्मचर्य, संध्योपासन, अग्निहोम व गुरू शुश्रुषा से प्राप्त हुई विद्या सहस्त्रगुणा उत्कृष्ट कहलाती है। 'छात्र' शब्द से ही गुरु के दोषों को छिपाने का स्वभाव वाला होने का परिचय देता है। श्रदालु शिष्य और वत्सलआचार्य के तप से ही ज्ञान की रश्मियां न केवल बौद्धिक अन्धकार को दूर करती हैं बल्कि अपनी शीतलता से गुरू व शिष्य के बीच मधुर सम्बन्ध भी निर्मित करती हैं तभी गुरू अपने शिष्यों को कर्तव्यपालन का कठोर आदेश दे पाने में समर्थ होता है। मनुस्मृति में कहा गया है–

आचार्यपुत्रः शूश्रुषुज्ञनिदो धार्मिकः शुचिः।

आप्तः शक्तोअर्थद्धः साधुः स्वोध्यात्याअदश धर्मतः॥

अर्थात् आचार्य के पुत्र, सेवा करने वाले, अन्य विद्या कला सिखाने वाले, धार्मिक, पवित्र रहने वाले, बांधव, उपदेश धारण करने में समर्थ, धन देने वाले, साधु व स्वजन इन दस प्रकार के व्यक्तियों को धर्मतः पढ़ाना व शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

विद्या प्रकारों के अन्तर्गत प्रमुख रूप से आन्वीक्षकी, त्रयी वार्ता व दण्डनीति यह चार प्रकार माने गये है। आगे चल कर इन्हें ही 14

भागों में विभक्त किया गया जिनमें पुराण, न्याय मीमांसा, धर्मशास्त्र वेद शिक्षाकल्प, निरूक्त, छन्द ज्योतिष आदि समाविष्ट थे। इन सभी विद्याओं का गम्भीर ज्ञान तथा 64 कलाओं का पूर्णज्ञान प्राप्त करने से ही शिक्षा को पूर्ण माना जाता है। भर्तृहरि ने कहा भी है-

साहित्य संगीत कला विहीनः। साक्षात पशुपुच्छविषाणहीनः॥

पतंजलि के अनुसार विद्या की परिपक्वता के लिये विद्यार्थी को चार अवस्थायें पार करनी होती हैं। आगम, स्वाध्याय, प्रवचन तथा व्यवहार आश्रम अथवा विद्यार्जन स्वास्ध्याय अथवा पाठ्य वस्तु का निरन्तर अभ्यास, प्रवचन अर्थात् अध्यापन तथा व्यवहार अर्जित विद्या को अपने व्यवहार में प्रकाशित करना। कौटिल्य के अनुसार विद्या मानव जीवन को अनुशासित करती है। यदि विद्या ग्रहण करने वाला सत्पात्र है- क्रिया ही द्रव्य विनयति नाद्रव्यम् भरतकुल 'नाट्य शास्त्र' में भी वर्णित सर्दशिष्यों के गुणों को सम्मिलित करते हुये सम्यक रूप से शिक्षा ग्रहण करने के लिये गुरु सुश्रुषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, विवेचन, बौद्धिक परिपक्वता, उर्वर कल्पना, स्मृति गुण श्लाघा, राग अथवा अभिरूचि, संघर्ष आदि करता है तथा तत्व प्राप्ति के लिये अभिनिवेश आदि को स्वाभाविक सत्य माना गया है।

अतः उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षक व विद्यार्थी अथवा गुरू व शिष्य के लिये शास्त्रों में निर्दिष्ट गुणों, कर्तव्यों तथा आदर्शों से युक्त होने पर ही अपने वास्तविक कार्य में विद्या आदान-प्रदान के रूप में सार्थक सिद्ध होती है।

माता-पिता के पश्चात् गुरु की मान्यता को वेद, उपनिषद् तथा परवर्ती साहित्य में एक मत से स्वीकार किया गया है। गुरू के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त करने के लिये तथा उनका गुणगान करने के लिये 'गुरूपूर्णिमा' 'व्यास पूजा' आदि विभिन्न नाम देकर विशेष दिवस भी निर्धारित किये गए हैं। गुरू पूजा की यह प्रथा केवल भारत तक ही सीमित नहीं है, अपितु भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित थाईलैण्ड, मॉरिशस जैसे देशों में भी इसका प्रचलन है।

गुरु

गुरू शब्द 'गु' का अर्थ अंधकार तथा 'रू' का अर्थ है रोकने वाला। अन्धकार को रोकने अर्थात दूर करने से ही गुरू शब्द निर्मित हुआ है।

'अद्धयतारकोपनिषद्' में गुरू शब्द के अर्थ को इस प्रकार व्यक्त किया गया है- वेदादि से सम्पन्न आचार्य, विष्णु भक्त, मत्सरतारहित योग्य ज्ञाता, योग निष्ठा वाला, योगात्मा, पवित्र, गुरूभक्त, परमात्मा में विशेष रूप से लीन इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति ही गुरू कहा जाता है अर्थात गुरू शब्द में सर्वगुण संपन्नता व्याप्त है। गुरू में गुरूता, महत्व, पवित्र आत्मा, असाधारण योग्यता सभी कुछ दृष्टव्य होता है। 'कादम्बरी' में गुरू के गुणों का वर्णन किया गया है। ऋषि जाबालि के गुणों का उल्लेख इस प्रकार किया है ''यह मुनि तेजों में अग्रणी, करूण रस का प्रवाह, संसार रूपी समुद्र से पार जाने के लिये कुल्हाड़ी, संतोष का सागर, सिद्धि मार्ग में शिक्षक, अशुभ ग्रहों को शांतकर्ता, प्रजा का चक्र, धर्म की ध्वजा, असाक्ति रूपी पल्लवों के लिये दावाल, क्रोध रहित, नरक द्वारों के बंधन, शक्ति के आश्रय अभियान रहित तथा सुखों से परागमुख है।'' मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र हो उसमें स्वामित्व प्राप्त करने के लिये किसी ऐसे व्यक्ति की खोज करनी पड़ती है जो इस क्षेत्र में पूर्ण ज्ञान रखता हो। यह पूर्ण ज्ञानी केवल गुरू होता है। गुरू ही साधारण व्यक्तियों को अज्ञानान्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है।

शिष्य

'शिष्यस्तेअहं शधिा मां त्वां प्रपन्नम्।'

अर्थात मैं आपका शिष्य हूं अतः आपकी शरण में आए हुए मुझको शिक्षा दीजिए। वास्तव में जो पूर्णतया गुरू की शरण में समर्पित हो जाए वह शिष्य है। 'सत्यार्थ-प्रकाश' में शिष्य वही है जो सत्य, शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धार्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा रखने वाला तथा आचार्य का प्रिय होता है।

''भारतीय ज्ञान साधना के क्षेत्र में ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान और शब्द का महत्वपूर्ण स्थान है। ज्ञाता होता है- गुरू एवं शिष्य, ज्ञेय ब्रह्म तथा ज्ञान

को प्राप्त कराने का साधन है। स्वामी दयानन्द भी दार्शनिक थे उनका मत है कि ज्ञाता के अतिरिक्त ज्ञेय का ही प्रथम अस्तित्व है अन्यथा ज्ञान किसका? गुरू का ज्ञान बिना शिष्य के अस्तित्व के सुरक्षित तथा हस्तान्तरित नहीं हो सकता अर्थात गुरू शब्द के साथ-साथ शिष्य स्वतः ही आ जाता है।

गुरू-शिष्य सम्बन्ध

वैदिक ग्रन्थों, महाकाव्यों, नाटकों, नीतिकाव्यों तथा हमारे साहित्य आदि में गुरू शिष्य परम्परा का उल्लेख मिलता है। संस्कृत के शब्दकोष कल्पद्रुम के द्वारा शिष्य की उत्पत्ति इस प्रकार की गयी है। शास् क्यप्। शास् शब्द क्यप् प्रत्यय मिलकर शिष्य शब्द की उत्पत्ति मानी गयी है। शास् शब्द का अर्थ होता है शासन करना, आज्ञा देना, आशीर्वाद देना, उपदेश देना, समादिष्ट करना आदि। उपरोक्त सभी प्रक्रियाएं गुरू द्वारा शिष्य के प्रति की जाती हैं। हमारी भारतीय वैदिक संस्कृति के अनुसार गुरू पिता/माता तुल्य तथा शिष्य पुत्र/पुत्री तुल्य व्यवहार करता है।

गुरू-शिष्य सम्बन्ध-आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

आज की आधुनिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में यदि हम गुरू-शिष्य सम्बन्धों का विश्लेषण करें तो इसकी छवि कुछ विकृत दिखाई देती है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आकर आधुनिक बनने की होड़ में युवा वर्ग अपने गुरूजनों तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति की आज्ञा का उल्लंघन और उनकी उपेक्षा करने में गौरव का अनुभव करते हैं। युवा वर्ग में जो निराशा, भग्नाशा, अवहेलना, कर्तव्य की उपेक्षा, अहंकार आदि दृष्टिगोचर होते हैं वास्तव में ये सभी अवगुण हमारी भारतीय संस्कृति के अनुरूप कदापि नहीं हैं। अन्य देशों की संस्कृतियों के मिश्रण से, विदेशों में कुछ काल रहने तथा पुनः अपने देश लौटने से लोकतंत्रीय भारत में स्वाधीनता का अर्थ ठीक न समझने से तथा प्रत्येक संस्थान, संस्था और व्यक्ति में राजनीति का प्रवेश हो जाने से आज भारतीय युवा वर्ग किंकर्तव्यविमूढ़-सा बन गया है। वह पथभ्रष्ट होकर ज्ञान शून्य, निर्देशन रहित तथा अंधकार में विलीन हो रहा है। प्रत्येक शिष्य में प्रेम, त्याग, सेवा, अहंकार शून्यता आदि गुणों का होना आवश्यक है जो आज के शिष्य में नहीं है।

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक भी अपने कर्तव्य से विमुख होते दिखते हैं। वह भी कई बार अपने को इस आधुनिक समाज की भागती जिंदगी का एक हिस्सा बनाने में लगे हैं। आज का शिक्षक अत्याधुनिक जीवन शैली में कदम से कदम मिलाकर चलने की आपाधापी में वह भी किसी हद तक किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया है। कई बार समाचार पत्रों तथा मीडिया द्वारा सुनने को मिलता है कि कई बार शिष्यों द्वारा तथा कई बार शिक्षकों द्वारा अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों का हनन किया गया। इस पर हम सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि हमारी आज की शिक्षा व्यवस्था में गुरू-शिष्य सम्बन्धों में परिवर्तन क्यों आ रहे हैं। इसके लिये हमें गुरू तथा शिष्य दोनों की समस्याओं, मानसिक मनोदशाओं का अध्ययन करना जरूरी हो जाता है। आधुनिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में गुरू शिक्षा सम्बन्धों के ज्वलंतशील विषय के रूप में सामने आने लगा है। इसके विषय में हमको थोड़ा संवेदनशील होने की आवश्यकता है।

सुझाव

संत वाणी संग्रह में गुरू शिष्य सम्बन्धों को इस प्रकार दर्शाया गया है- 'प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी सहारे की आवश्यकता पड़ती है। वह किसी अनुभवयुक्त ज्ञानी व्यक्ति की अंगुली पकड़ कर अपना मार्ग तय करना चाहता है। इस संचार में सर्प को दूध पिलाने वाले तो बहुत हैं लेकिन उसके विष को स्वयं दूर करने वाले अति अल्प ही दिखाई देते हैं। वह सिर्फ गुरू ही होता है।

आज की अति आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में यदि हम गुरू-शिष्य सम्बन्धों में सुधार चाहते हैं तो हमें निम्न पहलुओं की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करना होगा। हमें गुरू तथा शिष्य दोनों की मनोदशाओं का अध्ययन करना होगा।

छात्रों से सम्बन्धित

छात्रों की समस्याओं से सम्बन्धित प्रत्येक विद्यालय से उचित 'निर्देशन एवं परामर्श' प्रोग्राम रखा जाए ताकि उनकी कुछ संवेगात्मक या सामाजिक या पारिवारिक समस्याओं को समझकर हल करने की

कोशिश की जाए।

– माता-पिता तथा शिक्षकों को एक माह में कम से कम एक या दो बार बच्चे से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार-विमर्श करना चाहिये जिससे बालक की शैक्षिक, संवेगात्मक, पारिवारिक या व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान हो सके।

– माता-पिता द्वारा बच्चों पर अपनी अति महत्वाकांक्षाओं का बोझ लादना भी बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य तथा उनके अनुशासन को प्रभावित करता है। कभी-कभी बच्चा इस महत्वाकांक्षा में दब जाता है तथा उद्दंड हो जाता है। इसके लिये समय-समय पर ऐसे सेमिनारों का आयोजन किया जाए जिसमें माता-पिता तथा शिक्षक समान रूप से भाग ले सकें।

– कक्षाओं में वैयक्तिक भेदों का ध्यान रख कर शैक्षिक व्यवस्था की जानी चाहिए।

शिक्षक के सम्बन्ध में

– दास एम.जे. (1989) ने शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य पर काम किया-कि शिक्षकों पर काफी काम का बोझ था तथा उनके अपने अधिकारियों के साथ सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। उन्होंने सुझाव दिया कि शिक्षकों की काम में खुशी तथा पुरस्कार उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये अति आवश्यक है।

– अध्यापकों को विशेष योग्यतायुक्त होने के लिये प्रशिक्षित होना चाहिये इसके लिये उन्हें अनेक पूर्वाग्रहों से मुक्त होना पड़ेगा और स्वतंत्र चिंतन करना होगा। छात्रों को मान्य मन से विपरीत मत प्रकट करने की छूट देना। अध्यापक का कर्तव्य है, किन्तु चंद अध्यापक ही ऐसा करते हैं। फल यह होता है कि छात्रों में स्वतंत्र मत रखने और शोध की प्रवृत्ति जाग्रत होने के बजाय केवल पुराणपंथीपन ही आ पाता है।

– शिक्षा प्रशासन में अध्यापक की भूमिका की उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। शिक्षा तंत्र इसीलिये आयोजित है ताकि छात्र-अध्ययन कर सकें और अध्ययन-अध्यापन में कुशल शिक्षक का बड़ा महत्व है परन्तु

भारी भरकम शिक्षा तंत्र की यह बहुत बड़ी कमी है कि उसके अधिाकतर शिक्षा-प्रशासक अध्यापक नहीं होते अत: उन्हें बालकों के अध्यापन का अनुभव नहीं होता। शिक्षकों की आर्थिक समस्याओं पर सरकार द्वारा विशेष ध्यान दिया जाए जिससे वे मुक्त रूप से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें।

– वर्तमान में शिक्षकों को कक्षा में हर दृष्टि से सजग रहने की एवं प्रबुद्ध और जानकारी में विशेषज्ञ के रूप में अपने को प्रस्तुत करने की सामर्थ्य अपने अन्दर पैदा करनी होगी। इस सामर्थ्य के कारण ही वह एक विश्वसनीय संदर्भदाता, मार्गदर्शक और परामर्शी की भूमिका निर्वहन कर सकते हैं।

– शिक्षक को छात्रों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिये।

– शिक्षक हेतु मानसिक दशा तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिये समय-समय पर शैक्षिक प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा सेमिनारों की व्यवस्था की जाए जिसमें शिक्षक उन्हें समस्याओं के बारे में अवगत करा सकें तथा इन समस्याओं के समाधान की व्यवस्था की जानी चाहिए।

– उपरोक्त सभी सुझावों के साथ हमें नैतिक शिक्षा को विशेष महत्व देना होगा। समय पर ऐसी नैतिक शिक्षा से सम्बन्धित सेमिनारों का आयोजन किया जाए जिसमें छात्र शिक्षक तथा विशेषज्ञ सम्मिलित हों जिससे गुरु-शिष्य सम्बन्धों में सुधार हो सके।

– यदि हम गुरू शिष्य सम्बन्धों में प्यार तथा सम्मान का भाव चाहते हैं तो हमें नैतिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना होगा जिससे हमारा युवा वर्ग आगे चलकर हमारे देश के लिये गौरव की मिसाल बन सके।

– वर्टण्ड रसेल के अनुसार- 'शिक्षक को राष्ट्र तथा चर्च की अपेक्षा अपने शिष्य के प्रति प्रेम होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो वह आदर्श शिक्षक नहीं है।

कबीर जब हम गावत तब जाना गुरू नाहिं।
अब गुरू दिल से देखिया, गावन को कछु नाहिं।।

गुरुकुल की सार्वकालिकता

श्यामबिहारी चौधरी
शोध छात्र, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

ऋषि महर्षियों की परम पवित्र तप स्थली भारत-भूमि पर सदैव संत-महात्माओं महायोगियों, धर्माचार्यों, महापुरुषों का अवतरण होता रहा है। इन महापुरुषों को महान् गुणों से सम्पृक्त करने में हमारी शुचिता सम्पन्न धरित्री के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उर्वरता का विशिष्ट योगदान रहा है। इन महापुरुषों की प्रेरणा व ज्योत्स्ना से भारतीय संस्कृति में मूल संस्कारों से सम्पन्न ब्रह्मचर्यव्रती स्नातक शिष्यों ने महामानव होने की प्रतिष्ठा प्राप्त की तथा अपनी आत्म-ज्ञान की ज्योति (द्युति) से विश्व के सम्पूर्ण जीव-जगत् को द्योतित किया। भारत के सुनहरे भविष्य के महापौरुष्ययुक्त कर्णधार हमारी शिष्टवाटिका के नवोदित कोमल-कुसुम तरुणों के कंधों पर ही गुरुकुलीय निर्दिष्ट धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा साहस, शौर्य एवं पराक्रम से परिपूर्ण अतीत के अमूल्य वैभव की सुरक्षा तथा तदनुरुप आचरण का गम्भीर एवं चुनौतीपूर्ण दायित्व है। जो कि गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था में सहजता एवं स्निग्धता के साथ ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रभृति समस्त विषयों के ज्ञान बालकों और नवयुवकों में गुरु के शुद्धान्त:करण से आशीर्वादात्मक ध्वनि के रूप में सम्प्रेषित होता था, जिससे वे बड़े होकर राष्ट्रहित के गम्भीर उत्तरदायित्व को वहन कर सके। जिसे विद्वानलोग, एवं शिक्षाविशारद सर्वागीण विकास कहकर उद्देश्य के रूप में चिह्नित किया करते है, वही विकास गुरुकुल में निवास करते हुए अनुशासनपूर्वक विद्यार्जन करने वाले प्रत्येक शिष्यों व अन्तेवासी की जीवनचर्या में मूर्त एवं अमूर्त रूप से चरितार्थ होता हुआ प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता था। इस परम-पावन भारतवर्ष को जब कभी भी विद्वानलोग विश्वगुरुत्व की पदवी से अलंकृत व विभूषित करने के लिए

समुत्सुक होते है उसी क्षण उसके नेत्र के सामने एक प्रकाशपुंज स्तम्भ या गुरुकुल की कभी भी नष्ट न होने वाली दिव्य ज्योत्स्ना दिखाई पड़ती है। जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने वाले भारत के ही नहीं अपितु विदेशी विचारों ने भी गुरूकुल की उच्चस्तरीय शिक्षा तथा दर्शन तथा विज्ञान की समृद्ध परम्परा की भरपूर प्रशंसा की है डॉ एफ. डब्ल्यू. थामस ने अपनी पुस्तक The history and Prospect of British Education in India में इस प्रकार लिखा है "भारत में शिक्षा कोई नई बात नहीं है। संसार का कोई भी देश ऐसा नही है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन काल से आरम्भ हुआ हो, अथवा जिसने इतना स्थायी और शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो।"

गुरू के स्वभाव, आदर्श, उद्देश्य, दृष्टिकोण का अनुमान व निर्धारण शिष्य में उपस्थित लक्षणों व गुणों के द्वारा भी हो पाता था।

यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः

स व यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते ।।

साथ ही साथ श्रीमद् भगवद्गीता से उपदिष्ट श्रीकृष्ण के वचनानुसार "सङ्गत सञ्जायते काम : कामात् क्रोधोऽभिजायते" अर्थात्-शिष्य तो अधिकाधिक गुरू के निकट में रहेगा तो उनमें स्थित गुण व दोष सरलता पूर्वक संक्रमित- सम्प्रेषित होगा अतएव गुरू की भी अपेक्षित योग्यता द्रष्टव्य है।

1. संयमी हो।
2. ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने वाला हो।
3. विविध विषयों के ज्ञाता हो। (Interdeciplinary approach)
4. कठोरता से अनुशासन का पालन करने वाला हो।
5. शिष्यों को दुर्गुणों से दूर रखे।
6. शिष्यों को पापों से बचाए।
7. शिष्यों के दोषों को नष्ट करने वाला हो।
8. शिष्यों को शान्ति प्रदान करने वाला हो।

9. शिष्यों की बुद्धिबढाने की क्षमता रखता हो।
   (बुद्धिविकासे उपासनाप्रविधेः प्रभावस्याध्ययनम्)
10. शिष्यों को निरोगता प्रदान करने वाला हो।
11. शिष्यों के लिए भोजन, जलपान आदि की व्यवस्था में सक्षम हो।
12. गुरू में बुद्धि का भंडार हो।
13. अन्तर्ज्योति जागृत रहे रवीन्द्र नाथ टैगोर ने भी कहा है– "अप्रदीपो भव"
14. विवेकशील हो।
15. भाषा पर अधिकार हो।
16. सदाचारी हो।
17. मननशील हो।
18. विचारक हो।
19. सदा जागरूक रहे।
20. वैज्ञानिक चिन्तन रखता हो।
21. दूरदर्शी हो।
22. प्रसन्नचित रहने वाला हो।
23. अभिमान रहित हो।
24. विविध विषयों का ज्ञाता हो।
25. विषय को मधुर बनाने वाला हो।
26. शिष्य को पुत्रवत-समझे।
27. तत्वदर्शी हो।
28. परम्पराओं की रक्षा करने वाला हो।
29. छात्रों की जिज्ञासा शान्त करनेवाला हो।
30. छात्रों के प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर देने वाला हो।

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने कहा है-"गुरूकुल शिक्षा प्रणाली का ब्रह्मचर्य प्राण, धर्मिकता शरीर एवं राष्ट्रियता सौन्दर्य है।[2] अतएव शिष्यों का शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास सम्यक, रूप से हो जाता था।

छान्दोग्योपनिषद में सनत्कुमार कहते है- गुरूकुल या गुरू का सामीप्य शरीर, मन, और आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिये है।[3]

अपि ब्रह्मन्- गुरूकुलाद् भवता लब्धक्षिणात्
समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ।।28।।
कञ्चिद् गुरूकुले वासं ब्रह्मन् स्मरसि नौ यतः
द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमस : पारमश्नुते ।।31।।
अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन- वृत्तं निवसतां गुरौ
गुरूदारैश्वोदितानामिन्धनानयने क्वचित् ।।35।।
अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुखिता:
आत्मा वै प्राणिनां श्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्परा: ।।40।।
कथयाञ्चक्रतुर्गाथा: पूर्वा गुरूकुले सतो:
आत्मनो ललिता राजन् करौ गृह्य परस्परम् ।।27।।
(श्रीमद् भा.-10/80)

तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठा: सत्या : सनतु मनोरथा:
छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ।।42।।

मॉडल का रूप व आकृति जिस रूप में हो मैं वहाँ de-limitation नही पसंद करता, परञ्च अर्यावर्त्त के भाग्योदय व नि:श्रेयस् की प्राप्ति गुरूकुल में उद्दीप्त दीपक के संयोग व सन्निधान से ही संभव है सार्वदेशिक व सर्विकालिक दृष्ट्या

।। जयतु गुरूकुलम् ।। जयतु तस्य नैसगिकी विधि: ।।

।। जयतु तस्य साफल्यमाकलनम् ।। जयतु सर्वदामूल्याङ्कनम् (तस्य अमूर्तस्वरूपम)

वैश्विक विचारसम्पदा कोड

भारतीय मनीषा का ही देन है- वंशो द्विध 1. विद्यया 2. जन्मना वा यथा अष्टाध्यारयामपि महर्षिपाणिनिना प्रतिपादितमस्ति

-विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ[1]

-ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य:[2]

-सा विद्या या विमुक्तये

-आर्यावर्त्त (मनुस्मृति द्वितीय सर्ग)

-"पुराकल्प एतदासीत- संस्कारोतरकालं ब्राह्मणा: व्याकरणम धीते स्माधीयते, तेभ्यस्तत्र स्थानकरणनादुनुप्रदानज्ञेभ्यो वैदिका: शब्दा: उपदिश्यन्ते, तदद्यत्वे न तथा वेदमधीत्य त्वरिता वक्तारो भवन्ति[4]

गुरू सङ्कल्पी भवति स्म

पारायणविधि अप्रदीपो भव (रवीन्द्रनाथटैगोर विश्वभारती)

कक्षानायकी महर्षि अरविन्द (Avrobindo) भवानी भारती

शिष्यसम्पदा ऐतिहासिक शोध (Historical research)

सदसद्विवेक Random Sampling.

सारासार यदृच्छा पूर्वक आजीविका

नीर-क्षीर विवेक (न्याय) आर्यजाति (आर्यपुत्र)

हंसीय स्वभाव (Habit's) व्याख्यानेन चिन्तनशक्तेर्विकासो

सर्वात्मनोन्नायिका शिक्षा स्वस्थ प्रतिस्पर्ध शलाका पटीक्षा क्रियतेस्म।

वेद-अङ्गी, व्याकरण, निरुक्त, कल्प .... अेङ्क

बेद की सुरक्षा एवं संरक्षण के शाश्वत उपाय के रूप में कण्ठस्थीकरण

10. 80. 22 (श्रीमद्भा.)- छन्दांस्ययातयामानि

सदा-सर्वदा मूल्काङ्कनम् प्रहरी

. formative

. summative

. continuous and comprehensive evaluation

आर्यावर्त प्रचक्षते (मनुस्मृति, द्वितीयसर्ग)

गुरू सन्तुष्टि ही (सत्रीयकार्य, डीग्री, certificate) 10. 80.22

गुरू का आदेशात्मक वचन (विनयर्या के रूप में यावन्तं ह वै इमां पृथिवीं वित्तेने पूर्णां ददल्लोकं जयति जिभिस्तावन्त जयान्ति।)

भूयांसं च अक्षय्यं च य एवं विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते।

तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्यं

गुरूकुलीयाशीर्वचांसि– वैश्विकपरिप्रेक्ष्य में आर्यावर्त्तीय

ऊँ आब्रहन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषण्योऽतिव्याधी महारथो जायतां धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः परन्ध्रिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे न पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधः पच्चताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्। मन्त्रार्थाः सिद्धयः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः।

शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तन।

Greatest dramatist (As a Scientist)

मैक्समूलर ने इंडियन सिविल सर्विस (I.C.S) के परीक्षार्थियों के लिए एक उपयोगी पुस्तक भारत में हम सीखें (India : what can teach us)' भी लिखी। पुनः मैकडोनल ने इसी धारा में इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए नयी पुस्तक भारत का अतीत (Indias Past) के नाम से लिखी जिसमें भारत के भूतकालीन गौरव का विश्लेषण है। इसी क्रम में नवीनतम ग्रन्थ ए. एल. बैशम के द्वारा लिखित (The Glory that was India) भारत का अतीत गौरव है जो गुरूकुलीय इतिहास का सुन्दर मूल्यांकन है।

संदर्भ

ऋरवेद- 1.691., 32 95, 7,76.4, 8.3.3, 9.8.7/3 9.97.37, 9.10.7, 10. 56.1, 10.139.7, 10.177.1

1. गुरूकुल शिक्षाया ब्रह्मचर्य प्राणभूतम-, धार्मिकता तस्या: शरीरम- राष्ट्रियता च तस्या : सौन्दर्यम-
2. छान्दोग्योपनिषद्
3. 2.1.19 अतराध्यायी सूत्रानुक्रमणिका
4. 6.3.2 (तत्रैव)
5. महाभात्यम् (प्रथमा ह्विकम्)
6. तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठा: द्विजश्रेष्ठा:
   गुरू का आदेशात्मक वचन (दिनचर्या के रूप में यावन्तं ह वै इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णा ददल्लोकं, जयति, त्रिभिस्तावन्त जयन्ति।
7. साधकतमं करणम् (114/42)
8. मिक्सचर भाषाणां प्रयोग: (Disqualification) खण्डनपसमुपस्थापयामि
9. अपराध और मिडिया की भूमिका
   sunb them मिडिया की भूमिका

अध्यापक शिक्षा एवं आदर्श शिक्षक

श्री मनोज कुमार मीणा
सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

आदर्श शिक्षक अपने विषय तथा सामान्य रूप से शिक्षाको के प्रति उत्साह रखता है। वह स्थानीय समुदाय, उसके इतिहास, साधनों तथा आवश्यकताओं को समझता है। वह इस बात की भी समझदारी रखता है कि युवक की शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है जो विद्‌यालय तथा उसके बाहर समुदाय में चलती रहती है। वह सर्वप्रथम एक शिक्षक या गुरू है और इसके बाद दार्शनिक पथ-प्रदर्शक, सहयोगी तथा मित्र है। शिक्षक होने के नाते वह अपने छात्रों तथा उनके अभिभावकों का आदर एवं विश्वास प्राप्त करता है। वह अपने व्यक्तिगत उदाहरण तथा प्रभाव से उद्यम, ईमानदारी, धैर्य, शुद्धता, तत्परता एवं सहयोग का विकास करता है। वह पाठ्‌यक्रम सम्बन्धी सामग्री के चयन में अपने दायित्व को समझता है। साथ ही वह अपने व्यवसाय के कार्यों को सरलतापूर्वक करने के लिए शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों का ज्ञान रखता है। इसके अतिरिक्त वह अपने छात्रों की अच्छी नागरिकता के विकास के लिए कार्य करता है। एक दार्शनिक के रूप में वह जीवन के प्रति सुखद एवं सकारात्मक दृष्टिकोण रखता है। इस दृष्टिकोण से उसमें धैर्य एवं सहिष्णुता नामक गुणों का होना आवश्यक है। न्यूयार्क में शिक्षा विभाग ने शिक्षक के गुणों को निम्न प्रकार से दिया है-

T - Thoughtfulness (विवेक)

R - Reliability (विश्वसनीयता)

A - Ability in Leadership (नेतृत्व की समीक्षा)

I - Integrity (सच्चाई या निष्कपटता)

T - Tact (चातुर्य)

S - Sense of humour (विनोद-प्रियता)

O - Objectivity (वस्तुनिष्ठता)

F - Fluency (वाकपटुता)

A - Ability to do correctable college work (कॉलेज कार्य को उत्तम ढंग से करने की क्षमता)।

G - Gregariousness (सामूहिकता)

O - Open-Mindedness (नवविचार-ग्राह्यता)

O - Origenality (मौलिकता)

D - Discernment (दूरदर्शिता)

T - Tidiness (सुथरापन)

E - Enthusiasm (उत्साह)

A - Adaptability (अनुकूलन शीलता)

C - Co-operativeness (सहकारिता)

H - Health (स्वास्थ्य)

E - Efficiency (कुशलता)

R - Resourcefulness (साधन-सम्पन्नता)

शिक्षक के कुछ गुणों का कुछ प्रमुख शीर्षकों के अन्तर्गत नीचे वर्णन किया जा रहा है-

1. विषय तथा शिक्षण-व्यवसाय में निष्ठा (Faith in subject and vocation)—आधुनिक शिक्षक को अपने विषय तथा कर्तव्य के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। अतः शिक्षक को अपने विषय में प्रवीण होना चाहिए। शिक्षण व्यवसाय को अपने जीवन का परम लक्ष्य मानते हुए उनकी प्राप्ति में तत्पर रहना चाहिए।

2. विषय का ज्ञान (Knowledge of subject)—वर्तमान समय में शिक्षक को अपने विषय के साथ-साथ सह-विषय का भी ज्ञान ऐतिहासिक व वर्तमानकालिक दोनों दृष्टिकोण से होना चाहिए। वही शिक्षक सफल हो पाता है जो अपने विषय के प्रति सतत अध्यापन रत एवं जिज्ञासु रहता है।

3. तत्कालीन घटनाओं का ज्ञान (Knowledge of Current Event)–उन्हें। (आदर्श शिक्षक) को सिर्फ अपने विषय का ज्ञान होना ही काफी नही है। उन्हें अपने विषय से वर्तमान परिदृश्य से घट रही घटनाओं के प्रति भी सचेष्ट रहना चाहिए तथा छात्रों को सम्बोधित करते समय उसे सम्बंधित करते हुए शिक्षण करना चाहिए।

4. उदार दृष्टिकोण (Liberal qutlook)–एक अच्छे शिक्षक को उदार होना चाहिए। इसके लिए उन्हें अपना आदर्श प्रस्तुत करने में उदारता, निष्पक्षता, तारर्किकता, बन्धुत्व, सच्चाई, सहकारिता आदि गुणों से पूर्ण दृष्टिकोण को छात्रों के समक्ष एकरूप में प्रस्तुत करना चाहिए।

5. शिक्षक का व्यक्तित्व (Personality of the teacher)–शिक्षक का व्यक्तित्व कथनी व करनी में एक रूपता वाली होना चाहिए। आन्तरिक एवं बाह्य दोनों गुणों में समन्वय होना चाहिए। प्रशासकीय गुणों से युक्त होना चाहिए।

6. सामाजिक सक्रियता (Social Activeness)–शिक्षक समाज का पथप्रदर्शक होता है। अत: शिक्षक को सामाजिक घटनाओं के प्रति सचेत व सक्रिय होना चाहिए जिससे कि समाज में वर्तमान परिस्थिति में होने वाले बदलाव में समन्वय स्थापित करने में भूमिका निभा सकें।

7. आदर्श शिक्षक को शिक्षण का ज्ञान (Knowledge of teaching for a good teacher)–एक आदर्श अध्यापक को शिक्षण के प्राचीनतम से आधुनिकतम कौशलों, तकनीकियों, बारीकियों एवं छात्रों व परिस्थितियों का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए।

इन उपर्युक्त बातों में प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात शिक्षक को समय-समय पर अभिनवन पाठ्यक्रम (Refresher courses)–प्रदान किये जाने चाहिए, जिससे वह अपने प्रशिक्षण की बातों को भूल न सके तथा नवीन विधियों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। आदर्श शिक्षक को अपने में उपर्युक्त गुणों को उत्पन्न करना चाहिए। अन्त में हम कह सकते हैं कि उनमें सत्य के अनुसन्धान के लिए उत्साह तथा साहस होना चाहिए और समाज के सदस्यों एवं उनके कार्यो के लिए भी अटूट श्रद्धा होगी तभी वह सफल शिक्षक बन सकेगा।

भाषा शिक्षण में नवाचारिक अभ्यास

कन्हैया चौधरी

एम. एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

भाषा शिक्षण को समझने से पहले हमें भाषा को जानना चाहिए। भाषा सम्प्रेषण का एक सरल, सुगम व सर्वोत्कृष्ट साधन है भाषा द्वारा मानव अपनी अभिव्यक्ति को दूसरों के सामने सरलता से प्रकट करता है। यदि देखा जाए तो भाषा मानव के लिये एक वरदान स्वरूप ही है, क्योंकि यदि हम देखें तो प्रकृति के सभी जीवों में एक मात्र मानव ही ऐसा जीव है जिसके पास यह भाषा रूपी वरदान है। यदि देखा जाए तो सभी जीवों की आत्माभिव्यक्ति होती है और वह अपनी अभिव्यक्ति को ध्वनि संकेतों व हाव-भाव द्वारा प्रकट करते हैं। किन्तु मानव के अलावा अन्य किसी भी जीव में भाषा रूपी साधन की सुगमता नहीं है और यदि मानव के पास भी भाषा रूपी यह साधन नहीं होता तो मानव भी एकमात्र पशु की भांति ही होता। ऐसा मेरा मानना है कि-

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
भाषा हि तेषामधिको विशेषो भाषाविहीनः पशुभिः समानः॥

अर्थात् भोजन करना, सोना, डरना व कामप्रवृत्ति मानव और पशुओं में समान रूप से होती है किन्तु एकमात्र भाषा ही है जिस पर मानव का पूर्ण अधिकार है और वही मानव को अन्य पशुओं से भिन्न करती है।

भाषाशिक्षण

भाषा शिक्षण में भाषाओं को शुद्ध व स्पष्ट रूप से सिखाया जाता है भाषा के शुद्ध व परिष्कृत रूप को समझने व प्रयोग में लाने के लिये भाषा शिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। साथ ही इसकी आवश्यकता भिन्न-भिन्न भाषाओं का ज्ञान ग्रहण करने के लिये भी होती है। भाषा

एक ऐसा सम्प्रेषण साधन है, जिससे मनुष्यों के बीच की दूरियां घटती हैं और अधिक से अधिक लोगों के साथ मानवीय सम्बन्ध बढ़ते हैं मानव को यदि भाषायी ज्ञान हो तो वह कहीं भी नये परिवेश में व किसी भी समाज में समायोजन कर सकता है और यदि भाषायी ज्ञान न हो तो वह (मानव) नये लोगों अर्थात् भिन्न-भिन्न भाषा भाषियों के मध्य सम्प्रेषण नहीं कर पायेगा। जिससे उसे उस नये परिवेश में समायोजन व सम्प्रेषण में बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। भाषा व्यक्ति के व्यक्तित्व को भी प्रदर्शित करती है, क्योंकि व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रथम प्रभाव उसकी भाषा से पड़ता है।

अध्यापक शिक्षा में भी भाषा शिक्षण अति आवश्यक है क्योंकि शिक्षा जितनी बालकों के लिये आवश्यक है उतनी ही आवश्यक अध्यापकों के लिये भी है, क्योंकि अध्यापक किसी भी समाज का दर्पण माना जाता है किसी भी समाज, राज्य या राष्ट्र की प्रगति उसके अध्यापकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है और शिक्षा प्रणाली में अध्यापकों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

कोठारी आयोग (1964-66) का प्रारम्भिक वाक्य सार्थक है कि भारत का भाग्य निर्माण भारत के विद्यालयों की कक्षाओं में हो रहा है। अध्यापक शिक्षा एक ऐसा शैक्षिक नियोजन है, जिसमें अध्यापकों को इस प्रकार से प्रशिक्षित करने का प्रयास किया जाता है, जिससे देश में आगे आनेवाली पीढ़ियों में शिक्षा, अनुशासन और मूल्य शिक्षा का विकास किया जा सके और अध्यापक द्वारा उनके शैक्षिक एवं विकासात्मक दायित्व को ग्रहण करने में एवं वहन करने में सक्षम हों और उनको तकनीकी कुशलता, वैज्ञानिक योजना, नवाचारिकता के साथ उनमें मानवीय मूल्यों का भी विकास किया जा सके। वास्तव में एक योग्य अध्यापक से ही देश का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। वर्तमान समय में शैक्षिक जगत में एक बड़ी समस्या यह है कि अन्य देशों के साथ-साथ भारत में भी आज शिक्षण को एक व्यवसाय माना जा रहा है। अतः अध्यापकों को उचित प्रशिक्षण कराने के लिये अध्यापक शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। अध्यापक शिक्षा भावी अध्यापकों को शिक्षण व्यवहार में और सामाजिक परिवेश में दायित्व परिपालन करने में

योग्यता का सम्पादन करती है अध्यापकों को कई भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। वर्तमान में केन्द्रीय विद्यालयों में व कुछ अन्य विद्यालयों में भी फ्रेंच और जर्मन इत्यादि भाषायें पाठ्यक्रम में निहित कराई गयीं हैं। इसके अलावा अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, और पंजाबी ये भाषायें तो पूर्व से हैं ही।

भाषा शिक्षण में उभरती हुई नवीन प्रवृत्तियां

वास्तव में देखा जाए तो भाषा शिक्षण के लिए काफी समय से प्रयास किए जा रहे हैं और वर्तमान में भी भाषा शिक्षण के लिए नए-नए तरीके खोजे जा रहे हैं-

1. भाषा प्रयोगा शाला (Language Lab)–भाषा प्रयोगशाला का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिका देश में सन् 1960 में हुआ था। वर्तमान में अन्य देशों के साथ-साथ भारत में भी भाषा प्रयोगशाला को समुचित उपयोग में लाया जा रहा है। भाषा प्रयोगशाला में विद्युतनियंत्रित एक कक्ष होता है। जिसका उपयोग सामूहिक रूप से भाषा को सीखने के लिये किया जाता है। इसमें प्रत्येक छात्र के बैठने के लिये उचित व्यवस्था होती है वह व्यवस्था इस प्रकार होती है कि एक छात्र दूसरे छात्र को नहीं देख पाता, सभी छात्रों के मध्य बोर्ड (Board) लगा रहता है और प्रत्येक टेबल के उपर हेड फोन (Head Phone) और टेपरिकार्डर (Tape Recorder) होता है तथा अध्यापक की टेबल पर भी एक हेडफोन (Head Phon) टेपरिकार्डर (Tape Recoder) और बोर्ड (Board) होता है जिससे कि अध्यापक सभी अधिगमकर्ताओं को अच्छी तरह सुन सकता है व निर्देश दे सकता है भाषा प्रयोगशाला का एक गुण ये है कि यह बाहरी शोर या वातावरण से मुक्त होती है भाषा प्रयोगशाला में विशेष विधियों और यंत्रों के माध्यम से भाषा की शिक्षा दी जाती है-

2. ग्रामो फोन (Gramo Phone)–भाषा शिक्षण में ग्रामो फोन का भी विशेष महत्व देखा जाता है आकाशवाणी द्वारा कार्यक्रमों का समय निश्चित होता है उसे शिक्षक और छात्र निर्धारित समय पर ही सुन सकते हैं जबकि ग्रामोफोन पर उस विषय को बार-बार सुना जा सकता है। और किसी भाषा को सीखा जा सकता है यह हर स्थान पर उपलब्ध

एक सरलतम श्रव्य साधन है।

3. भाषाञ्चिका (Language Tape)–भाषा शिक्षण में भाषापञ्चिका एक महत्वपूर्ण साधन है जिससे किसी भी भाषा को सीखने में सुविधा होती है तथा भाषा में होने वाली अशुद्धियों को इसके माध्यम से दूर किया जाता है इसमें भाषा का शुद्धोच्चारण करना सिखाया जाता है यदि अधिगमकर्त्ता अपनी प्रतिक्रिया से असन्तुष्ट होता है तो वह इसके प्रयोग से पुनः स्वयं प्रयास कर सकता है।

4. सी.डी. (Compact Disk)–सी.डी भी भाषा शिक्षण का एक सरल माध्यम है। सी.डी में किसी भी भाषा को इस प्रकार सिखाया जाता है कि अधिगम कर्ता बड़ी सरलता से भाषा को सीख जाता है सर्वप्रथम इनमें वर्ण माला का ज्ञान कराया जाता है बाद में वाक्य सिखाये जाते हैं स्कूलों में भाषा शिक्षण के लिए अधिकतर सी.डी. का ही प्रयोग किया जाता है। सी.डी. को अधिगम कर्ता सुनने के साथ-साथ देख भी सकता। सी.डी. के माध्यम से कोई भी किसी भी भाषा को घर बैठे भी सुगमता से सीख सकता है।

5. लिंग्वाफोन (Lingwa Phone)–लिंग्वाफोन का प्रयोग भाषा शिक्षण में होता है। इसकी सहायता से कोई भी विदेशी भाषा सरलता से सीखी जा सकती है। इसके अभिलेख आदर्श वक्ता द्वारा तैयार कराए जाते है इसमें यदि दो भिन्न भाषा-भाषी लोगों को आपस में सम्प्रेषण करना होता है तो वे अपनी अपनी भाषा का ही प्रयोग करते हैं किन्तु इस फोन के द्वारा भाषा स्वतः ही परिवर्तित हो जाती है और श्रोता अपनी सुगम भाषा को ग्रहण कर पाता है अतः इससे पुनः प्रयास से व्यक्ति किसी भी भाषा को सीख सकता है।

6. भाषा शिविर (Language Camp)–किसी भी भाषा को सीखने में भाषा शिविर (Language Camp) का भी अत्यधिक प्रयोग किया जाता है इन शिविरों के माध्यम से किसी भी भाषा को सरलता के साथ थोड़ा प्रयास कर सीखा जा सकता है इन शिविरों में प्रत्यक्ष विधि के माध्यम से भाषा सिखाई जाती है इनमें एक सुनिश्चित अवधि के लिये भाषा शिक्षण शिविर चलाया जाता है इन शिविरों का सबसे अच्छा उदाहरण भारत में प्रचलित संस्कृत भारती' भाषा संस्थान का है

जो पूरे भारत में संस्कृत भाषा का ज्ञान कराती है। इसी प्रकार अन्य भाषाओं के भी शिविर लगाए जाते हैं।

7. अन्तर्जाल (Internet)–अन्तर्जाल द्वारा भी भाषा को सीखा जा सकता है इसमें वेनसाइड पर आप कोई भाषा लिखेंगे तो अन्तर्जाल द्वारा यह भाषा आपकी ऐच्छिक भाषा में परिवर्तित होकर आपके सामने प्रस्तुत हो जायेगी। और उस साइट पर अधिगम कर्ता द्वारा दी गई भाषा को सरलता से सिखाने का प्रयास किया जाता है। अन्तर जाल में विभिन्न भाषाओं का शब्द कोष भी उपलब्ध होता है अतः इस शब्द कोष के माध्यम से अधिगम कर्ता बड़ी आसानी से शब्दों का संग्रह कर भाषा को सीख सकता है।

सार

पूर्व समय में स्कूलों में पढ़ने वाले छात्र अधिकतर स्कूलों के आस पास के ही हुआ करते थे और राष्ट्रीय भाषा व मातृ भाषा के अलावा किसी अन्य भाषा का इतना ज्यादा प्रचलन भी नहीं था जितना आज के समय में है सभी शिक्षित होकर अन्य देशों में आजीविका के लिए व शिक्षा के लिये जाते है व अन्य देशों के लोग भारत आते हैं जिससे कि भाषायी ज्ञान के अभाव में कई दिक्कतों का सामना करना पड़ता है क्योंकि दोनों स्थितियों में सम्प्रेषण ठीक से नहीं हो पाता। वर्तमान में पढ़ने वाले छात्र भी विभिन्न भाषा-भाषी होते हैं और जब छात्र अपनी भाषा को छोड़कर नये परिवेश में जाता है तो उसे और अध्यापक दोनों को भाषा सम्बन्धी कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इसलिए भाषा शिक्षण छात्रों के लिए जितना आवश्यक है उतना ही अध्यापकों के लिए भी, ताकि अध्यापक अपने छात्रों की बातों को अच्छे से समझे व अपनी बात को अपनी छात्रों को समझा सकें। और एक अच्छे व्यक्तित्व वाले अध्यापक के रूप में उभर कर देश के सामने आयें। इसलिये भाषा शिक्षण में कुछ ना कुछ नये-नये तरीकों का प्रयोग किया जाता हैं। जैसे-भाषाप्रयोगशाला, लेंग्वेज टेप, सी डी, ग्रामोफोन, लिंग्वाफोन, भाषा शिविर, अन्तर जाल इत्यादि।

अतः भाषा शिक्षण पर वर्तमान समय में नवाचारिक अभ्यास किए जा रहे हैं जो कि काफी हद तक सफल प्रयास हैं।

गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था की उपादेयता

मीनाक्षी

एम. फिल्., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

शिक्षा किसी भी संस्कृति का मूल आधार होती है, कोई भी समाज शिक्षा के बिना अपनी सांस्कृतिक उन्नति नहीं कर सकता। संस्कृति दो तत्वों से मिलकर विकसित होती है विचार और प्रक्रिया। इसे हम सिद्धान्त और प्रयोग भी कह सकते हैं शिक्षा दोनों ही स्वरूपों में हमें उपलब्ध होती है यह एक निर्विवाद तथ्य है कि भारत की संस्कृति विश्व की पुरातन संस्कृति है और उसकी अपनी शिक्षा पद्धति रही है हिमालय से दक्षिण समुद्र तक फैले इस विस्तृत भू-भाग में अपने विकास के काल से लेकर 18वीं शताब्दी के अन्त तक प्रचुर रूप में और 19 वीं शताब्दी से वर्तमान काल तक यत्र-तत्र बिखरे स्वरूप में भारतीय शिक्षा प्रणाली का सर्वमान्य रूप एक ही नाम से प्रसिद्ध रहा है जिसे हम गुरुकुल प्रणाली कहते हैं।

गुरुकुल शब्द से यह स्वतः ध्वनित होता है कि इस शिक्षा प्रणाली में गुरु के कुल अर्थात् शैक्षिक समूह में प्रवेश लेकर शिक्षा का अभ्यास ज्ञान की प्रथम प्रतिश्रुति थी। शतपथब्राह्मण में कहा गया है- **'वंशो द्विधा जन्मना विद्यया च' 'जन्म वंशः बिन्दुजः' 'विद्या वंशः नादजः'** इसका अर्थ है- वंश दो प्रकार के होते हैं एक विद्या वंश और दूसरा जन्म वंश।

भारत में गुरुकुल शिक्षा पद्धति विद्या वंश के रूप में विकसित हुई हमारे यहां शिक्षा को और विद्या को अलग-अलग रूपों में व्याख्यात किया गया है विद्या वह है जो जीव को हर प्रकार के बन्धन एवं जड़ता से मुक्त करती है-**'सा विद्या या विमुक्तये'** और शिक्षा वह है जो व्यक्ति को सामाजिक चातुर्य, सामाजिक प्रतिष्ठा और जीविका से युक्त बनाती है। गुरुकुल प्रणाली उन दोनों ही प्रकारों को उचित रूप से

विकसित करने का प्रयास करती थी।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली

वैदिक काल की शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता गुरुकुल प्रणाली थी। छात्र अपने गुरु के कुल अथवा किसी आश्रम में रहते थे। वहीं रहकर वे ज्ञान का अर्जन करते थे। गुरुकुल साधारणतः नैसर्गिक सौन्दर्य से सुरभित, जनपद कोलाहल से दूर, प्रकृति के सुरम्य कक्ष में स्थित होते थे। परन्तु वे किसी गांव या नगर के समीप अवश्य होते थे, जिससे उनमें निवास करने वाले छात्रों की अल्प आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

शिक्षा के उद्देश्य

गुरुकुल शिक्षा के उद्देश्य ईश्वर-भक्ति तथा धार्मिकता की भावना, चरित्र-निर्माण, मानसिक-विकास, नैतिक-शिक्षा, व्यावहारिक-शिक्षा, व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक-कुशलता की उन्नति, नागरिक तथा सामाजिक-कर्त्तव्यों का पालन प्राचीन भारत में शिक्षा के मुख्य उद्देश्य थे।

1. **ईश्वर-भक्ति तथा धार्मिकता की भावना**-गुरुकुल में 'धर्म' वरासन पर प्रतिष्ठित था। पुरोहित ही प्रायः शिक्षक होते थे। अतः शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य-बालक में ईश्वर-भक्ति तथा धार्मिकता की भावना का समावेश करना था। प्रत्येक प्रकार की शिक्षा में विभिन्न संस्कारों की व्यवस्था, छात्रों द्वारा विभिन्न व्रतों का पालन, नियमित संध्या एवं धार्मिक उत्सव-इन सब का लक्ष्य-तरुण छात्रों के हृदय में ईश्वर-भक्ति का धार्मिकता की भावना की जड़ों को गहरी जमा देना था।

2. **चरित्र-निर्माण**-गुरुकुल में ब्रह्मचारियों के चरित्र का निर्माण किया जाता था। चरित्र निर्माण के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए छात्रों की पाठ्यपुस्तकों में सदाचार के उपदेश होते थे, उनको अपने आचार्यों से सदाचार के उपदेश मिलते थे, उन्हें ऐसे वातावरण में रखा जाता था, जिनसे उनका चारित्रिक उत्थान हो सके और उंनके समक्ष राष्ट्र की महान् विभूतियों के आदर्श बारम्बार उपस्थित किये जाते थे, जिससे उनके चरित्र का निर्माण हो सके।

3. व्यावहारिक-शिक्षा-व्यावहारिक शिक्षा के प्रमुख रूप से तीन ही भाग थे-(1) भिक्षा मांगना (2) होम की अग्नि प्रज्ज्वलित रखना तथा (3) पशुओं की सेवा। इसके साथ ही भूमि सेवा भी इसके लिए आवश्यक मानी जाती थी। भिक्षाटन से शिक्षा का हृदय विनम्रता के भद्र भावों से आवर्जित हो जाता था। होम-शिक्षा की दिव्य ज्योति से प्रज्ज्वलित रखने से उसका बौद्धिक विकास तो होता ही था, साथ ही तेज भी उदित होकर प्रवृद्ध होता था। पशुओं की सेवा तथा भूमि-सम्बन्धी कार्य से उसका शरीर स्वस्थ एवं आचरण पवित्र रहता था।

4. मानसिक-विकास-व्यावहारिक शिक्षा की भांति मानसिक शिक्षा के भी प्रधान अङ्गश्रवण, मनन तथा निदिध्यासन, ये तीन ही माने गये हैं। इन तीनों अङ्गों के समुचित सम्पादन से ही शिष्य को ज्ञान का साक्षात्कार होता था। शिष्य की यह शिक्षा अनुभवात्मक प्रत्यक्षीकरण पर आश्रित थी। शिक्षा-सम्पादन के लिए गुरु के उपदेशों का श्रवण मात्र ही पर्याप्त था।

5. नैतिक-शिक्षा-नैतिक शिक्षा का सम्बन्ध छात्र के आचार से था। सदाचार ही जीवन है यह पवित्र घूंटी छात्र को प्रारम्भ से ही पिलाई जाती थी। सदाचार की शिक्षा गुरु के उपदेश के श्रवण मात्र से ही सम्भव नहीं, अपितु इसके लिए छात्र को ब्रह्मचर्य के कठोर अनुशासन-व्रत में रहना ही पड़ता था, साथ ही कुछ विशिष्ट अभ्यासों की व्यावहारिक साधना भी करनी पड़ती थी। प्रत्येक गुरु, ब्रह्मचारी छात्र के शुद्धाचरण के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता था। शुद्धाचरण के लिए सात्विक आहार आवश्यक था अतः खान-पान के विषय में तामसिक पदार्थों पर प्रतिबन्ध था। गुरु का आदर्श जीवन तथा गुरु की सत्कर्मरत दिनचर्या उल्लिखित व्रतों के पालन करने की छात्र को प्रेरणा तथ स्फूर्ति प्रदान करती थी।

6. व्यक्तित्व का विकास-गुरुकुलीय शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास करना भी था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए छात्रों में आत्म-सम्मान की भावना का विकास, आत्म-विश्वास को प्रोत्साहन, आत्म-संयम के महत्व पर बल तथा न्याय एवं विवेक की शक्ति को जन्म देने की विधियों को अपनाया जाता था।

7. सामाजिक कुशलता की उन्नति-सामाजिक कुशलता की

उन्नति और इसके फलस्वरूप मानव के सुख में भी वृद्धि करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति विभिन्न शास्त्रों, व्यवसायों तथा उद्योगों की शिक्षा की व्यवस्था करने की गई थी। छात्रों का मानसिक विकास करने के साथ-साथ उनको उन व्यवसायों की शिक्षा निश्चित रूप से प्रदान की जाती थी, जिनको वे अपनी भावी जीवन में अपनाना चाहते थे।

गुरुकुलीय शिक्षा की विशेषताएं

गुरुकुलीय शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा की एक विशिष्ट प्रणाली का निर्माण किया, जो साम्राज्यों के पतन तथा समाज के परिवर्तनों से प्रभावित नहीं हुई और जिसने इन सहस्रों वर्षों के उपरान्त भी हमारे देश में शिक्षा की ज्योति को प्रज्ज्वलित रखा है। इस शिक्षा प्रणाली के कुछ विशेषताएं थी। जो इस प्रकार हैं-

1. उपनयन-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण का प्रत्येक बालक उपनयन संस्कार के पश्चात् विद्याध्ययन प्रारम्भ करता था। 'उपनयन' का शब्दिक अर्थ है- 'पास ले जाना' अर्थात् शिक्षा के लिए गुरु के पास पहुँचाना। उपनीत बालक को ही गुरु सावित्री मन्त्र (गुरुमन्त्र) का उपदेश देकर शिक्षा देना आरम्भ करता था।

2. विद्याध्ययन आरम्भ करने की आयु-याज्ञवल्क्य के अनुसार, कुल की प्रथा के अनुसार किसी भी सुविधापूर्ण समय पर उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जा सकता है ब्राह्मण को अपने पांचवें वर्ष में, क्षत्रिय को छठे वर्ष में और वैश्य को आठवें वर्ष में विद्याध्ययन प्रारम्भ कर देना चाहिए।

3. अध्ययन-काल- वैदिक युग में सामान्य रूप से अध्ययन-काल 12 वर्ष का था। इसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा गया है कि 12 वर्ष की अवधि केवल एक वेद के अध्ययन के लिए थी। यदि एक छात्र चारों वेदों का अध्ययन करता है, तो उसे प्रत्येक वेद के अध्ययन में 12 वर्ष लगाने पड़ते थे। पर सभी छात्र चारों वेदों का अध्ययन नहीं करते थे। साहित्य तथा धर्मशास्त्र के छात्र अपना अध्ययन 10 वर्ष में समाप्त कर देते थे।

4. शिक्षा-सत्र- शिक्षा-सत्र की अवधि एक वर्ष में साढ़े चार

या साढ़े पांच मास की होती थी। साधारणतः विद्याध्ययन का कार्यक्रम श्रावण मास की पूर्णिमा को 'उपाकर्म' समारोह से प्रारम्भ होता था और पौष मास की पूर्णिमा को 'छन्दसाम उत्सर्जनम्' समारोह के साथ स्थगित होता था।

5. शिक्षण का समय-सम्भवतः शिक्षण का कार्य प्रातः काल से मध्याह्न तक और फिर कुछ विश्राम तथा भोजनादि के उपरान्त सायंकाल तक चलता था।

6. विद्यालय-भवन-गुरुकुलों में खुले मौसम में अध्ययन-अध्यापन का कार्य वृक्षों के नीचे होता था, परन्तु वर्षा के समय किसी प्रकार के आच्छादन की व्यवस्था अवश्य होगी। विचारों एवं देवालयों में पढ़ने वाले छात्रों के लिए भव्य भवन बने हुए थे।

7. छात्र एवं उनका जीवन-छात्रों के खान-पान, वेशभूषा, आचार-व्यवहार आदि के सम्बन्ध में निश्चित नियम थे, जिनका पालन करना अनिवार्य था। यथा-

(i) खान पान-मनु के अनुसार छात्रों को दिन में केवल दो बार भोजन करना चाहिए। एक बार प्रातःकाल और दूसरी बार सायंकाल। इन दोनों भोजनों के मध्य में उनको अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए। उनको अति भोजन से बचना चाहिए।

(ii) वेश-भूषा-छात्रों की वेश-भूषा निर्धारित थी। उपनयन के उपरान्त ब्राह्मण की मेखला मूंज घास की, क्षत्रिय की तांत की और वैश्य की ऊन की बनी हुई होती थी। शरीर के निम्न भाग को ढकने के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य छात्र क्रमशः सन्, रेशम और ऊन के वस्त्रों के टुकड़ों का और ऊपरी भाग के लिए क्रमशः काले मृग, चित्तीदार मृग एवं बकरे की खालों का प्रयोग करत थे। छात्रों को अज्जन, सुगन्धि, छाते तथा जूतों का प्रयोग निषेध था। वे अपने शरीर को किसी प्रकार भी अलंकृत नहीं कर सकते थे। केशों के प्रसाधन की मनाही थी।

(iii) आचार-व्यवहार-छात्रों का जीवन-शिष्टाचार, मर्यादा तथा आत्मसंयम से पूर्ण होता था। उन्हें गुरुजनों के प्रति आदर तथा सम्मान प्रदर्शित करना होता था। उन्हें असत्य भाषण, गाली-गलौज एवं

चुगलखोरी से दूर रहने की शिक्षा प्रदान की जाती थी। वे नृत्य, संगीत तथा द्युतक्रीड़ा का आनन्द नहीं ले सकते थे। उन्हें अपने व्यवहार में सादगी तथा विचारों में श्रेष्ठता के सिद्धान्तों का अनुसरण करना पड़ता था।

8. अध्यापकों के प्रति छात्रों के कर्त्तव्य-गुरुकुल पद्धति में गुरु का स्थान 'राजा' माता-पिता एवं देवता से निम्न नहीं समझते थे और उसका हृदय से सम्मान करते थे। वे गुरु से नीचे आसन पर बैठते थे। वे आचार्य की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करते थे। वे गुरु की सेवा करना अपना परम धर्म समझते थे।

9. छात्रों के प्रति अध्यापकों के कर्त्तव्य-वैदिक ऋषियों ने आचार्य को छात्र का 'मानस पिता' कहा है। अत: गुरुकुल में आचार्य छात्रों के प्रति पुत्रवत् व्यवहार करते थे। गुरु उनको बताता था कि उन्हें किन आदतों का निर्माण एवं किनका परित्याग करना चाहिए। उनका कर्तव्य था- अपने विद्यार्थियों का शारीरिक, मानसिक तथा अध्यात्मिक विकास करना।

10. दण्ड-आपस्तम्ब ने लिखा है कि-गुरु हठी छात्रों को अपनी उपस्थिति से दूर भेजे या उनसे उपवास करवाये। मनु का कथन है कि-शिक्षक, छात्र को बिना कष्ट दिये मधुर भाषा में अध्यापन कार्य करे। पर अन्यत्र उन्होंने लिखा है कि यदि छात्र ने अपराध किया है, तो गुरु उसको रज्जु या पतली छड़ी से दण्ड दे सकता है।

11. नि:शुल्क शिक्षा-ब्राह्मणों का कर्त्तव्य-शिक्षा देना समझा जाता था। गुरु का ऋण चुकाने का एकमात्र साधन यही था। जीविकोपार्जन के लिए शिक्षण-कार्य नहीं होता था, अपितु ज्ञान-प्रसार शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य था। जो शिक्षक शुल्क के निमित्त अध्यापन-कार्य करता था उसे पातकी समझा जाता था।

12. पाठ्यक्रम-गुरुकुलों में वेदों की शिक्षा के अतिरिक्त और भी अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। 'छान्दोग्योपनिषद्' तथा 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में जिन विषयों की सूची मिलती है, वह इस प्रकार है-ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, इतिहास तथा पौराणिक कथाएं, पुराण, देव-विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान अथवा आलोचना,

नैतिकशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष तथा कल्प इन विषयों के अतिरिक्त बीजगणित तथा औषधि-विज्ञान के शिक्षण के भी अवसर सुलभ थे।

13. शिक्षण-विधि-शिक्षण विधि मौखिक थी और छात्रों को आचार्य द्वारा बताई गई सभी बातों को कण्ठस्थ करना होता था। गुरू गम्भीर वाणी में मन्त्रों का उच्चारण करते थे और छात्र उसका अनुसरण करते थे। गुरु उच्चारण किये गये मन्त्रों की व्याख्या भी करते थे।

14. शिक्षण की पद्धति-गुरुकुलों में शिक्षा की पद्धति वैयक्तिक थी।

15. स्त्री-शिक्षा-वैदिक काल में नारी-शिक्षा अपने चरम उत्कर्ष पर थी। ब्रह्मचर्य-व्रत से सम्पन्न शिक्षिता कन्या को ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त था। समय की गति के साथ समाज में स्त्रियों का महत्व तथा उसके फलस्वरूप उनका शिक्षा-अधिकार कम होता चला गया।

16. कक्षा-नायकीय पद्धति-जब किसी गुरु के पास छात्रों की संख्या अधिक हो जाती थीं, तो वह उनको व्यक्तिगत रूप से शिक्षा प्रदान करने में कठिनाई का अनुभव करता था। इस कठिनाई पर विजय प्राप्त करने के लिए वह सर्वोच्च कक्षा के सबसे अग्रिम छात्रों का सहयोग प्राप्त करता था वे छात्र, जिसको नायक कहा जाता था, गुरु की सामान्य देख-रेख में निम्न कक्षा के छात्रों का अध्यापन और पथ-प्रदर्शन करते थे।

17. व्यावसायिक-शिक्षा-वैदिक समाज ने धर्म-प्रधान होने के कारण धर्म पर विशेष बल दिया, पर उसने व्यावसायिक शिक्षा की उपेक्षा नहीं की। यह शिक्षा बालकों को इसलिए दी जाती थी, जिससे कि वे समाज में अपने भावी कार्यों को सफलतापूर्वक कर सकें। इस शिक्षा के मुख्य अङ्ग निम्नलिखित थे-

(i) पुरोहित शिक्षा-यह शिक्षा, ब्राह्मणों को दी जाती थी। उनको धर्म, यज्ञ, हवन, बलि आदि कार्यों की शिक्षा देने के लिए पृथक् प्रशिक्षण केन्द्र थे।

(ii) सैनिक-शिक्षा- यह शिक्षा विशेष रूप से क्षत्रियों को दी

जाती थी। इस शिक्षा के लिए संस्थाएँ नहीं थी। यह साधारणतः राज्य-सेनाओं के अवकाश-प्राप्त सैनिकों द्वारा दी जाती थी।

(iii) कृषि और वाणिज्य की शिक्षा- यह शिक्षा, वैश्यों को दी जाती थी। प्रारम्भ में यह शिक्षा बालक को अपने पिता से मिलती थी, पर 'राजतरंगिणी' पुस्तक में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि कुछ समय के उपरान्त यह कार्य शिक्षकों द्वारा किया जाने लगा था।

(iv) औषधि-शास्त्र की शिक्षा-यह शिक्षा, भारत में अति प्राचीनकाल में भी विद्यमान थी। औषधि-शास्त्र के अध्ययन की अवधि 7 वर्ष थी।

(v) अन्य व्यवसायों की शिक्षा-गुरुकुल में उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों की शिक्षा की भी व्यवस्था थी। यथा- सोने और चांदी के आभूषण बनाना, लोहे, लकड़ी, पीतल और मिट्टी की वस्तुएं बनाना, कपड़ा बुनना आदि।

18. बौद्धकालीन शिक्षा-500 ई. पूर्व से 1200 ई. तक बौद्धकालीन शिक्षा का समय माना जाता है। इस समय में जैन और बौद्ध धर्मों द्वारा भारतवासियों को एक नई दिशा प्राप्त हुई। अतः वैदिक धर्म में कालान्तर उत्पन्न कुरीतियों से ऊबी हुई जनता, जिसमें बहुत से राजे, महाराजे तथा प्रभावशाली लोग भी सम्मिलित थे, इस धर्म के अनुयायी बने और इन धर्मों के प्रचार की ही भांति बौद्ध-शिक्षा व्यवसायों का भी विकास और प्रसार हुआ जो बारहवीं सदी के अन्त में मुसलमान शासन की स्थापना तक विकसित रूप में विद्यमान रहा। बौद्ध काल में स्थापित तक्षशिला और नालन्दा विश्वविद्यालय अपने विशेष आकार और प्रकार के कारण सारे विश्व के विद्वानों के आकर्षण केन्द्र रहे।

19. मुस्लिमकालीन शिक्षा-बारहवीं शताब्दी के अन्त में मुस्लिम साम्राज्यवादी मुहम्मद गौरी तथा उसके द्वारा नियुक्त प्रशासकों ने अपनी संकुचित भावनाओं के कारण बौद्धकाल के बड़े-बड़े शिक्षा केन्द्रों को नष्ट कर दिया। इनके स्थान पर उन्होंने अपनी परम्परानुसार शिक्षा-संस्थाओं (मकतबों) और मदरसों की स्थापना तथा बची हुई प्रचलित शिक्षा व्यवस्थाओं को प्रभावित किया। मुस्लिम शासन काल में मुगल शासकों ने अपनी सभ्यता, संस्कृति और विचारधाराओं से भारतीय

शिक्षा व्यवस्थाओं को विशेष रूप से प्रभावित किया। मुस्लिम शासन काल में मुगल शासकों ने अपनी सभ्यता, संस्कृति और विचारधाराओं से भारतीय शिक्षा व्यवस्थाओं को विशेष रूप से प्रभावित किया। अट्ठारहवीं शताब्दी में भारतवर्ष में पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा अंग्रेज शासकों और पाश्चात्य ई. मिशनरियों ने शिक्षा संस्थाओं की स्थापना के लिए अपने प्रारम्भ कर दिये।

20. स्वतन्त्रता पश्चात् से अब तक-वर्तमान शिक्षा प्रणाली मैकाले की देन है। 1923 ई. में लॉर्ड विलियम ने भारत में शिक्षा के सुधार का दायित्व लॉर्ड मैकाले को दिया। उसने कहा था-मेरा उद्देश्य इस शिक्षा से केवल यही है कि भारत में अधिक से अधिक लिपिक पैदा हों, जिससे यह देश बहुत दिनों तक गुलाम बना रहे। इस संकुचित शिक्षण-पद्धति में कतिपय नवीन विषयों का समावेश अवश्य था, परन्तु शिक्षण का मूलभूत प्राणतत्व नहीं था। फलतः यह प्रणाली मात्र उदरपूर्ति तक सीमित रही। विविध शिक्षाविदों के अनुसार केवल मानसिक विकास से मानव सब तरह से सुखी नहीं रह सकता। यह पद्धति जब तक चलती रहेगी तब तक देश का पूर्णतः विकास सम्भव नहीं है। वर्तमान उद्दण्डता, अनुशासनहीनता, अनैतिकता, चारित्रिक पतन, माता, पिता एवं गुरु के प्रति श्रद्धाहीनता आदि दोष इसी शिक्षा पद्धति के कारण है।

गुरुकुलीय शिक्षण पद्धति की वर्तमान सन्दर्भ में उपादेयता

वर्तमान शिक्षा पद्धति शिक्षा के सैद्धान्तिक पक्ष पर ज्यादा जोर देती है। जबकि प्राचीन शिक्षा पूर्णतः व्यावहारिकता एवं प्रायोगिकता पर आधारित थी मात्र छात्रों को क्लर्क आदि बनाने तक ही सीमित होकर सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास पर बल देती थी। अतः प्राचीन शिक्षा पद्धति एवं वर्तमान नवाचारों के बीच समन्वय भावी शिक्षा के विकास में अपना योगदान देकर छात्रों के निरन्तर परिष्कार का महत्वपूर्ण आधार आचार्यों का आचरण और गुरु-शिष्य के बीच आत्मीयता का सम्बन्ध था जिसकी वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में जबकि गुरु-शिष्य सम्बन्ध निरन्तर अवनति की ओर अग्रसर होता दिखाई देता है। ऐसी स्थिति छात्र को ज्यादा से ज्यादा समय तक गुरु के सान्निध्य से उत्पन्न हो सकती है।

प्राचीन गुरुकुल प्रकृत्ति के उन्मुक्त वातावरण में स्थित थे तो छात्र प्रकृति को नजदीक से जानते थे। वर्तमान विद्यालयों को शहरों के भीड़-भाड़ के इलाकों से दूर जाकर यदि प्रकृति के सान्निध्य में स्थापित किया जाए तो प्राकृतिक विज्ञानों के शिक्षण सुगम हो सकेगा। गुरुकुलों में श्रम को अत्यधिक महत्व दिया जाता था एवं सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। अगर छात्रों को बचपन से ही अपना कार्य स्वयं करने एवं श्रम के महत्व से परिचित करवाया जाए तो पढ़े लिखे बेरोजगारों की फौज में कमी आएगी एवं छात्र वर्तमान औद्योगिक विकास में भी अपनी कार्य कुशलता विशिष्ट योगदान दे सकेंगे एवं मानसिक अवसाद से भी बचेंगे। गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति को यदि वर्तमान शिक्षा पद्धति से समन्वयीकरण किया जाये तो छात्रों में ईश्वर-भक्ति की भावना में सहायक होगी। चरित्र-निर्माण एवं उच्च्च नैतिक मूल्य गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली के महत्वपूर्ण पक्ष हैं। गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में होने वाले नैतिक पतन एवं संस्कारों के ह्रास को नियन्त्रित कर सामाजिक कुशलता के विकास में अपने योगदान द्वारा वर्तमान सामाजिक ढांचे के सुधार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। इसी तरह गुरुकुल प्रणाली की अन्य कई विशेषताएं है जिन पर अगर ध्यान दिया जाये और उन्हें वर्तमान शिक्षा प्रणाली में समायोजित किया जाये तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली की उन्नति सुनिश्चित है।

सन्दर्भ

1. भारतीय शिक्षा का आधार, त्यागी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1986
2. भारतीय शिक्षा का इतिहास, रावत, प्यारेलाल, रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा, 1979
3. राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भारतवर्ष की आधुनिक शिक्षा का आलोचनात्मक अध्ययन, अग्रवाल, डा. वी. पी. अनु बुक्स, शिवाजी रोड, मेरठ
4. वैदिक शिक्षा पद्धति, मिश्र, डा. भास्कर, नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, दिल्ली, 2003
5. वैदिक शिक्षा पद्धति और आधुनिक शिक्षा पद्धति झा, नागेन्द्र, वेंकटेश प्रकाशन, नई दिल्ली
6. वैदिक शिक्षा मीमांसा, मिश्र, डा. भास्कर, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1993

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति की सार्थकता

राकेश कुमार एवं विकास कुमार
एम. एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

आज हमारा वातावरण हमें सतत् प्रतिस्पर्धा की ओर उन्मुख कर रहा है हमें लगने लगा है कि मानव यन्त्र की तरह दिन-रात कार्यों, प्रतियोगिताओं प्रतिस्पर्धाओं में लगा रहे तथा तत्तत् स्थलों में प्रथम स्थान प्राप्त करने पर ही सम्मान व सुविधाओं को प्राप्त कर सकेगा। ऐसी परिस्थिति में हम अपनी सारी क्षमता, योग्यता व प्रतिभा को अपने कार्यक्षेत्र में लगाकर सफलता प्राप्त करने की होड़ में लग जाते हैं और क्रमशः उन्नति के पथ पर चलते हुये शिखर को प्राप्त करने में सक्षम होते हैं-

वर्तमान में हमारी शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप ही ऐसा है कि प्रारम्भ से ही बालक को पुस्तकों का भार प्रतीत होने लगता है तथा क्रमशः उच्च, उच्चतर व उच्चतम कक्षाओं तक पहुंचते-पहुंचते पाठ्यक्रम तथा पाठ्यचर्या का विस्तार हो जाता है जिससे मानसिक थकावट व बोझयुक्त प्रतीत होने लगता है, ऐसी पाठ्यचर्या में सफलता प्राप्त करने के लिये पर्याप्त साधन, समय व दक्षता तथा अभिभावकों की सतत अभिप्रेरणा की अपेक्षा की जाती है।

ऐसे पाठ्यक्रम के अनुसार अध्ययनार्थ यदि साधन, समय, दक्षता और सतत् अभिप्रेरणा प्राप्त कर कुछ प्रतिभाशाली छात्र तत्तत्स्थान प्राप्त भी कर लेते है तो उन्हें राजकीय उच्च सेवा या प्रशासनिक सेवा प्राप्त करने के लिये पुनः घोर संघर्ष करना पड़ता है और तत्तद् प्रतिस्पर्धाओं व प्रतियोगिताओं के लिये पर्याप्त धन, मन व एकाग्रता की आवश्यकता है।

ऐसी श्रमसाध्य, समयसाध्य व साधनसाध्य प्रतियोगिताओं में प्रतिभाशाली प्रतियोगितार्थियों में कुछ ही उन उच्च स्थानों पर प्रतिष्ठित हो पाते हैं तथा शेष प्रतिभागियों को तो कुछ सामान्य या साधारण पदों को ही प्राप्त कर असन्तोष का भागी बनना पड़ता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य की शिक्षा प्रणाली में आदर्श, आध्यात्मिकता, सामाजिकता, मानव मूल्यों आदि का स्थान भी कहीं परिलक्षित नहीं होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति साक्षर और शिक्षित होकर भी यदि अपेक्षित स्थान न प्राप्त कर सका तो उसे निराशा ही हाथ लगती है। साथ ही वह समाज से समायोजन भी बड़ी कठिनाई से कर पाता है, उसे जीवन में असन्तोष के कारण शान्ति नहीं मिल पाती और धीरे-धीरे वह समाज के अन्य लोगों, वर्गों को भी एकाकीपन का अनुभव होने लगता है।

दूसरी ओर विचार करें तो देखने को मिलता है कि जो प्रतिभाशाली प्रतिस्पर्धा प्रतियोगिता वाली उच्च परीक्षाओं और साक्षात्कारों में सफल होकर अपेक्षित उच्च पदों को प्राप्त कर लेते है वे भी समाज के अन्य व्यक्तियों, समूहों और संस्थाओं को नगण्य समझने लगते हैं और जनसाधारण से उनकी दूरियां बढ़ने लगती है। यहाँ तक देखा जाता है कि वर्तमान में ज्यादातर उच्च पदों में प्रतिष्ठित अधिकारी या नेता अपने घरों में ही छोटे व बड़ों के साथ समायोजन नहीं कर पाते जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार विखण्डित होते हुये देखा जाता है और उन घरों में वृद्धजनों को उचित सम्मान और सेवा नहीं प्राप्त हो पाती।

अतः हम कह सकते है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चल रही शिक्षा-व्यवस्था (जिसके द्वारा भविष्य का निर्माण होता है) ऐसी है जिसमें नैतिकता, सदाचार, भ्रातृप्रेम, सहिष्णुता और आदर्श व अध्यात्म जैसे महत्वपूर्ण विषयों का समावेश ही नहीं है। जिसके कारण वर्तमान पद्धति के छात्र आगे चलकर घोर तपस्या कर अच्छे अंक, स्थान व पद पाकर भी सामाजिक व्यवहारों से अछूते रहने के कारण समाज से अलग रह जाते है और उनका शेष जीवन भौतिक सुख-सुविधाओं को एकत्र करने व केवल अपने परिवार के पोषण करने में व्यतीत हो जाता है। उन्हें समाज के दुःखदर्द का ज्ञान भी नहीं हो पाता और नहीं वे समाज में सहभागी हो पाते हैं।

जिसके फलस्वरूप एक नया वर्ग सम्पन्न या समृद्ध वर्ग के रूप में सामने आता है जिसका राष्ट्र के अन्य समुदायों से सम्बन्ध कोसो दूर होता है।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति- भारतीय प्राचीन शिक्षा पद्धति में लोक जीवन की समग्र शिक्षा सम्मिलित थी और आश्रमव्यवस्था पर पूर्ण बल दिया जाता था जिसका स्पष्ट उदाहरण-

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवत्तीनां योगनान्ते तनुत्यजाम्॥

जिसके फलस्वरूप मानव जीवन चार विशेष अवस्थाओं में विभाजित था। सर्वप्रथम ब्रह्मचर्याश्रम का विधान था। जिसमें बालक को माता-पिता प्राथमिक व्यवहार सिखलाकर गांव के कोलाहलमय वातावरण से दूर एकान्त शान्त वन प्रदेश में स्थित गुरुकुल में विद्याध्ययनार्थ भेजते थे। वहां समृद्ध या विपन्न दोनो ही परिवार से आये हुये विद्यार्थी को समान वात्सल्य, सुविधा और अवसर दिये जाते थे जिससे कि विद्यार्थियों में सद्भाव का भाव उत्पन्न होता था। और प्रसन्नतापूर्वक सभी गुरुकुलवासी सदाचार व भाईचारे के साथ पूरे मन से शिक्षा प्राप्त करते थे। उस समय अभिभावकों को भी बालकों के अध्ययनार्थ शुल्कादि की व्यवस्था के लिये चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी।

समाज के सभी वर्ग के लिये उचित अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था राजा द्वारा की जाती थी और ब्रह्मचारियों में सद्गुणों का सृजन किया जाता था, भोग-विलास से दूर रहते हुये गुरुकुलवासी एकाग्रता पूर्वक शीघ्र ही अध्येय विषयों को ग्रहण कर लेते थे तथा-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारितस्यवर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥

अभिवादनशीलतायुक्त तथा वृद्धजन सेवा के सद्गुणों का वर्द्धन किया जाता था जिससे आयु, विद्या, यश तथा बल के माध्यम से स्वावलम्बी तथा दृढ़निश्चय होकर कार्य करने में सक्षम होता था।

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा पद्धति में पूर्वजन्म तथा परजन्म कर्मानुसार होते है इस बात को बताया जाता था जिससे मनुष्य वर्तम्रान के कार्यों में

बड़ी निश्चितता तथा धर्मयुक्त होकर कार्य करता था तथा सर्व के प्रति सुहृद् व्यवहार करता था जो कि यह स्पष्ट है-

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

इससे स्पष्ट होता है कि पूर्व में जो शिक्षा दी जाती थी वह स्वयं को स्थित करके दी जाती थी यदि स्वयं के प्रति जो व्यवहार प्रतिकूल है वह दूसरों के साथ नहीं करना चाहिये।

प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में यह बताया जाता था कि लौकिक जीवन सुखमय हो तथा स्वर्गादि की प्राप्ति हो सके इसके लिये-

विद्याञ्चाऽविद्याञ्च यस्तद्वेदोभ्यं सह।
अविद्ययामृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

अविद्या (कर्मकाण्ड) या लौकिक विद्या का ज्ञान आवश्यक है किन्तु मानव जीवन की सार्थकता तो विद्या और अविद्या दोनों को ही साथ-साथ समझने पर है क्योंकि अविद्या के द्वारा कर्मकाण्ड या लौकिक व्यवहार की कुशलता प्राप्त होती है जिससे लौकिक बाधां की निवृत्ति होगी किन्तु अमरपद (शाश्वती शान्ति) तो विद्या (परा विद्या) की उपासना से ही होगी अर्थात् समग्र जीवन की कुशलता तो लौकिक व परा दोनों ही विद्याओं की प्राप्ति से सम्भव है। जो केवल पराविद्या के उपासक है उनका भविष्य अन्धतम (घोर अन्धकारमय) होगा। ऐसा उपदेश कर हमारे आचार्य हमें सांसारिक कर्त्तव्यनिष्ठा की ओर अग्रसर करते हुये कर्म के द्वारा ही मोक्ष सम्भव है। यथा-

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये सम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इवतेतमो य उसम्भूत्याः रताः।।

इस प्रकार की शिक्षा प्रदान कर हमें अभयत्व, अनासक्ति, कर्तव्य परायणता आदि सद्गुणों से समन्वित कर सफल जीवन की कला में निपुण कर देते थे। प्राचीन परम्परा की शिक्षा हमें पद-पद पर नैतिकता का मार्ग दिखाती है। मनुष्यों के आदर्शों को प्राप्त कराती है जिससे हमारे नैतिक मूल्यों का वर्द्धन सम्भव है। वहां हमें समदृष्टि प्राप्त होती है-

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करूण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।।

इससे स्पष्ट होता है कि घृणा या द्वेष का अवसर ही नहीं प्राप्त होता है प्राचीन गुरुकुल पद्धति हमें विविधता में एकता का दर्शन कराती है जीवन के उच्चादर्शों की स्थापना करती है जिससे हम जीवत्व से शिवत्व की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर अग्रसर होने का मार्ग प्राप्त होता है। हमारे प्राचीन आचार्यों की कामना है कि-

असतो मा सद्मगमय तमसो या ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय।।

अतः हमें प्राचीन शिक्षा पद्धति के अवलोकन से ज्ञात होता है कि समग्र जीवन की कला हमें वहीं से प्राप्त होती है और हम जीवन में निराशा, अवसाद, भय, कर्त्तव्य आदि से छुटकारा पाकर भौतिक व आध्यात्मिक जीवन की उच्चता को प्राप्त करने में स्वयं समर्थ पाते हैं।

गुरुकुल पद्धति की सार्थकता

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भौतिक उन्नति की होड बगी हुयी है बहुधा लोगों को भव्यता ही भाती है और भव्यता तो प्रायः दिखावा ही होती है। लोग स्वयं को अच्छा दिखाने के लिये अपने अन्तर्हृदय के प्रतिकूल भी कार्य करते है। आज हम अपने लिये नहीं दूसरों की स्पर्धा के लिये अहर्निश प्रयास करते रहते है और इच्छायें अनन्त होने के कारण हमें कहीं न कहीं स्वयं को पीछे होना ही पड़ता है। जिसके फलस्वरूप हम अवसाद, निराशा या कर्तव्य-विमुखता की स्थिति को प्राप्त करते है।

हमें जीवन का लक्ष्य ज्ञात नहीं हो पाता और हम पूरा जीवन घर-परिवार की व्यवस्था करने में ही व्यतीत कर देते है। ऐसी परिस्थिति में यदि हमें गुरुकुल शिक्षा पद्धति का आश्रय मिल जाये तो हम कर्तव्य परायण होकर फलाकांक्षा के बिना ही उत्साहपूर्वक समय का सदुपयोग करने में समर्थ हो सकेंगे। हमें प्राचीन शिक्षा से ''तत्वमसि'' जीव और जगत् के स्वरूप का बोध होता है और हम समझ लेते है कि पूर्वजन्म के कर्मानुसार (प्रारब्धावश) सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, उन्नति-अवनति के अवसर आते है हमें यह भी ज्ञात हो जाता है कि

प्रारब्ध तो भोगना ही पड़ता है।

ऐसी स्थिति में प्राच्यशिक्षाविद् प्रसन्नतापूर्वक प्रारब्ध भोगते हुये अपने कर्तव्य का अनुष्ठान कर चित्तशुद्धि द्वारा विपदा-सम्पदा के प्रत्येक क्षणों में परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व की सेवा करने में समर्थ होता है।

अयं निज परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।'

हमारे समक्ष स्वामी विवेकानन्द आदि आदर्श महापुरुषों की जीवनी पथ-प्रदर्शन करती है।

गुरुकुल पद्धति के उद्देश्य

–समानता का परस्पर व्यवहार

–विश्वबन्धुत्व की भावना

–ज्ञान को महत्व न कि वर्ण को

–वर्णों के अनुसार शिक्षा व्यवस्था

–आत्मकल्याण की भावना

–गुरु-शिष्य का परस्पर सौहार्द्र प्रेम

–गुरु विद्या तथा शिक्षा के साथ अग्रिम मार्ग प्रशस्त करता था।

–सहनाववतु सहनौ भुनक्तु। सहवीर्य करवावहै:।

तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै:।।

प्राचीन शिक्षा पद्धति में गुरुकुल के समावर्तन संस्कार के अनन्तर वह बालक परिवार, समाज राष्ट्र और विश्व की सेवा कर शान्ति, सद्भाव, सन्तोष और समरसता का प्रसार करता था। जिससे-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

की भावना उत्पन्न होती थी।

वर्तमान भागदौड़, प्रतिस्पर्धा व अत्यधिक महत्वाकांक्षा वाले

मनुष्यों को इस परिप्रेक्ष्य में प्राचीन शिक्षा पद्धति का यदि समायोजन किया जाये तो विश्व के समग्र विकास का मार्ग अवश्य ही प्रशस्त होगा अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति की सार्थकता स्वयमेव सिद्ध परिलक्षित होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रघुवंश
2. मनुस्मृति
3. महाभारत
4. विष्णुधर्मो
5. ईशावास्यापनिषद्
6. ईशावास्यापनिषद्
7. श्रीमद्भगवद्गीता
8. बृहदारण्यकोपनिषद्
9. छान्दोग्योपनिषद्
10. श्रीमद्भगवद्गीता
11. हितोपदेश

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

शानू जैन
शोध छात्रा, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

अध्यापक राष्ट्र का निर्माता कहा जाता है राष्ट्र का निर्माण नागरिकों द्वारा होता है, नागारिकों का निर्माण अध्यापक द्वारा तथा स्वयं अध्यापक शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से शिक्षक-प्रशिक्षकों द्वारा निर्मित होता है, वस्तुतः अध्यापक राष्ट्र का निर्माता, सुनागारिकों का निर्माता तथा मानव-निर्माता तो कहा ही जाता है परन्तु आज सर्वाधिक आवश्यकता है उसे मूल्य-निर्माता तथा मूल्य-दाता के रूप में देखने की। अच्छे शिक्षक छात्रों के लिए आदर्श बन जाते हैं जो कक्षा तथा कक्षा के बाहर अपने प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष व्यवहार के द्वारा ज्ञान तथा उपदेश देते है, तथा छात्र जब इन क्रियाओं मूल्यों का अनुकरण करते हैं तो कक्षा का वातावरण तो सकारात्मक होता ही है साथ ही छात्रों की दृष्टि भी सकारात्मकता से भर जाती है उनमें सहिष्णुता, सम्मान, सहनशीलता, सहयोग, स्वस्थ-दृष्टिकोण, अनुशासन, आदर, आत्म सम्मान, एकाग्रता, परिश्रम, प्रेम तथा सेवाभाव जैसे नैतिक मूल्यों का आर्विभाव और विकास होने लगता है।

प्रस्तुत शोध पत्र के अन्तर्गत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में निहित नैतिक मूल्यों की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। वस्तुतः नैतिक मूल्यों की चर्चा से पूर्व यह जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि 'मूल्य' क्या है? लगभग एक शताब्दी से 'मूल्य' शब्द का प्रयोग बहुत ही व्यापक अर्थ में किया गया है मूल्यों को जीवन से सम्बद्ध स्तरों का प्रयोग बहुत ही व्यापक अर्थ में किया गया है मूल्यों को जीवन से सम्बद्ध स्तरों तथा क्षेत्रों के समस्त सन्दर्भों के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है जिनका विस्तार शारीरिक से लेकर धार्मिक, नैतिक, अध्यात्मिक

तथा सौन्दर्यात्मक पक्ष तक होने लगा है। 'Urban' के अनुसार मूल्य वह है जो मानवीय इच्छा की सन्तुष्टि करता है। इस बात का समर्थन 'Allport' के विचारों में भी स्पष्टतः परिलक्षित होता है उनके अनुसार–"जो सन्तुष्टि उत्पन्न करे उन्हें मूल्य नाम से जाना जाता है।"[1] इस अर्थ में उपर्युक्त कथित समस्त मूल्य अध्यापक को आरम्भ से जीवन पर्यन्त सन्तुष्टि ही तो प्रदान करते हैं अर्थात् यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि शिक्षक में मूल्यों का आर्विभाव तथा विकास उसके अपने कार्य द्वारा होने वाली सन्तुष्टि का परिचायक है।

एक शिक्षक समुचित शिक्षा द्वारा विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास करता है। यथार्थतः "शिक्षक वह होता है जो विद्यार्थियों को उनकी क्षमताओं की पहचान कराये, उनके व्यक्तिगत तथा सन्दर्भ विशिष्ट अनुभवों को इस तरीके से सामने रखे कि ये राष्ट्र के सन्दर्भ में भी स्वीकृत हो।"[2] कहने का तात्पर्य है कि शिक्षकप्रदत्त इन विभिन्न नैतिक मूल्यों का ज्ञान तथा आचरण मात्र अधिगमकर्त्ता के लिए ही नहीं अपितु परिवार, परिवेश, समाज तथा राष्ट्र की उन्नति और विकास हेतु भी उपयोगी होते हैं। दरअसल, मूल्य-बोध तथा मूल्य-चेतना शिक्षकों की व्यावसायिक आचार-संहिता में उपलब्ध है इस हेतु सर्वप्रथम शिक्षकों की व्यावसायिक आचार-संहिता पर दृष्टिपात भी आवश्यक है।

शिक्षकों की व्यावसायिक आचार संहिता में निहित नैतिक मूल्य

शिक्षकों की व्यावसायिक आचार संहिता के दो स्तर हैं प्रथम, विद्यालयी शिक्षकों हेतु, द्वितीय, महाविद्यालयी तथा विश्वविद्यालयी शिक्षकों हेतु। शिक्षकों की व्यावसायिक आचार संहिता का निर्माण मूलतः मूल्यपरक चिन्तन का ही परिणाम कहा जा सकता है।

(i) "Code of Professional Ethics for school teacher"[3]

1. "Anything that yields a satisfaction is designated as value". - New frontiers in education, (International Journal) Vol. 43, No. 2., April-June 2010
2. 'शिक्षक-शिक्षा' राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र (2010) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, दिल्ली, पृ. 1
3. Code of Professional ethics for school teacher.s www.ncte-india-org

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986/1992 के अनुसरण की सिफारिश से NCERT दिल्ली ने All India Primary Teacher Federation (AIPTF), All India Secondary Teacher Federation (AISTF) तथा All India Federation of Education Associations (AIFEA) के साथ मिलकर 1997 में अध्यापक शिक्षा हेतु व्यावसायिक आचार संहिता बनाई गई। वे सभी स्तरों के विद्यालयी शिक्षकों हेतु बनाई गयी थी जिसके द्वारा शिक्षक अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों से अवगत हो सके तथा अपनी वृत्ति के प्रति निष्ठा तथा मूल्य-चेतना जागृत कर सके। इसमें शिक्षक की विद्यार्थी तथा उसके माता-पिता, सहकर्मी और समाज के प्रति दायित्वों के सम्बन्ध में चर्चा की गई है जिससे उनमें स्नेह, सम्मान, आदर कर्त्तव्यनिष्ठा, निष्पक्षता, समन्वयात्मक दृष्टिकोण, समूह भावना आदि नैतिक मूल्यों के प्रति चेतना जागृत हो सके।

(ii) "Code of Professional Ethics for University & College Teachers"[4]

UGC द्वारा 1989 में विश्वविद्यालयी तथा महाविद्यालयी अध्यापकों के लिए व्यावसायिक आचार संहिता दी जिसमें उन्होंने अध्यापक के अधिकार तथा कर्त्तव्यों अध्यापक-शिक्षार्थी सम्बन्ध, अध्यापक-सहकर्मी सम्बन्ध, अध्यापक-प्राधिकारी सम्बन्ध, अध्यापक-अशैक्षणिक कर्मियों के सम्बन्ध, अध्यापक-अभिभावक सम्बन्ध, अध्यापक-समाज सम्बन्ध की चर्चा में विभिन्न नैतिक मूल्यों का उल्लेख किया है। इस रिपोर्ट के अनुसार अध्यापक वृत्ति हेतु अपेक्षित है कि ''अध्यापक स्वभाव से शांत, धीर तथा अभिव्यक्तिशील और मनोवृत्ति से मिलनसार हो।''[5] संक्षेपतः एक अध्यापक में धैर्य, सरलता, कर्त्तव्यपरायणता, दायित्त्वबोध, सत्य, निष्ठा, आत्म सम्मान, दूसरों का सम्मान, सहयोग, समन्वय, निष्पक्षता आदि आवश्यक नैतिक मूल्यों का समावेश होना चाहिए।

---

4. Report of the task force on code of professional ethics for university and college teachers. www. ugc. as. in/oldpdf/pub/report/5pdf
5. The teachers should be calm, patient and communicative by temperament and amiable in disposition. Ibid, P.2

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम और नैतिक मूल्य

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में शिक्षणाभ्यास तथा शिक्षणकार्य के समय कई परिस्थितियों में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता अनुभूत होती है यथा-

- शिक्षण-प्रशिक्षण में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

सेवापूर्व प्रशिक्षण के दौरान अध्यापन के प्रति रूचि तथा निष्ठा परमावश्यक है सीखने में नियमितता, एकाग्रता तथा समर्पण भाव हो, स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना मौलिकता के प्रति सद्‌भाव, ईमानदारी तथा लगन, कर्त्तव्यनिष्ठा आदि मूल्यों की आवश्यकता होती है।

- विद्यार्थियों के साथ सम्पर्क बनाने में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

शिक्षण कार्य के समय विद्यार्थियों से बिना किसी धर्म, जाति, लिंग, रंग आदि का भेदभाव किये सम्पर्क करना, विद्यार्थियों को उनकी उपलब्धि हेतु प्रेरित करना, उन्हें विचार-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करना, उन्हें अपने परिवार, समाज तथा देश के प्रति कर्तव्य से अवगत कराना आदि कार्यों में आदर, सम्मान, निष्पक्षता, ईमानदारी, सत्य, निष्ठा जैसे नैतिक मूल्यों की आवश्यकता होती है।

- प्रबन्धात्मक कार्यों में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

शिक्षण कार्य के अतिरिक्त शिक्षा द्वारा व्यावसायिक दायित्वों को समयानुसार पूर्ण करना, समय पाबन्दी, प्रवेश सम्बन्धी क्रियाओं में स्पष्टता तथा निष्पक्षता, अशैक्षणिक कर्मियों के साथ भी आदरपूर्ण व्यवहार आदि क्रियाओं में विभिन्न नैतिक मूल्यों की आवश्यकता रहती है।

- मूल्यांकन सम्बद्ध कार्यों में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

शिक्षक को परीक्षा सम्बन्ध कार्यों में वस्तुनिष्ठता तथा विश्वसनीयता बनाये रहना चाहिए। चाहे योगात्मक मूल्यांकन हो अथवा संरचनात्मक सभी में पूर्ण निष्पक्षता होनी चाहिए। प्रश्न पत्र निर्माण तथा अंक प्रदान में गोपनीयता होनी चाहिए।

● सहकर्मी-सम्बन्धों में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

जैसा व्यवहार स्वयं हेतु अपेक्षित हो शिक्षक को वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। अपने सहकर्मियों के साथ वार्तालाप, व्यावसायिक गतिविधियों में सहभागिता तथा सामूहिक कार्यों में आदर, सम्मान, निष्पक्षता, न्याय, सत्य आदि नैतिक मूल्यों की आवश्यकता होती है।

● अनुसंधान कार्यों में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

शिक्षक को अनुसंधान संबंधी कार्यों में अनुचित क्रियाओं का सहारा न लेकर बौद्धिक उत्सुकतापूर्वक शोध कार्य सम्पन्न करना तथा कराना चाहिए, Cut&Paste को न अपनाकर मौलिकता में विश्वास करना चाहिए तथा सेमिनार, शोध पत्र लेखन, कार्यशाला, सम्मेलन आदि में स्वतन्त्र विचार प्रस्तुत करना चाहिए इस हेतु मौलिकता, ईमानदारी, एकाग्रता, लगन, जागरूकता जैसे मूल्यों की आवश्यकता होती है।

● व्यावसायिक दायित्व निर्वहन में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

शिक्षक का प्राथमिक कार्य 'शिक्षण' में पूर्ण समर्पण तथा ईमानदारी होनी चाहिए, वह 'Work is Worship' की भावना से ओत-प्रोत हो, उसके अपने व्यक्तिगत कार्यों तथा व्यावसायिक कार्यों में पर्याप्त पृथकता हो। एक निरीक्षक, मूल्यांकनकर्ता, शिक्षक तथा शोध निर्देशक के रूप में उसे सहयोग, सहानुभूति, आदर, तटस्थता तथा निष्पक्षता की आवश्यकता निष्ठापूर्वक दायित्त्व निर्वाह में, प्रवेश संबंधी पारदर्शिता में, परीक्षा संबंधी विश्वसनीयता बनाये रखने में, शोधकार्यों को आदर्श रूप में करने में शिक्षक को विभिन्न नैतिक नियमों की आवश्यकता अनुभूत होती है।

संक्षेपतः यह कहना उचित होगा कि ज्ञान विस्फोट के इस युग में मानव समाज अशान्ति से संत्रस्त है अराजकता हिंसा, दुराचार का वर्चस्व इतना अधिक बढ़ता जा रहा है कि मात्र सड़कों पर प्रदर्शन, हड़ताल आदि से बात नहीं बनेगी, इसके लिए आवश्यकता है मूल में जाकर उपचार करने की। जैसे मात्र पत्तियों तथा फूलों पर जल का छिड़काव करने की अपेक्षा यदि उस पौधों के मूल में जल-सींचन किया जाये तो उसका पोषण तीव्रवेग से होता चला जाता है ठीक उसी प्रकार

विद्यालय वे नर्सरी या पौधशालाएं हैं जहां अध्यापक रूपी माली द्वारा ज्ञान, सुसंस्कारों तथा नैतिक मूल्यों के बीज वपन किये जाते हैं तथा अध्यापक सकारात्मक वातवरण में सहिष्णुता, प्रेम, करूणा, तदनुभूति और सहयोग के जल से उन छोटे-छोटे पौधों को सींचता है तथा दुराग्रह अज्ञान रूपी खरपतवार को हटाता है. इस प्रकार, नैतिक मूल्यों की आवश्यकता सम्पूर्ण अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रम में अनुभूत होती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति की सार्थकता

दीपा रानी
शोध छात्रा, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का निर्माण था। व्यक्ति निर्माण से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों से है जो केवल अपने लिए नहीं अपितु समाज एवं देश के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने के लिए सचेष्ट हो। वर्तमान में शिक्षा के उद्देश्य का निर्धारण बाजार उपयोगिता को देखकर सुनिश्चित किया जा रहा है। देश में संसाधनों की कमी नहीं है, कमी है–पात्र व्यक्तियों की, जिन्हें सृजन करने में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था विफल है। अतः प्राचीन काल में प्रचलित शिक्षा के मौलिक उद्देश्यों का वर्तमान में समाहित करना एवं वर्तमान शिक्षण व्यवस्था से समन्वय स्थापित करना अनिवार्य है। प्राचीन समय में मुद्रित पुस्तकें नहीं थी। अतः पठन-पाठन का सम्पूर्ण कार्य गुरू की उपस्थिति में होता था। जिसके फलस्वरूप शिक्षण कार्य प्रातःकाल से सायंकालोपरान्त सम्यक् रीति से चलता था।

आगमन एवं निगमन विधि प्राचीन काल से चली आ रही है, जो तर्कशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र में अधिक प्रचलित रही। इस विधि का प्रयोग भूगोल, भाषा, वाणिज्य, अर्थशास्त्र आदि में आधुनिक काल में प्रचलित है। इस विधि की प्रासंगिकता प्रमाणित है और यह प्रचलित भारत की एक सिद्ध विधि है। गणितीय निष्कर्षों एवं ज्योतिष के क्षेत्र में भी इस विधि का प्रयोग प्रचलित है।

प्राचीन भारत की मानविकी विषयों की सर्वश्रेष्ठ विधि कथा पद्धति थी परन्तु कथा का कथन, गीतों में प्राचीन काल में प्रचलित रही जो शीघ्र स्मरण हो जाती है। लोक-जीवन में ऐसे भी निरक्षर और

सूरदास है, जिन्हें सम्पूर्ण राम-कथा, सूर, कबीर, आदि के पद संस्कृत के श्लोक कण्ठस्थ है, क्योंकि वे कथाएँ गीतों के प्रवाह में चलती रहती है। प्राचीन भारत कथा पद्धति सरसता होने का कारण छात्र और सामान्य व्यक्ति को बहुत प्रभावित करता है। वह उनके जीवन का एक अंग बन जाता है। आधुनिक मानविकी विषयों में कौतूहल एवं जिज्ञासा की अभिप्रेरणा प्रदान करने में समर्थ नहीं होती, इसलिए कक्षा में उदासी और निरसता के कारण विषय बोधगम्य नहीं होता यदि विषय को कथा पद्धति से प्रस्तुत किया जाये तो सफल शिक्षण विधि रूप में बोध कराती है। अतः प्राचीन भारत की इस विधि का प्रयोग किसी भी स्तर के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध है।

विज्ञान के वर्तमान प्रगति युग में विज्ञान शिक्षण के लिए निर्धारित व्याख्यान, पाठ्य-पुस्तक, समस्या, योजना, प्रदर्शन, प्रयोगशाला, पर्यटन तथा ह्यूरिस्टिक प्रणाली आदि अनेक विधियों की परिगणना शिक्षाविदों ने की है। परन्तु ह्यूरिस्टिक प्रणाली प्राथमिक कक्षा के छात्रों को अनुसंधान द्वारा नहीं बतायी जा सकती है। यह प्रणाली केवल उच्च कक्षाओं में ही प्रयोजनीय हो सकती है। अल्पायु बालकों से यह आशा करना की वह स्वयं ही तथ्यों की छान-बीन कर निष्कर्ष निकाल लें, एक असम्भव बात है। यह विधि पर्याप्त व्यय साध्य भी है जो भारत जैसे देश के लिए सम्भव नहीं है।

प्राचीन भारतीय शिक्षण विधि में इसका समाधान प्राप्त होता है। प्राकृतिक विज्ञान का शिक्षण गुरूकुलों में प्रकृति के प्रत्यक्ष सानिध्य में रहने, उसके गतिविधियों में प्रत्यक्षतः पलने और परिपोषित होने से प्रकृति द्वारा उत्पन्न समस्याओं का समाधान और स्वयं 'कस्मैदेवा य हविसा विधेम्' से प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को समझने, अन्वेषण करने और उसे आवश्यक रूप से सम्प्रेषित करने का कार्य ऋषि के सानिध्य में करता था। भिक्षाटन, पर्यटन, परिसंवाद, शास्त्रार्थ, अरण्यजीवन और प्रकृति की प्रयोगशाला में छात्र स्वयं अन्वेषण करता रहता था। इसलिए भारतीय चिन्तन में प्रकृति से सहयोग समालोचन एवं उसके संरक्षण के तत्त्व प्राप्त होते है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था मे ऐसे पाठ्यक्रमों का सर्वथा अभाव है, जिसमें ऐसे व्यक्ति का सृजन हो सके, जो देश एवं समाज के प्रति सजग, सचेत तथा संवेदनशील हो। इस सन्दर्भ में प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धतियों का उपयोग सार्थक है। आधुनिक शिक्षण विधियों में ऐसी कोई विधि नहीं है जो अपने विनयानुशासन की स्थापना कक्षा और विद्यालय में करा सके। अनुशासन की समस्या, आज प्राथमिक कक्षा से लेकर उच्च कक्षाओं तक चिन्तनीय विषय बन गयी है। भौतिक उपकरणों द्वारा दी जा रही प्रशिक्षण विधियाँ, अनुशासन स्थापना में पूर्णतः विफल हो गयी है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और राज्य सरकारों द्वारा विद्यालयों महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के अनुदान पर टेलीविजन, रेडियो प्रदान किया गया, परन्तु टेलिविजन के कार्यक्रम को लेकर अनेक विद्यालयों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी। शिक्षण के इन भौतिक उपकरणों ने समस्याएँ अधिक उत्पन्न की है। श्रव्य, दृश्य उपकरणों से शिक्षण देने की पद्धति व्यावहारिक धरातल पर छात्रों में विनय अनुशासन स्थापित नहीं कर सकी। प्राचीन भारतीय शिक्षण विधियों में आचार्य स्वयं में सभी विधियों का समन्वित और जीवन्त स्वरूप में अपने आचार-विचार से विनय और अनुशासन का मार्ग प्रशस्त करता था। प्राचीन गुरुकुलों में अनुशासनहीनता की कोई समस्या ही नहीं थी। क्योंकि यहाँ विद्यालय का सम्पूर्ण प्रबन्धन गुरू-शिष्य संचालित करते थे। वहाँ कोई छात्र संघ नहीं था वहाँ कुल और परिवार की भावना थी इसलिए अनुशासन की स्थापना में प्राचीन में प्राचीन गुरूकुल व्यवस्था की प्रासंगिकता का समायोजन आधुनिक शिक्षण विधियों में करना होगा।

आधुनिक शिक्षाविदों के सम्मुख समस्याएँ हैं कि शिक्षा शिष्य केन्द्रित, शिक्षक केन्द्रित, पाठयक्रम केन्द्रित, शिक्षण विधि केन्द्रित, शिक्षा उद्देश्य केन्द्रित हो अथवा किसी अन्य शासन केन्द्रित, अर्थ केन्द्रित, व्यवसाय केन्द्रित शिक्षा होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में आयु, प्रतिभा, वर्ग स्तर के आधार पर शिक्षण विधियों का निर्माण और निर्धारण देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार किया जाता रहा है। अतः प्राचीनता और नवीनता में समन्वय करना होगा। जैसे पुरातन की अंगुली पकड़कर नूतन खड़ा होता है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि

भारत की वह प्राचीन शिक्षण पद्धति जो देश एवं समाज के प्रति व्यक्ति में समर्पण का भाव भरती थी, उसे पाठ्यक्रम एवं विधि तंत्र में पुर्नजीवित करना अपरिहार्य है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षण पद्धतियों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता से सम्बन्धित उपरोक्त सम्यक् विश्लेषण के बाद निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान शैक्षिक चुनौतियों के समाधान की पर्याप्त सम्भावनाएँ प्राचीन शिक्षण पद्धति में विद्यमान है। परन्तु अभी तक प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में निहित क्षमताओं का उपयोग नहीं हुआ है। आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान देश की दशा एवं दिशा को देखते हुए अध्ययन में वर्णित प्राचीन भारतीय विधि तन्त्र एवं पाठ्यक्रम का वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था में समावेश किया जाए। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धतियों का विवेचना एवं विश्लेषण से सामान्य निष्कर्ष निकाल कर उन्हें वर्तमान समय में लाना अनिवार्य है। वस्तुतः किसी भी देश में शिक्षा, स्थानिक परिवेश एवं आवश्यकता के अनुरूप होनी चाहिए। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने इस देश की रूचि एवं प्रकृति के अनुसार शिक्षण पद्धतियों का अविष्कार किया था। परन्तु दुर्भाग्य से स्वतंत्र भारत में शिक्षा को तय करते समय भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों की अवहेलना की गयी। अतः आज आवश्यकता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धतियों का मंथन किया जाए एवं उन्हें समसामयिक बनाया जाए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मूल्यशिक्षा, डॉ. हेमंन्द खण्डाई, ए.पी.एच. पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2001.
2. भारतीय शिक्षापद्धति और उसकी समस्याएँ, मंजू मिश्रा, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2001.
3. शिक्षा के आयाम, डॉ. शंकर दयाल शर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली 2005.
4. समाज शिक्षा के आधार, डॉ. एस.के. मंगल, आर.ए. बुक डिपो नई दिल्ली 1986.
5. प्राचीन भारत में शिक्षा व्यवस्था, डॉ. सुनीता सिंह, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2006.

आधुनिक समाज में भाषा का महत्व एवं भाषा शिक्षण में नवाचार

विकास
शोध छात्र, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

आजकल शिक्षा में बदलाव की गूँज के साथ-साथ नैतिक शिक्षा की पैरवी करने वालों के तर्कों की बौछार भी हो रही है। एक अलग विषय के रूप में नैतिक शिक्षा को पढ़ाने की बात कहने वाले यह भूल रहे हैं कि न तो अब तक की शिक्षा व्यवस्था व दूसरे विषयों का उद्देश्य मनुष्य को अनैतिक बनाना है और न ही अलग विषय के रूप में नैतिक शिक्षा पढ़ाने से छात्रों में नैतिकता व मूल्य भरे जा सकते हैं। छात्रों के व्यवहार में नैतिकता की कमी, आक्रोश, भय, दुश्चिंता, ईर्ष्या आदि दुर्गुणों का समावेश आधुनिक जीवन शैली की देन है। समाज के सभी लोगों की प्रवृत्ति भौतिकता की ओर झुक रही है। हर कोई धन को अधिक महत्त्व देने लगा है। सभी लोग अधिकाधिक आय वाले व्यवसाय प्राप्त करने की कतार में लगे हैं। आज के मनुष्य की आवश्यकताएँ विकराल रूप धारण कर चुकी हैं। मियाँ-बीबी दोनों कमाते हैं फिर भी एक-दो बच्चों के छोटे-से परिवार की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो रही हैं। धन कमाने की होड़ में लगे माता-पिता यह भूल जाते हैं कि असली धन तो उनके बच्चे हैं जिनके मानवीय पक्ष पर उनका ध्यान ही नहीं होता। वे कैसी भाषा सीख रहे हैं? कैसे संस्कार अर्जित कर रहे हैं? यह जानने की फुरसत नहीं होती। यदि वे इस ओर ध्यान दे भी दें तो बच्चे के व्यवहार से नाखुश होने पर उसे संस्कारित करने के लिए समय नहीं और न ही तरीका। माता-पिता के घर में न होने पर बच्चे टी.वी और इंटरनेट से चिपके रहते हैं। ये उपकरण और सुविधाएँ बच्चों का विकास नहीं विनाश अधिक कर रही हैं। यदि इसे स्कूली शिक्षा से जोड़कर देखें तो प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों के दिमाग में गणित और विज्ञान जैसे

विषय जबरदस्ती ढूँस देना चाहते हैं। समाज में भारतीय भाषाओं और उनके शिक्षकों की निरंतर उपेक्षा हो रही है। इससे भाषा के अन्तर्गत पढ़ाए जाने वाले साहित्य से व्यक्तित्व में जिन मानवीय गुणों, कल्पनात्मकता, सृजनात्मकता का विकास होता था, मानवीय संबंधों, सामाजिक परिस्थितियों और समस्याओं की प्रकृति व समाधान की समझ विकसित होती थी। उसमें बाधा उत्पन्न हुई है। आधुनिक समाज के छात्रों का चरित्र निर्माण, मानवीय मूल्यों का विकास, रिश्तों की समझ, नेतृत्व के गुणों का विकास करना उद्देश्य नहीं है। इस युग में एक ही ध्येय रहा गया है स्वयं खूब पैसा कमाना और अपने बच्चों को भी अधिकाधिक धनोपर्जन में सक्षम बनाना। जो विषय, पाठयक्रम, संस्थान या शिक्षक अपने विद्यार्थियों को जितना अधिक पैसा कमाने में सक्षम बना रहा है उसकी उतनी अधिक माँग है। छात्र स्वयं इस आकर्षण से बच नहीं पाते हैं। छात्र भी भाषा और सामाजिक अध्ययन के विषयों में रुचि नहीं ले रहे क्योंकि भावी पीढ़ी जब समाज में धन पद का बोलबाला देखती है तो वह भी जटिल विषयों को सीख उसके माध्यम से अत्यधिक धन कमाना चाहती है, मूल्य नहीं। समाज स्वयं ही **'बाप बड़ा न भैया सबसे बड़ा रुपैया'** वाली अपसंस्कृति के बीज बच्चों में रोप रहा है तो भावी पीढ़ी से सामाजिक नैतिक सांस्कृतिक मूल्यवान होने की अपेक्षा कैसे की जा सकती है। मूल्यों से समाज बँधता है और इसके अभाव में बिखर जाता है। भले ही उस समाज में कितने ही अमीर उद्योगपति, प्रतिष्ठित माने जाने वाले व्यवसाय के लोग या अपने विषय के लब्धप्रतिष्ठा विषय-विशेषज्ञ ही क्यों न रहते हों। यह परम आवश्यक है कि समाज में सामाजिक मूल्य हों और लोग मूल्यों से ओत-प्रोत होकर परस्पर व्यवहार करें। तभी सामाजिक समस्याओं का निराकरण होगा। आपसी वैमनस्य दूर होंगे। लोग एक-दूसरे के सुख-दुख के साथी होकर जीवन का रसास्वादन कर सकेंगे।

विगत 5-10 वर्षों से शिक्षा व्यवस्था में मूल्यांकन प्रक्रिया के लिए सतत व्यापक मूल्यांकन पद्धति अपनाने की पुरजोर कोशिश हो रही है। केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड व कुछ अन्य शिक्षा बोर्ड ने तो इसे लागू भी कर दिया है। इस मूल्यांकन पद्धति के गुण-दोष परखने में

अभी समय लगेगा परन्तु बच्चों के सर्वांगीण विकास के जिस मुख्य उद्देश्य को लेकर यह प्रक्रिया अपनाई जा रही है उसकी पूर्ति करने में भाषा का विशेष स्थान है। यहाँ भाषा का अर्थ स्पष्टत: दो रूपों में व्यक्त किया जा सकता है। प्रथम सम्प्रेषण क्षमता द्वितीय साहित्य के माध्यम से मूल्यों का विकास। इस मूल्यांकन प्रक्रिया में यह कहा गया कि विद्यार्थी विषय को रटें नहीं समझें, समझाएँ तथा तर्क प्रस्तुत करें। यह कार्य भाषा के प्रथम रूप से सहज एवं संभव है। छात्र को विज्ञान (भौतिक, रसायन, जीव, कम्प्यूटर आदि) गणित, सामाजिक-अर्थशास्त्र विषय की समझ है तो भी वह सम्प्रेषण क्षमता के बिना अपना मत पुष्ट नहीं कर सकता, अपने पक्ष में तर्क प्रस्तुत करने में भी कठिनाई महसूस होगी। कदाचित् सम्प्रेषण क्षमता के अभाव में उसकी समाजोपयोगी बात भी प्रसारित न हो सकेगी। इससे समाज की लगातार हानि होगी। लाभ होने से अधिक वक्त लगेगा। भाषा के माध्यम से छात्रों में सम्प्रेषण कौशल का विकास करने का पूरा दायित्व भाषा शिक्षकों पर है। सम्प्रेषण कौशल वह शक्ति है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व में चार चाँद लगाती है। चेहरे पर लालिमा व आत्मविश्वास झलक आता है। आजकल पर्सनेलिटी डेवलपमेंट प्रोग्राम/डिप्लोमा के नाम पर दुकान चलाने वाले अभ्यर्थी को पूर्व निर्धारित 50-100 वाक्य अंग्रेजी भाषा में रटवाकर मोटी वसूली कर रहे हैं। इससे अभ्यर्थियों में न तो सम्प्रेषण कौशल विकसित होता है और न ही विषय का ज्ञान, भाषा की गहराई तो उनके लिए दूर की कौड़ी होती है। शिक्षक ही छात्रों में सम्प्रेषण के पौधे को सींच सकता है। विद्यालयी जीवन में सीखी गई भाषा व उसे प्रयोग करने की कुशलता से ही सम्प्रेषण क्षमता का विकास संभव है। इसके अभाव में इस बेरोजगारी के युग में सभी लोग शिक्षा की दुकान चलाने वाले उन लोगों से लूटे जाते रहेंगे। जो पर्सनेलिटी डेवलप करने का दावा करते हैं।

भाषा का दूसरा रूप है साहित्य। साहित्य के माध्यम से व्यक्तियों में वे उच्च गुण रोपित किए जा सकते हैं जिससे वे सच्चे अर्थों में मानव और देवतुल्य बन जाते हैं। साहित्य में कविताएँ, कहानियों से सृजनशीलता (क्रियेटीविटी) का विकास होता है। यह सृजनात्मकता समाज तथा विज्ञान दोनों के लिए आवश्यक है। अधिकतर कविताएँ

कल्पनात्मक होती है। इसलिए इन्हें पढ़कर बच्चे लीक से हटकर सोचना शुरू करते हैं। प्रो. अनिल गुप्ता का मानना है कि कविताओं से ही बच्चों में नया सोचने की आदत का विकास होता है। यदि बच्चे एब्सर्ड नहीं सोच सकते तो वे कभी भी क्रियेटिव नहीं बन सकते वे हमेशा एक सीध में सोचेंगें। यह उनके जीवन व समाज की जटिलता तथा विज्ञान के लिए कदापि ठीक नहीं हो सकता। कहानियों से संवदेनाएँ मजबूत होती हैं। दूसरों के सुख-दुख को समझने तथा उनकी सहायता करने की भावना का विकास निस्संदेह कहानियों से हो सकता है। प्रसिद्ध रंगकर्मी नादिरा बब्बर के अनुसार 'हर बच्चे के अन्दर अच्छी भावनाएँ और संवेदनाएँ काव्य का उद्देश्य ही राम आदि के समान प्रवृत्ति उत्पन्न करना है रावण आदि के समान नहीं (रामादिवत् प्रवर्तितव्यम् न रावणादिवत्) आधुनिक जटिल जीवन शैली में जीवन कौशल (लाइफ स्किल्स) होना परम आवश्यक है। अन्यथा कदम-कदम पर हताशा, असफलता, दूर होते रिश्ते, एकाकीपन, काम का बोझ हमेशा अवसाद का शिकार बनाने के लिए तैयार रहते हैं। बच्चों में लाइफ स्किल्स विकसित करने के लिए पौराणिक कथाओं से अच्छा स्रोत कुछ नहीं हो सकता। धैर्य, क्षमा, अनात्मश्लाघ्ना, सहिष्णुता, परपीड़ाबोध जैसे गुणों का विकास पौराणिक कथाओं में भली-भाँति किया जा सकता है।

मनुष्य के नैतिक व्यक्तित्व का सीधा संबंध उसकी मातृभाषा के साहित्य से है। जिसने बाल्यावस्था में साहित्य का जितना रसास्वादन किया होगा उसका नैतिक व्यक्तित्व उतना ही निखरा होगा। इसके लिए विद्यालयी पाठयक्रम में भाषा विशेषतः मातृभाषा को महत्व देने की आवश्यकता है। भाषा का शिक्षण जितना रोचक, ज्ञानवर्धक तथा अन्त:क्रियात्मक होगा भाषा व साहित्य पढ़ने में छात्रों की रुचि उतनी ही बढ़ेगी। जिन विषयों को छात्र रुचिपूर्वक पढ़ते है उन विषयों का ज्ञान सहज ही उनके मन-मस्तिष्क में बैठ जाता है। भाषा विषयों में अच्छा प्रदर्शन वाले छात्रों को पुरस्कार देकर प्रोत्साहित करना चाहिए। भाषाई कौशलों में प्रवीण छात्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए। किसी विषय में छात्रों की रुचि कई तथ्यों पर निर्भर करती है जैसे-

- जीवन में विषय की प्रासंगिकता

- विषय का स्तरानुकूल होना
- उस विषय में छात्रों का पूर्वज्ञान
- अध्यापक का व्यक्तित्व
- शिक्षण विधि आदि

अन्तिम बिंदु होते हुए भी शिक्षण विधि बहुत महत्वपूर्ण तत्व है। शिक्षक को शिक्षण विधि का चुनाव बहुत सोच समझकर करना चाहिए। यह विषय के अनुसार इस प्रकार प्रवृत्त हो कि विषय को बोझिल बनाए बिना छात्रों को विषयाधिगम यूँ ही हो जाए जैसे कोई रुचिकर पेय पी रहे हों। शिक्षकों का यह परम कर्तव्य है कि छात्रों के मन-मस्तिष्क की कोरी स्लेट पर साहित्य के माध्यम से मूल्यों की ऐसी छाप अंकित कर दें जिससे उन्हें जीवन संघर्षमयी नहीं रसाप्लावित नजर आने लगे। समाज के सभी लोग असहाय और जरुरतमंद की सहायता के लिए तत्पर नजर आएँ और सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए अपने को अगुआ समझें। छात्रों में इन गुणों का विकास करने के लिए भाषा शिक्षकों को बदलते समय के अनुरूप विषयानुकूल शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए। जैसे वाद-विवाद, समूह चर्चा, पर्यटन, प्रत्यक्ष विधि, आस-पास की घटनाओं की समालोचना आदि के माध्यम से ऐसे प्रकृष्ट गुणों का विकास किया जा सकता है। आधुनिक युग मे शिक्षा में तकनीकी का प्रयोग बहुत कारगर सिद्ध हुआ है। विषयानुकूल प्रसंगवश चलचित्र, रेडियो, टेपरिकार्डर, आकाशवाणी, विभिन्न संस्थानों द्वारा प्रसारित शिक्षण कार्यक्रमों का प्रयोग अभ्यास कार्य के लिए करना चाहिए। छात्रों में किसी विशेष गुण के विकास के लिए योजना भी बनानी चाहिए। जैसे—सत्य का गुण विकसित करने के लिए इससे संबंधित कहानियों की शृंखला निश्चित समय अन्तराल में आयोजित करनी चाहिए। इसके लिए असत्य से होने वाले दुष्परिणामों को रेखांकित करें। दैनिक जीवन व आस-पास में घटित इस प्रकार की घटनाओं से परिचित करवाकर तर्क सहित पुष्टि करें।

छात्रों में ऐसे प्रकृष्ट गुणों का विकास करने के लिए योग्य भाषा शिक्षकों की आवश्यकता है। इसके लिए भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण संदर्भ में

पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, सूक्ष्म-शिक्षण, भाषा शिक्षण कौशल आदि को प्रभावी ढंग से विकसित करने की अपेक्षा है। छात्राध्यापकों को भाषा शिक्षण हेतु तैयार करने के लिए अग्रलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

सूक्ष्म शिक्षण–अन्य सभी विषयों के शिक्षण की अपेक्षा भाषा शिक्षण में सर्वाधिक और लगभग सभी शिक्षण कौशलों की आवश्यकता होती है। अतः छात्राध्यापक में सभी शिक्षण कौशलों का विकास करने के लिए प्रत्येक शिक्षण कौशल का समुचित अभ्यास 4–5 बार सूक्ष्म शिक्षण द्वारा करवाना चाहिए। छात्राध्यापकों की गलतियों को सुधारने के लिए तर्क सहित उदाहरण देने चाहिए। शिक्षक-प्रशिक्षकों को अपने शिक्षण में सभी शिक्षण कौशलों का प्रयोग करना चाहिए तथा साथ-साथ यह बताना चाहिए कि इस विषय के अनुसार यही शिक्षण कौशल क्यों प्रयोग किया गया, अन्य कौन-से कौशल प्रयोग किये जा सकते हैं और कौन-से नहीं।

आँचलिक भाषा एवं देशज शब्दों का प्रयोग और विश्लेषण– छात्राध्यापकों में यह योग्यता विकसित करने के लिए पाठयक्रम में आवश्यक स्थान दिए जाने की आवश्यकता है। आँचलिक एवं देशज शब्दों का विश्लेषण करना सीखने के लिए पाठ योजना में भी स्थान मिलना चाहिए। इसके लिए इसे अस्थाई सोपान के रूप में सम्मिलित किया जा सकता है। ऐसा करने से अध्यापकों में पाठयोजना के प्रति ललक उत्पन्न होगी और उनकी शिक्षण पूर्व समुचित तैयारी हो सकेगी। इससे छात्रों को आँचलिक संस्कृति, वहाँ की भाषा, शब्दों के विभिन्न परिवेश के अर्थ जानने में सुगमता होगी जो कि छात्रों के व्यक्तित्व में क्षेत्रीय व सांप्रदायिक सद्‌भाव तथा विभिन्न संस्कृतियों को समझाने की योग्यता का विकास करने में सहायक सिद्ध होगी।

पाठ योजना उद्देश्य परक होनी चाहिए–छात्राध्यापकों में ऐसी दृष्टि का विकास किया जाना चाहिए कि पाठ योजना का प्रत्येक सोपान तैयार करने में, शिक्षण विधि, सहायक समाग्री आदि का चुनाव करते समय पाठ के उद्देश्यों की पूर्ति ध्यान में रहे। इसके अभाव में भाषा शिक्षण अति नीरस एवं सरलार्थ मात्र होकर रह गया है। जैसे–मुंशी

प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'नमक का दरोगा' कहानी का उद्देश्य कर्तव्यबोध विकसित कराना है। इस कहानी का शिक्षण करते समय व्याख्या कर्तव्यबोध प्रेरित होनी चाहिए। अपने कर्तव्य का पालन करने पर वंशीधर को नौकरी से हाथ धोना पड़ता है। जिस पं. अलोपीदीन को उसने गिरफ्तार किया था उसी के यहाँ प्रबन्धक का पद प्राप्त किया फिर भी कहानी के अंत तक वंशीधर को नायक के रूप में पेश करना चाहिए। यहाँ पं. अलोपीदीन का धन-बल, सामाजिक सरोकार तथा अधिकारियों-कर्मचारियों पर दबाव गौण है। वंशीधर की देशभक्ति पर भी प्रश्न नहीं उठाए जा सकते, यहाँ पर पात्र कर्तव्यबोध का दृष्टांत पेश करता है। इस कहानी के प्रयोजना कार्य के रूप में भी पूर्वकाल में अपने कर्तव्य पूर्ति के लिए प्राणों की भी परवाह न करने वाले चरित्रों के विषय में जानकारी एकत्र करवायी जा सकती है।

मूल्य परक प्रश्न निर्माण की योग्यता विकसित करना—भाषा में छात्रों में मूल्य रोपित किए जाते हैं। व्याख्यान विधि से शिक्षण करके बताए गए मूल्यों की अपेक्षा प्रश्नोत्तर विधि से बोध करवाए गए मूल्य बालकों को अपने व्यवहार पर अधिक मंथन करने का अवसर देते हैं। 'इस कहानी से क्या सीख मिलती है' कहानी के अंत में यह प्रश्न सदियों से पूछा जाता रहा है। अब आवश्यकता है अन्य विषयों की तरह मूल्य को सामाजिक, आर्थिक, व्यक्तिगत, पारिवारिक आदि शाखाओं में बाँट कर पाठ के अंशों के आधार पर प्रश्न निर्माण करने की। प्रश्नोत्तर विधि से आत्मसात् किए गए विभिन्न मूल्य बालक में एकीकृत होकर उसके व्यक्तित्व को प्रकृष्ट करने में सहायक होंगे।

नई पीढ़ी में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना विकसित करने एवं विभिन्न जीवन कौशलों का विकास करने के लिए जीवन के प्रत्येक पहलू को छूना अति आवश्यक हो गया है। इससे बालक भावी उत्तरदायित्व के लिए तैयार होंगे और विद्यालयी जीवन में सीखे गए मूल्यों के निर्देशन में अपने उत्तरदायित्व का वहन करने में सक्षम होंगे।

भाषा के साथ अन्य विषयों के बीच आंतरिक अनुशासन स्थापित करने की योग्यता—चूँकि भाषा शिक्षा के द्वारा सर्वांगीण

विकास की है इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक विषय विषयी को बोध करवाकर उसके व्यक्तित्व में विलीन हो जाए। प्रत्येक अलग-अलग विषयों द्वारा सीखी गई बातें बालक के जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करती है। भाषा-साहित्य का शिक्षण करते हुए उसे सामाजिक अध्ययन, विज्ञान, गणित आदि से जोड़ने की योग्यता छात्राध्यापकों में विकसित की जानी चाहिए। इसके लिए अध्यापक शिक्षा के भाषा शिक्षण पाठयक्रम में कुछ वैज्ञानिकों की जीवनियाँ, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक विषयों से ओत-प्रोत कहानियाँ, उपन्यास या किसी विशेष लेख के अंश सम्मिलित किए जाने चाहिए। इस प्रकार के पाठों का आंतरिक अनुशासन की दृष्टि से विश्लेषण करने की योग्यता छात्राध्यापकों में विकसित की जानी चाहिए। छात्राध्यापकों में ऐसी योग्यता विकसित करने के लिए शिक्षक प्रशिक्षकों को भी प्रशिक्षित करना चाहिए। आवश्यकता होने पर विशेषज्ञों की सहायता ली जानी चाहिए।

इस प्रकार सामाजिक मूल्यों के विकास का रास्ता विद्यालय की चारदीवारी से होकर जाता है जिसमें भाषा शिक्षक तथा भाषा शिक्षण में प्रयुक्त नवाचार की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. साहित्य अमृत, मासिक हिन्दी साहित्य पत्रिका, सितम्बर, 2012
2. विश्वनाथ - साहित्यदर्पण
3. डॉ. उदयशंकर झा - संस्कृतशिक्षणम्
4. सन्तोष मित्तल - हिन्दी शिक्षण

अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रासंगिकता

चेतन वेदिया
शोध छात्र, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

एषु सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥

(कठोपनिषद्, 1/3/12)

शिक्षण एवं प्रशिक्षण से किसी प्रसंग से अथवा किसी परिस्थिति द्वारा छात्रों में होने वाला सार्थक परिवर्तन **अधिगम** है। औपचारिक परिस्थितियों में अध्यापक छात्र के लिए शिक्षा का क्रियान्वयन करता है। शिक्षक शिक्षण का एक पक्ष है जो अपने ज्ञान को अध्येताओं के लिए सम्प्रेषित करता है। पर अपने इस अनुष्ठान में वह कितना सफल होता है, इस तथ्य का ज्ञान उसे मूल्याकंन के द्वारा ही प्राप्त होता है।

शैक्षिकमूल्यांकन एक विधा है, जिसके द्वारा शिक्षक शिक्षार्थियों के अधिगम का परीक्षण कर प्रतिपुष्टि प्राप्त करता है। शैक्षिक मूल्यांकन का सम्प्रत्यय अतीव प्राचीनकालीन प्रतीत होता है क्योंकि भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही अन्तेवासियों के मूल्याकंन की अनेक विधाएँ प्रचलित थी। श्रौत-स्मार्त पद्धतियों के अन्तर्गत मौखिक परीक्षा, शलाका परीक्षा, व्याख्या विधा, परस्पर शास्त्रार्थ, शास्त्रीय प्रतिस्पर्धा, मूलपाठ श्रवणविधा कहीं पर तो व्यवहार निरीक्षण मात्र से भी छात्रों के अन्तर्निहित ज्ञान का परीक्षण किया जाता था। कालिदास ने भी अपने ग्रन्थ अभिज्ञानशाकुन्तलम् में व्यवहार परीक्षण के तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है कि-

अतः परीक्ष्य कर्त्तव्यः विशेषात् सङ्गतंरहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ॥

रघुंवश में कहा है कि-

समाप्तविद्येन मया महर्षिर्विज्ञापितोऽभूत् गुरुदक्षिणायै।
स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवापगणयत् पुरस्तात् ॥

परन्तु प्राचीनकालीन सभी मूल्याङ्कन पद्धतियाँ शिक्षक केन्द्रित थी। कालपरिवर्तन स्वरूप शिक्षा की शिक्षणाधिगम प्रक्रिया में यथोचित परिवर्तन हुए। प्रजातान्त्रिक शिक्षण के अन्तर्गत शिक्षा का मूल स्वरूप बालकेन्द्रित हो गया। वर्तमान बालकेन्द्रित शिक्षण में शिक्षक व औपचारिक पाठ्यक्रम की भूमिका गौण है।

शिक्षाणाधिगम प्रक्रिया मान्यताओं के अनुसार मूल्याङ्कन प्रक्रिया भी परिवर्तित हुई। वर्तमान शैक्षणिक मान्यताओं के अनुसार मूल्याङ्कन का उद्देश्य आज न केवल छात्र में विषय अवबोध का परीक्षण है अपितु नवीन मान्यताओं के अनुसार छात्र के विषयावबोध के साथ-साथ उसकी रुचि, अभिवृत्ति, अभिक्षमता, व्यक्तित्व, व्यवहार, समायोजन, सामाजिकता, सर्जनात्मकता इत्यादि चरों का सकल एवं सतत मूल्याङ्कन से है। कहा भी गया है कि-

The process of assessing the student's progress in achieving objectives related to scholastic and co-scholastic domain is called comprehensive evaluation, It has been observed that usually the scholastic area such as knowledge and understanding of the facts, concepts, principles etc. Of a subject are not given adequate attention. For making the evaluation comprehensive, the scholatic and co-scholastic both should be given importance. Simple and manageable means of assessment of co-scholastic aspects of growth must be included in a comprehensive evaluation scheme.

सतत व्यापक मूल्याङ्कन का तात्पर्य

जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया मे मूल्याङ्कन की सातत्यता एवं व्यापकता को अङ्गीकार किया गया है। **"सतत व्यापक मूल्याङ्कन एक विद्यालय आधारित मूल्याङ्कन प्रणाली है जो छात्रों के विकास एवं व्यक्तित्व के सभी पक्षों का मूल्याङ्कन करती है।"**

यह एक विकासशील प्रक्रिया है जो दो उद्देश्यों पर आधारित है।

इन उद्देश्यों में पहला तो मूल्याङ्कन की सततता है दूसरा केन्द्र आधारित अधिगम और व्यावहारिक सम्प्रत्ययों से सम्बन्धित है। सतत मूल्याङ्कन से तात्पर्य है कि छात्र का शैक्षिक मूल्याङ्कन किसी समय विशेष में न होकर औपचारिक, अनौपचारिक परिस्थितियों में निरन्तर चलता रहे।

प्रस्तुत प्रकरण में सतत से आशय है कि छात्रों की वृद्धि एवं विकास सम्बन्धी अवस्था को जानकर मूल्याङ्कन प्रक्रिया निरन्तर वर्षपर्यन्त छात्रों की अवसरपूर्ण सहभागिता को निर्धारित करती है। यहाँ आशय है कि मूल्याङ्कन की निरन्तरता (Regularity of Asessment) आवधिकी प्रवाहशीलता (Frequency of unit testing) अधिगम अन्तरालों का निदान (Diagnosis of learning gaps) और उचित मापकों का उपयोग (Use of creative measures) अध्यापक के साक्षित्व में प्रमाणपूर्वक अङ्कन और पुनर्बलन, छात्रो में स्वत: मूल्याङ्कन (Self evaluation) का प्रभावोत्पादन करते है।

मूल्याङ्कन की व्यापकता से आशय है कि मूल्याङ्कन छात्र के किसी गुण अथवा विषय ज्ञान से ना जुड़कर उसकी शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, संज्ञानात्मक, बौद्धिक, सामाजिक, अध्यात्मिक क्षमताओं का सार्थक अनुमान कर सके।

'व्यापक' मूल्याङ्कन अर्थात् ऐसी प्रक्रिया जहाँ छात्र के वृद्धि और विकास के पक्षों का विद्यालयीय महाविद्यालयीय पक्षों (Scholastic & the Co-Schlolastic aspects) के आधार पर मूल्याङ्कन हो सके। यह प्रक्रम मानक उपकरणों के प्रकारों को विविध परीक्षणीय और अपरीक्षणीय प्रविधियों और अधिगम उद्देश्यों को छात्रों के विकास के क्षेत्र के अनुसार निर्धारित करती है। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड संस्था के अनुसार सतत व्यापक मूल्याङ्कन से आशय है कि-

Continuous and Comprehensive Evaluation (CCE) refers to a system of school-based evaluation of students that covers all aspects of students development.

सतत व्यापक मूल्याङ्कन की विशेषताएँ

सतत व्यापक मूल्याङ्कन के प्रभाव से छात्र स्वाभाविक

क्षमताओं के अनुसार अधिगम के लिए स्वतः स्वतन्त्र होते है। इससे छात्रों में विश्लेषणात्मक चिन्तन की (Abstract Thinking), प्रत्यक्षीकरण की, तथ्यों को अर्थपूर्ण अवगहन की क्षमता विकसित होती है। सतत व्यापक मूल्याङ्कन से अनुभवों के प्रेक्षणों की क्षमता (Through Experience), करके सीखने की कला, अनुसंधान की प्रवृत्ति, परस्पर समूह चर्चा, वाद-विवाद का कौशल, प्रश्नकरण, चिन्तन, वैयक्तिक विचार सम्प्रेषण एवं लेखन की क्षमता बढ़ती है।

सतत व्यापक मूल्याङ्कन में छात्र की संज्ञानात्मक परिपक्वता का विकास होता है। इसके अन्तर्गत वास्तविक अधिगम का प्रशासन होता है। इसके द्वारा कण्ठस्थीकरण की और मनोवैज्ञानिक शैक्षिक विधियों के विपरीत छात्रों से स्वतः अधिगम (Self Learing) की मनोरञ्जनात्मक अधिगम की प्रणाली विकसित की जाती है। सतत व्यापक मूल्याङ्कन कार्यक्रम ज्ञान की आत्मसातीकरण (Internalization of Knowledge) की प्रक्रिया है। जहाँ छात्र का अस्तित्व सबसे प्रमुख है। यहाँ ज्ञान को रुचियों और संज्ञानात्मक क्षमताओं के अनुसार औपचारिक, अनौपचारिक परिस्थितियों में शिक्षण को प्रशासित करते है। जैसा कि परीक्षा सुधार में कहा भी गया है-

Examination are an indispensable part of educational process as some form of assessment is necessary to determine the effectiveness of teaching learning process and their internalization by learners.

सतत व्यापक मूल्याङ्कन के कार्यक्रमो का स्वरूप

छात्रों के वाञ्छनीय व्यवहार के अन्तर्गत उनके ज्ञान, अवगमन क्षमता, अन्तर्बोध, अनुप्रयोग, मूल्याङ्कन, विश्लेषण, अनौपचारिक परिस्थितियों में सर्जनात्मक रीति से अपनी विषय योग्यताओं को समुपस्थापित करने की क्षमता विद्यालयीय उद्देश्यों के अन्तर्गत आते हैं।

इसके अलावा अध्येताओं के वाञ्छनीय व्यवहार में उनके जीवनकौशल, अभिवृत्ति रुचि, मूल्य,पाठ्य सहगामी क्रिया और उनका शारीरिक स्वास्थ्य सहविद्यालयीय सम्प्रत्यय के अन्तर्गत आता है।

छात्रों का विद्यालयीय व सहविद्यालयीय उद्देश्यों के अनुरूप निष्पत्ति का मूल्याङ्कन ही व्यापक मूल्याङ्कन (Comprehensive Evaluation) है। मुख्यत: विद्यालयीय क्षेत्रों के अन्तर्गत अधिगम कर्त्ताओं के ज्ञान, तथ्यों के अन्तर्बोध, सम्प्रत्ययों, सिद्धान्तों और विषयों का मूल्याङ्कन को व्यवस्थित करने के लिए एवं शैक्षिक सान्निध्य को बढ़ाने कि लिए विद्यालयीय व सह-विद्यालयीय पक्षों का एकीकरण महत्त्वपूर्ण है। इस विषय में NPE (1986) कहती है कि-

In national policy on Education (NPE) document, 1986 and as modified in 1992 also it is mentioned that the scheme of evaluation should cover all learning experiences of scholastic subjects and nonscholastic areas.

Comprehensive evaluation would necessitate the use of a variety of learner's growth can be evaluated through certain special techniques.

शिक्षणाधिगम प्रक्रिया के मूल्याङ्कन में विद्यालयीय व सहविद्यालयीय पक्ष ध्यान देने योग्य होते हैं। यदि कोई छात्र किसी भी क्षेत्र में न्यूनता को प्रदर्शित करता है तो वहाँ नैदानिक मूल्याङ्कन (Diagnostic Evaluation) व चिकित्सकीय मूल्याङ्कन (Remedial Measures) की आवश्यकता होती है।

सतत व्यापक मूल्याङ्कन छात्र की निष्पत्ति के प्रति अभिज्ञता बढ़ाने के लिए समय-समय पर अध्यापकों व अभिभावकों की सहायता करता है। वे छात्र की निम्न निष्पत्ति को जानकर उनके लिए चिकित्सात्मक मापन विधा का प्रयोग करते हैं। कई बार छात्र अपने वैयक्तिक कारणों के कारण अध्ययन के प्रति नकारात्मक प्रवृत्ति को प्रदर्शित करते हैं, इसमें उनकी निष्पत्ति का पतन होता है।

यदि अध्यापक व अभिभवाक छात्र की न्यून निष्पत्ति की ओर ध्यान नहीं देते हैं तो यह समस्या क्रमशः उत्तरोत्तर छात्र की शैक्षणिक असफलता का कारण बनती है।

विद्यालयीय पक्षों (Scholastic) में क्रियान्वित पाठ्यचर्या सम्बन्धी विषय जैसा कि भाषा, गणित, विज्ञान और कार्यानुभव, कलाशिक्षा,

चित्रकला, संगीत, शारीरिक शिक्षा, व्यायाम क्रिया, योग इत्यादि सम्मिलित होते हैं। सह-विद्यालयीय पक्ष (Co-Scholastic) अध्येताओं के हाथ व हृदय के पक्षों से सम्बन्धित है। यहाँ सामाजिककौशल (Social Skills), चिन्तनकौशल (Thinking Skills), शैक्षिककौशल (Educational Skills), मूल्य, अभिवृत्ति, पाठ्य-सहगामि-क्रिया, वैज्ञानिक क्रियाविधियाँ, सभा इत्यादि सन्निहित होती हैं।

• सतत व्यापक मूल्याङ्कन से अध्यापक प्रभावी शिक्षण प्रविधियों के आयोजन में समर्थ होते हैं।

• सतत व्यापक मूल्याङ्कन छात्रों की वैयक्तिक क्षमताओं का परिचायक है, इससे अध्यापक छात्रों के निम्न सम्प्राप्ति के कारणों को जानकर उनके निदानात्मक मूल्याङ्कन किया जाता है।

• इससे अध्यापक तत्क्षण प्रतिपुष्टि (Feedback) प्राप्त करते हैं कि शैक्षिक आवश्यकता कैसी है? और कौन से छात्र है? जो निदानात्मक अनुदेश (Remedial instruction) के योग्य हैं?

• सतत व्यापक मूल्याङ्कन से छात्र अपनी योग्यताओं का अभिज्ञान प्राप्त करते हैं। इससे वे श्रेष्ठ अध्ययन के लिए अभिप्रेरित होते हैं।

• अध्येता पढ़ने में उचित अभिवृत्ति का प्रयोग करते हैं। वे अपनी कमियों को जानकर उनका निवारण कर जीवन लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं।

• सतत व्यापक मूल्याङ्कन अभिवृत्तियों, रूचियों, मूल्यव्यवस्था में उचित परिवर्तन करता है।

• सतत व्यापक मूल्याङ्कन भविष्योन्मुखी निर्णय के प्रति, विषय चयन के प्रति व शिक्षण प्रशिक्षण में सहायता करता है।

अनेक आयोग व परिषदों द्वारा उनके विचार या संस्तुतियाँ मूल रूप से यहाँ प्रस्तुत की गई है-

• This aspect has been strongly taken care of in the National Policy on Education-1986 which states that *"Continuous and Comprehensive Evaluation that incorporates both scho-*

lastic and non-scholastic aspects of evaluation. Spread the total span of instructional time"

• Report on the CABE committee on policy brought out by MHRD, Govt. of India in January, 1992 has also referred to the provision of NPE with regard to evaluation process and examination reforms and also suggested

"Continuous and Comprehensive internal Evaluation of the scholastic and non-scholastic achievement of the students"

• "Learning without Burden" a Report of the National Advisory Commitee appointed by the Ministry of Human Resource Development, Department of Education, Govt. of India has stated that.

"Board examination, taken at the end of the class X and XII, have remained rigid. Bureaucratic and essentially uneducative......."

• The report of the Task Force on the Role and status of the Board of Secondary Education (1997) observed : In your scheme of things, It is the School Boards which are expected to play the central role in the academic of the school system. In other words, leadership has to come from the Board. Once the Board get committed to this vital and supple mentary system of evaluation and push it vigorously, this innovation will come to be accepted by more and more schools.

'न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' यह सूक्ति सर्वार्थ यथार्थ है। क्योंकि परमेश्वर के इस ऊर्जस्वित् संसार में मानव से बढ़कर और कोई जीव नहीं है जो अपने अस्तित्व के प्रति उतना जागृत है। कहा भी गया है कि-

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेणहीनाः पशुभिः समानाः ॥

सभी प्राणी अपने इष्ट के प्राप्ति व अनिष्ट के निवारण के लिए प्रयत्न करते हैं यहाँ बुद्धिजीवी न केवल प्रयत्न करते हैं अपितु नूतन विधाओं का आविष्कार भी करते हैं जो जीवन में सही अर्थों में सफल

बना सकें। शैक्षिक क्षेत्र में भी नूतन आविष्कार के स्वरूप सतत व्यापक मूल्याङ्कन प्रक्रिया का आरम्भ हुआ। वर्तमान समय में प्रचलित परम्परागत सत्रान्त बाह्य मूल्याङ्कन पद्धति के दोषों को हटाते हुए शिक्षा प्रणाली को शिक्षणाधिगम के प्रति उन्मुख करने का प्रयास है। सतत व्यापक मूल्याङ्कन उस प्राचीन परम्परा का एक व्यवस्थित औपचारिक स्वरूप है जहाँ अध्यापकगण दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्ध-वार्षिक, वार्षिक परीक्षाओं द्वारा छात्रों के ज्ञान अवबोध व कौशलों का मापन कर उनके आवश्यक संशोधनार्थ पृष्ठपोषण प्रदान करते थे। सतत व्यापक मूल्याङ्कन मूलतः दो सिद्धान्तों पर आधारित है। पहला कि जो व्यक्ति अध्यापन कार्य कर रहा है वही मूल्याङ्कन कर्ता भी हो, द्वितीय मूल्याङ्कन कार्य सत्रान्त में न होकर क्रमशः गम्यमान रहे। कालान्तर में भौतिक प्रवृत्तियों के बढ़ने से आन्तरिक मूल्याङ्कन की वैधता व विश्वसनीयता संदेह के दायरे में आ गई, अतः धीरे धीरे बाह्य परीक्षा प्रणाली का चलन बढ़ा। निःसन्देह बाह्य परीक्षा प्रणाली संस्थानों के परिणामों में एकरूपता लाने में सक्षम रही हो पर यह प्रश्न विचारणीय है कि सत्रान्तीय ऐसी परीक्षाओं द्वारा बालकों का सम्पूर्ण रूप में अर्जित ज्ञान, बोध, कौशलों की पर्याप्त सूचना उपलब्ध नहीं होती है। वस्तुतः सत्रान्त में होने वाली परीक्षा न तो बालक की बहुपक्षीय शैक्षिक सम्प्राप्ति के मापन में समर्थ है न ही शिक्षणाधिगम की प्रक्रिया में संशोधन में योगदान देती है। सतत व्यापक मूल्याङ्कन प्रक्रिया ही अध्येताओं में व्यापक दृष्टि से मूल्याङ्कन में समर्थ है। सतत व्यापक मूल्याङ्कन छात्रों को सम्पूर्ण सत्र में अध्ययनार्थ प्रेरित करता है। सतत व्यापक मूल्याङ्कन प्रक्रिया की सार्थकता शिक्षकों पर आधारित है। यदि शिक्षक निष्पक्षता, कर्त्तव्यपरायणता, निष्ठा और विश्वास से सतत व्यापक मूल्याङ्कन प्रक्रिया का क्रियान्वयन करते हैं तो निश्चित ही यह प्रणाली शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन की ध्वजा को आन्दोलित कर सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ :

1. **अग्रवाल, जे. सी.**, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, प्रभात प्रकाशन, देहली, 2000

2. **अहमद नसीम**, भारत में सतत शिक्षा, ग्रन्थ अकादमी, नवदेहली, 2004
3. **उपाध्याय, डा. प्रतिभा**, भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2009
4. **गुप्ता, एस. पी.**, आधुनिक मापन एवं मूल्याङ्कन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2012
5. **ट्रैवर्स, एम. W रावर्ट,** शिक्षात्मक अनुसन्धान की प्रस्तावना, किताब महल, देहली
6. भारत का संविधान, विधि एवं न्याय मन्त्रालय:, भारतसर्वकार:
7. **Alkin,** Evaluation Roots, Sage Publications, New Delhi, 2004
8. **Bhatnagar, Suresh,** Indian Education, Loyal Book Depot, Merrut, 1990
9. **Chakravarti, Mohit,** Value Education Changing Perception, Kanishka Publishers, New Delhi, 2005
10. **Debra, J. Holden,** A practical Guide to Program Evaluation Planning, Marc A. Zimmerman, Sage Publications, New Delhi, 2009
11. **Dhankar, R. Neerja,** Value Education in Schools, APH Publishing Cor. New Delhi, 2010

शिक्षा आयोग-समिति प्रतिवेदन :

1. **आदिशेषैया समिति प्रतिवेदन**, (1978), एनसीईआरटी
2. **प्रो. यशपालसमिति प्रतिवेदन**, (1997), मुदण-एनसीईआरटी
3. **भारत में शिक्षा** (विद्यालयी शिक्षा, 1995-96), Planning Monitoring & Statistics Division Department of Secondary & Higher Education Ministrky of Human Resource Development, Govt of India, New Delhi, 2003
4. **राज्यों में शिक्षा** (1962), (विद्यालयी शिक्षा, 1995-96), शिक्षामन्त्रालय:, भारतसर्वकार:
5. **राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा 2005**, मुद्रणम् - एनसीईआरटी, नवदेहली, प्रथम संस्करणम्, 2006
6. राष्ट्रीयशिक्षानीति (1986-90), NCERT, New Delhi
7. शिक्षाऽऽयोग (1964), Kothari Commitee शिक्षामन्त्रालय:, भारतसर्वकार:
8. **Report on the CABE Committee on Policy,** 1992, MHRD, Govt. of India
9. **Report of National Advisory Committee on "Learning without Bur-den"**, MHRD, Govt. of India

अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम विकास में उदीयमान प्रवृत्तियाँ

सनत कुमार झा एवं राजेश
एम. एड., श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

विभिन्न स्तरों पर शिक्षक-शिक्षा का पाठ्यक्रम

हमारे देश में हाल के वर्षों में शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रम में आमूल-चूल परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं यथा विषय-वस्तु में सामान्य सम्वृद्धि विशेषकर विज्ञान एवं गणित में तथा कोर पाठ्यक्रमों को प्रारम्भ करना, वर्त्तमान समाज की आकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं को दृष्टिगोचर करते हुए कौशल एवं अभिवृत्तियों पर बल देना, कार्योन्मुख व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को **"कार्यानुभव"** तथा समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के नवीन क्षेत्र को साथ लेकर आगमित करना। वस्तुतः शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रम में उन्नयन सहित विद्यालय- शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र में कुछ उपयुक्त परिवर्तन लाने का अनुभव किया गया।

वर्ष 1988 में राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षा परिषद् द्वारा **'शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम'** शीर्षक के अन्तर्गत शिक्षक-शिक्षा की रूपरेखा विकसित की गयी।

इस पाठ्यक्रम में दो बिन्दु जो इसके मूलाधार माने गये थे उन्हें स्वीकार किया गया था व **'एकीकरण तथा नम्यता'** **(Flexibility)** थे। नम्यता सन्दर्भित की गयी थी यथा-

(अ) शिक्षक की तैयारी की अवधि में विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षणकर्त्ता शिक्षक का प्रवेश, बहिर्गमन की गतिशीलता तथा एक विषय से दूसरे विषय में प्रवेश की गतिशीलता।

(ब) नम्यता का अर्थ है राज्य एवं स्थानीय समुदाय की

अपेक्षाओं को अनुरक्षित करने हेतु 'शिक्षक-शिक्षा प्रतिमान अथवा मापदण्डों' को विकसित किया जाना।

(स) सेवा-पूर्व तथा सेवारत शिक्षक शिक्षा की निरन्तरता की नम्यता।

इस प्रकार यह भी आशा की जाती है कि लिखित पाठ्यक्रमों द्वारा एकीकरण तथा अन्तर्विषयक एकीकरण भी उत्पन्न हो यह समेकित ज्ञान, शिक्षण कौशलों, पद्धतिशास्त्र तथा सामाजिक सेवा में वांछित परिवर्तन उत्पन्न करने का मार्ग प्रशस्त करेगा।

इसी प्रकार शिक्षा के राष्ट्रीय लक्ष्य तभी प्राप्त हो सकते हैं जब प्राथमिक स्तर से लेकर कॉलेज स्तर तक शिक्षक के प्रयास होते रहें। पाठ्यक्रम न्यूनाधिक अपने सामान्य अंगों सहित उसी प्रतिमान के आसपास घूमते रहते हैं, यद्यपि प्रश्नगत स्थिति की अपेक्षाओं के अनुसार उसमें कतिपय संशोधन होते रहते हैं। इसके अंग निम्नलिखित हैं-

(1) शिक्षाशास्त्रीय अथवा शैक्षिक विज्ञान के नियम अथवा सिद्धान्त।

(2) समुदाय की संगत में कार्य करना।

(3) विद्यालयी विषयों के शिक्षण में विषय-वस्तु और पद्धति शास्त्रीय ज्ञान।

(4) प्रायोगिक सहित क्षेत्रीय कार्य।

अत: अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम किसी विशेष व्यक्ति के लिये मुख्य रूप से उत्साहित करने वाला उद्यम होने पर एक आवश्यक व्यवसाय बन सकता है जिसमें सैद्धान्तिक शिक्षा व्यवस्थित होती है ताकि अन्तर्दृष्टि विकसित की जा सके।

यह कार्य अनुशासन कुशलता और व्यावसायिक क्षमताओं के विकसित होने पर सम्पन्न किया जा सकता है और व्यावसायिक कार्यक्रम निरन्तर किये जा सकते हैं जिससे उचित व्यावसायिक मूल्य, स्वभाव, रुचि और क्षमता का विकास आवश्यक रूप से करना सम्भव

हो सकता है। सम्पूर्ण अध्यापक शिक्षा का कार्यक्रम निम्नलिखित मुख्य तत्त्वों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) बुनियादी पाठ्यक्रम- मुख्यतः दार्शनिक, समाजशास्त्रीय परिदृश्यों और शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधारों पर जोर देते हुए सम्बन्धित कार्यक्षेत्र निर्मित करना।

(2) प्रासंगिक चरण विशेषज्ञता - अध्यापक की कार्यकुशलता को समझने पर जोर देना। इस कार्यकुशलता को साधारण विधि से समझा जा सकता है कि यह शिक्षण की पूर्णता और कुशलता को प्रदर्शित करता है जो कि स्कूल के विषय स्वरूप पूर्णतः प्रासंगिक है।

(3) क्षेत्रीय कार्य अथवा प्रायोगिक कार्य- कक्षा में शिक्षण के समय सैद्धान्तिक अध्ययन पर जोर देना साथ ही अन्य दूसरे प्रायोगिक कार्यकलापों में लिप्त छात्रों, अध्यापकों और अभिभावकों को परिचित कराना साथ ही समुदाय से सम्बन्धित करने पर बल देना।

इस प्रकार बुनियादी पाठ्यक्रम शिक्षा के विषयक ज्ञान और आन्तरिक सैद्धान्तिक ज्ञान को आवश्यक रूप से प्रस्तुत करता है

माध्यमिक स्तर हेतु अध्यापकों का पाठ्यक्रम विकास निम्नलिखित हैं-

(1) छात्राध्यापकों को कम से कम दो विषयों में विशेषज्ञता प्राप्त कराकर इन विषयों के शिक्षण की क्षमता प्रदान करना।

(2) विशेषज्ञता प्राप्त दक्ष एवं योग्य अध्यापक की देख-रेख में छात्रों के सर्वांगीण विकास की गति में वृद्धि करना।

(3) स्वास्थ्य एवं शारीरिक विज्ञान, मनोरंजन क्रियाओं और कार्यानुभवों के द्वारा व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि करना।

(4) मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों जिनके द्वारा 11 से 17 वर्ष आयु वर्ग के छात्रों की वृद्धि और विकास हेतु ज्ञान अर्जन करना।

(5) अध्यापक एवं विद्यालय की भूमिका का ज्ञान प्राप्त करना जिससे इच्छित सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न कर सकें।

निष्कर्ष

इस प्रकार अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम विकास में बुनियादी तत्वों के समावेश से अध्यापक अपने मूलभूत कार्य पठन-पाठन में आशातीत सफलता हासिल कर सकते हैं तथा समाज एवं राष्ट्र को प्रगति के मार्ग पर आगे बढा सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Agrawal, J.C. (1988) : New education policy-1986 Prabhat Prakashan, Delhi.

Barnard, H.C. (1967) : An Introduction to teaching, University of London press, London

Bruner, J. (1966) : Towards a Theory of Instruction, Norton co. New York.

अध्यापक-शिक्षा की नवाचारी शिक्षण विधियाँ

डॉ. विमलेश शर्मा

सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्री विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

मुख्य बिन्दु–नवाचार, शिक्षणविधियां–

(1) अध्यापक केन्द्रित एवम् (2) छात्र केन्द्रित

यह सर्वमान्य तथ्य है कि सूचनाओं के युग में दिन प्रतिदिन तीव्रता से ज्ञान में वृद्धि होती जा रही है। प्रत्येक क्षेत्र में नये-नये विचार, तथ्य, नियम, सूत्र, सिद्धांत, व्यूहरचनाएं, शिक्षण-विधियाँ तथा तकनीकियों का समावेश सूचनाओं के क्षेत्र को व्यापक/विस्तृत कर रहा है। स्वाभाविक है कि शिक्षक प्रदत्त शिक्षा एवम् अध्यापक-शिक्षा का कार्यक्रम भी इससे अनभिज्ञ नहीं है जोकि स्वयं में "शिक्षण व्यवसाय" के रूप में भी विकसित किया जाता है जिसका मुख्य उद्देश्य–

Providing knowledge, Understanding, theories, principles'k Laws, fects and others regardinig teaching activities to the perspective teachers i.e.

सेवापूर्व अध्यापक-Preservice Teacher.

Process of transformation of lay persons into competent and committed professional education.

सेवारत अध्यापक–

Refers to a need based continusng education for teachers already on the job, to update and enrich their Professsional compereneies] strength their commitment and enhance their Professional Performance in the classroom. These teachers–Pre- & Inservice go into the field apply the given knowedge in their real professional life.

शिक्षा का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य पर दृष्टि करें तो ज्ञात होता है।

(1) वैदिक कालीन शिक्षा 2500 ई.पू. से 500 ई.पू.

(2) बौद्ध कालीन शिक्षा 500 ई.पू. से 1200 ई.

(3) मुस्लिम कालीन शिक्षा 1200 ई.पू. से 1700 ई.

(4) ब्रिटिश कालीन शिक्षा 1700 ई. 1947 तक

(5) स्वतंत्र कालीन शिक्षा 1947 से वर्तमान तक

"शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास के साथ ज्ञान, योग्यता तार्किक योग्यता तथा स्वयं में सक्षम बनाने से है।

किसी भी शिक्षा प्रणाली/व्यवस्था के साथ अध्यापक एवम् छात्र का अस्तित्व संलग्न रहता है। शिक्षक छात्रों की शिक्षा हेतु स्तरानुरूप शिक्षण-विधियों का प्रयोग से विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण को प्रभावशाली बनाकर छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाता है और छात्र शिक्षकों की सहायता से अधिकतम अनुभवों को प्राप्त करते हैं। शिक्षक शिक्षण-विधियों के उपयोग में अधिक क्रियाशील रहता है तथा अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु समयानुसार संशोधन/परिवर्तन भी किया जाता है।

बदलती परिस्थितिनुसार शिक्षा के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य के सन्दर्भ में शिक्षण-विधियों को तीन वर्गों में रखा जाता है-

(क) प्रभुत्ववादी/ परम्परागत शिक्षण-विधियाँ

(ख) प्रजातांत्रिक/ आधुनिक शिक्षण-विधियाँ

(ग) नवाचारयुक्त शिक्षण विधियाँ

उपरोक्त का क्रमवद्ध संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार से है-

(क) **वैदिककालीन शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत**-प्रभुत्वपादी/ परम्परागत शिक्षण विधियों को अपनाया जाता था, जहाँ छात्रों को गुरुकुल में रहकर निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त था।

शिक्षक–सूचनाओं का प्रेषक और छात्र–सूचनाओं का ग्रहणकर्त्ता अर्थात् Power and responsibility are held by the teacher.

प्रमुख विषय–वेदों का अध्ययन, साहित्य, दर्शन, धर्म, गणित, ज्योतिष, तकनीकी, वैज्ञानिक शास्त्र, शस्त्रविद्या, शिल्पकला, भारतीय संस्कृति, परम्पराएँ, आदर्श, मूल्य, अहिंसा, त्याग, अहिंसा (Peace)।

प्रभुत्ववादी/ परम्परागत शिक्षण-विधियों के अन्तर्गत

* वेदों की ऋचाओं का ज्ञान–शुद्ध उच्चारण

* कंठस्थीकरण पर बल, अभ्यास, पुनरावृत्ति

* विषयी शिक्षण में शिक्षक द्वारा व्याख्यान विधि, छात्रों द्वारा मात्र श्रवण

* शिक्षण एक पक्षीय प्रवाह में

* तथ्यात्मक ज्ञान पर महत्त्व

वास्तविक/व्यवहारिक जीवन अनुभवों के साथ तथ्यों, सिद्धान्तों, नियमों सूत्रों का व्यापक ज्ञान

* शिक्षण-अधिगम हेतु खेल विधि, अभिनय विधि

* प्रकृति रहस्यों की खोज, अन्वेषण विधि

* शैक्षिक सामग्री संकलन, ताडपत्र/भोजपत्रों पर

* छात्रों की अर्न्तक्रिया हेतु शास्त्रार्थ को महत्त्व

* प्रश्नोत्तर, तर्क, कौशल, चिन्तन विधियों का उपयोग

* मनोरंजन/ अवकाश क्षणों का उपयोग-विषयी वाद-विवाद प्रतियोगिता

कविता, अन्त्याक्षरी, श्लोक

* दंड गुरुकुलीय व्यवस्था अहम थी न्यूनता हेतु– साम, दाम,

दण्ड, भेद का प्रयोग।

* दैनिक जीवन के कार्यकलापों के आधार पर सतत् एवम परिणाम आधारित मूल्यांकन

* शिक्षा समाप्ति पर गुरुकुल छोड़ने पर छात्र द्वारा शिक्षक हेतु 'गुरु दक्षिणा' देने का प्रावधान

संदेश–

* परिवार, समाज, देश हेतु सम्मानपूर्वक कार्य करने के तत्पर रहने की शिक्षा

वैदिककालीन शिक्षण विधियों द्वारा शास्त्रों का ज्ञान-श्रवण, मनन तर्क चिन्तन आदि की प्रमुखता थी शिक्षा सुव्यवस्थित व्यवहारिक तथ्यात्मक ज्ञानाधारित थी।

सन् 1700 से–

In current system "पाश्चात्य शैली" पर आधारित था। ब्रिटिश राज में लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति "निस्पन्दन सिद्धान्त" को अपनाया।

Traditional Education system as a beautiful tree that was destroyed during the British rule.

Mahatma Gandhi 1937

1947– स्वतंत्रता प्राप्ति–परिवर्तन के साथ-2 विभिन्न आयोगों जैसे– डॉ. राधाकृष्णन् (1948-49), डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर (1952-53) डॉ. दौलतराम कोठारी (1964-66), राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968,, 1986 आदि ने सुझाव दिये कि–

– शिक्षा– सृजनात्मकता, नवाचार युक्त

– नि:शुल्क अनिवार्य तथा व्यासायिक

– बालक का सर्वांगीण विकास

– शिक्षा का प्रजातांत्रिक मोड़/स्वरूप स्वीकृत किया जाय।

(ख) प्रजातांत्रिक/ आधुनिक शिक्षण-विधियाँ–छात्र केन्द्रित

प्रजातांत्रिक कक्षा-शिक्षण में शिक्षक निर्देशक का कार्य करता है। समस्त उत्तरदायित्व छात्र केन्द्रित होते हैं। छात्र अधिगम स्वतंत्र, सहयोगात्मक, सहभागितापूर्ण तथा प्रतिस्पर्धात्मक होता है। शिक्षक छात्रों को अनुशासनात्मक रूप में परामर्श, प्रेरित, उत्साहित आंकलन, विचार स्पष्टीकरण तथा तार्किक वैधता एवम् सुझाव देता है। विषयवस्तु को शिक्षण-विधियों की सहायता से प्रस्तुत करता है जिससे छात्रों को बोध हो, तथ्यों का परिपाक कर सके, विचार, तथ्य अन्यों के समक्ष प्रस्तुत कर सके, तथा अधिकतम अधिगम हेतु दक्षताओं/ क्षमताओं का विकास हो शिक्षा के बदलते परिवेश– Power and responsiilities are the student centered,

पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता में असंख्य शिक्षण विधियों का प्रयोग करता है।
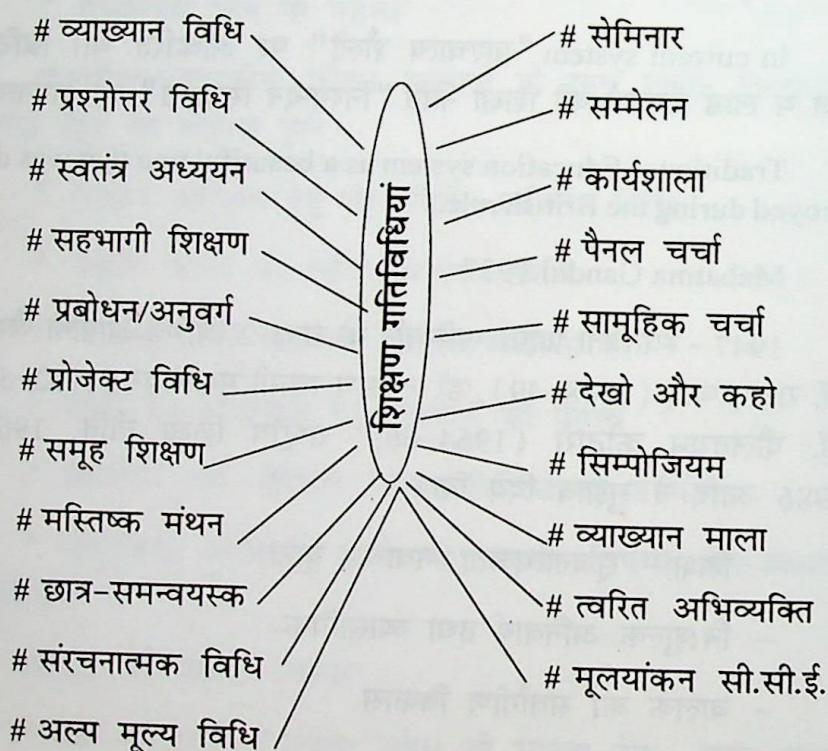
इनका उद्देश्य छात्रों का सर्वांगीण विकास कर व्यावसायिक कौशलों, दक्षताओं एवं क्षमताओं का विकास करना है कि छात्र शिक्षा द्वारा केवल शिक्षित ही न हों अपितु उनमें ज्ञान योग्यता, तार्किक चिन्तन और आत्म अभिव्यक्ति तथा विश्वास उत्पन्न हो सके। जोकि किसी भी व्यवसाय हेतु आवश्यक होता है।

इतना ही नहीं, उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण के फलस्वरूप सूचनाओं का विस्फोट-तकनीकी रूप में नवाचार रूप में शिक्षा नवाचार तकनीकी के साथ जुड़ी गई।

(ग) नवाचारयुक्त शिक्षण-विधियाँ-

नवाचार-एक नूतन विचार ... प्रक्रिया या तकनीक है जिसका विस्तृत उपयोग प्रचलित व्यवहारों तथा तकनीक के स्थान पर किया जाता है। यह परिवर्तन हेतु परिवर्तन नहीं है अपितु इसका क्रियान्वयन, निर्माण, परीक्षण तथा प्रयोगों के आधार पर किया जाता है। **-यूनेस्को**

शिक्षा के सन्दर्भ में सूचना तकनीकी के युग में कक्षाशिक्षण में प्रयुक्त नवाचार युक्त शिक्षण-विधि प्रतिमान-

- संगणक, लैपटॉप, इन्टरनेट

Interactive white Boards groups

Installation projectors

Mobile Projecteers

LCD Displays content display

3D

E-Learning, Web based learning

M- Learning – 3G

ऑन लाइन अधिगम-विक्कीपीडिया, सर्च

ऑन लाइन वैचुअल अधिगम M. Learning 3 G

एस.एम.एस./ एम.एम.एस. Wireless phone to support teaching and learning.

जिनकी लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

वर्तमान परिवेश के अनुरूप जहाँ परम्परागत शिक्षण-विधियों का स्थान नवाचारयुक्त शिक्षण-विधियों ने ले लिया है। क्योंकि नवाचारी शिक्षण विधियाँ शिक्षक, छात्र, समाज की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

क्योंकि नवाचारयुक्त शिक्षण-विधियाँ द्वारा विषय को

जटिल शिक्षण को सरल बनाना

व्यक्तिगत सशक्तिकरण पर बल देना

अधिगम गतिशीलता में वृद्धि करना

सीखने के असंख्य अवसर प्रदान करना

अन्य संस्थाओं से सहयोग/सहभागिता

दूरस्थ शिक्षा-वरदान स्वास्थ्य

शिक्षण अधिगम हेतु वातावरण प्रदान करना

द्विपक्षीय समृद्ध सम्प्रेषण

अध्यापकों, छात्रों हेतु प्रभावशाली

ऑनलाइन परीक्षा और मूल्यांकन तथा परिणामों हेतु भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

Classroom Transit

अन्त में कहा जा सकता है—परम्परागत, आधुनिक एवम् नवाचारयुक्त शिक्षण-विधियों का उपयोग तथा छात्रों के मध्य अन्तंक्रिया अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। कक्षा में व्यक्तिगत भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षण विधियों पर हुए शोध कार्य के निष्कर्ष इस प्रकार से हैं—

कक्षा-शिक्षा शिक्षक के प्रभावशाली सम्प्रेषण पर आधारित होता है।

प्रतिभाशाली छात्र नवाचारयुक्त शिक्षण विधियों से लाभान्वित होते हैं जैसे–देखो और कहो विधि।

मल्टी मीडिया द्वारा विषयवस्तु प्रस्तुतीकरण, पुनरावृत्ति ही की जा सकती है। अर्न्तक्रिया नहीं।

अध्यापक का उत्साह, रुचि कि परम्परागत कक्षा-शिक्षण को वर्चुल कक्षा-शिक्षण में परिवर्तित कर छात्रों हेतु शिक्षण-अधिगम को प्रभावशाली बना सकें।

शिक्षक-छात्र स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

आज शिक्षण विधियों का स्वरूप बदल गया है, लेकिन छात्र किस शिक्षण-विधि में अधिक रुचि लेता है यह महत्त्वपूर्ण नहीं है अनुदेशन एवम् अधिगम उद्देश्यों की प्राक्प्ति का होना आवश्यक है क्योंकि शिक्षण हेतु शिक्षण-विधियों के चयन में अधिगम प्रकार तथा उद्देश्यों को ही विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसी वातावरण में विषयों के साथ इन शिक्षण विधियों को पूर्णतया समर्पित और प्रतिबद्ध होकर कक्षा-शिक्षण क्रियान्वित करें, तभी अध्यापक-शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रख सकते हैं। जहाँ शिक्षण विधियों का स्वरूप परम्परागत और आधुनिक नवाचार शिक्षण विधियों के प्रति भी सकारात्मक दृष्टि रखनी होगी तथा दोनों में समन्वय स्थापित करें तभी अध्यापक शिक्षा को आदर्श प्रतिमान रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। जोकि महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

(1) कुमार के. एल. (2008) शैक्षिक तकनीकी सेज प्रकाशन, नई दिल्ली

(2) आर. ए. शर्मा (2004) शैक्षिक तकनीकी के सोपान, लायल बुक डिपो, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

Emerging Trends in Qualitative Research in Changing Scenario of Teacher Education

Dr. Rachna Verma Mohan
Associate Prof. Dept. of Education, S.L.B.S.R.S. Vidyapeetha

Research is a search for Knowledge. It is a search that provides knowledge for the solution of problems. It is a process of steps used to collect and analyse information to increase understanding of a topic or issue. Educational research refers to a systematic attempt to gain a better understanding of the educational process, generally with a view to improving its efficiency. It is an application of scientific method to the study of educational problems. Since education is a behavioral science, the major concern of educational research is to understand, explain and to some degree predict and control human behaviour. As outcomes of researches are related directly to learning and teaching situations in schools, it should be done carefully.

One of the major inputs towards enchancing the quality of teaching and learning in schools as well as teacher education institutions should be the extent to which research outputs and the outcomes of innovations are utilized by the system. There is a definite requirement of bringing in research methods and methodologies in appropriate form in teacher education programmes. To an extent, it finds a place in master level course in education though in some universities the same is not insisted upon. The structure and design of future courses and programmes need to take this aspect into account. Preparation of teacher educators can no longer be completed without adequate grounding in various aspects of research.

Research must relate to policy issues and curriculum, evaluative procedures and practices, training strategies and classroom practices, etc. The areas of teacher preparations for children with

special needs, gifted childresn and children from groups with specific cultural, social and economic needs should also be covered. For this quantitative and qualitative both types of researches should be done. The emerging trends in educational research need to be encouraged. Wherever considered appropriate so these could be brought into the system of teacher education for wider replicability and gainful use.

In the area of education research two types of researches are being followed quantitative and qualitative. In these researches various research designs are used. Few of them are as follows: -

1. Experimental design
2. Survey design
3. Correlational design
4. Grounded Theory design
5. Ethnographic designs
6. Narrative research design
7. Mixed method design
8. Action research design

Experimental, survey and correlational desings are quantitative, grounded theory design, ethnographic and narrative designs are qualitative whereas mixed and action research designs are the combination of quantitative and qualitative approaches.

In quantitative research investigator identifies a research problem based on trends in the field or on the need to explain why something occurs. Research problem can be answered best by a study in which the researcher seeks to establish the overall tendency of responses from individuals and to note how this tendency varies among people.

In today's changing scenario of teacher education more emphasis is being given on qualitative research related to exploring a problem and developing a detailed understanding of a central phenomenon. The literature might yield a little information about the phenomenon of the study and there is a need to learn more from participants through exploration. A central phenomenon is the key concept, idea, or process studied in qualitative research. For ex-

ample, the research problem of the difficulty in teaching children who are deaf requires both exploration and an understanding of the process of teaching and learning.

Grounded Theory Design

In this design a number of individuals who have all experienced an action, interaction or process have been studied. These designs are systematic, qualitative procedures that researchers use to generate a general explanation (grounded in the views of participants, called a grounded theory) that explains a process, action or interaction among people. The procedure for developing this theory include primarily collecting interview data, developing and relating categories (or themes) of information, and composing a figure or visual model that portrays the general explanation. In this way the explanation is "grounded" in the data from participants. From this explanation, predictive statements about the experiences of individuals can be made.

Ethnographic Design

Ethnographic designs are qualitative procedures for describing, anlaysing and interpreting a cultural group's shared patterns of behaviours beliefs and language that develop overtime. In ethnography, the researcher provides a detailed picture of the culture sharing group, drawing on variuous sources of information. The ethnographer also describes the group within setting explores themes or issues that develop overtime as the group interacts and details a portrait of the group.

Narrative Research Design

These are qualitative procedures in which researcher describes the lives of individual, collect and tell stories about these individuals, lives, the narratives about their experiences.

These are few qualitative designs. However quantitative and qualitative research approaches continue to be seen as form of research that lie along a continuum instead of two completely separate approaches. Often in educational research, studies are not entirely quantitative or qualitative but contains some elements of both approaches. So mixed method and action research are more sutable and emerging trends in educational research. These type of

research should be promoted and encouraged to meet the recent demands in the field of education.

Mixed Method Design

In this design the combination of quantitative and qualitative both forms of data provides understanding of a research problem than either one of its type. These designs are procedure for collecting, analyzing and mixing both qualitative and quantitative data in a single study or in a multiphase series of studies to understand a research problem. In this process few points should be kept in mind - priority of the data, which form of data will be collected first, mixing of the data and use of theory to guide the study. For this, person should have understanding of both qualitative as well as quantitative research. The procedures are time consuming, requiring extensive data collection and analysis. Also this research is not simply collecting two distinct "strands" of research - qualitative and quantitative. It consists of merging, integrating, linking or embedding the two "strands".

Need of Mixed Method Design

It is useful when quantitative data, such as scores on instrument, yield specific numbers that can be statistically analyzed, can produce results to acess the frequency and magnitude of trends and can provide useful information, if to describe trends about a large number of people is needed. However, qualitative data, such as open ended interviews that provide actual words of people in the study, offer many different perspectives on the study topic and provide a complex picture of the situations. In this way by assessing both outcomes of a study as well as the process, a complex picutre of social phenomenon can be developed. Secondly, when one type of research is not enough to answer the research questions, More data is needed to elaborate or explain the problem. Sometimes for developing an instrument qualitative data is required which can be tested in a later quantitative study. Thirdly, when an alternative perspective is provided in a study, for example in an experimental study experiment gives useful information about outcomes but how the experimental intervention actually worked could be understood better by qualitative data. Fourthly, when policy makers both "num-

bers" and the "Stories" about an issue mixed method is very useful.

For combining quantitative and qualitative data triangulation is applied to research. Triangulation means that reserchers could improve their inquiries by collecting and intergrating different kinds of data related to same phonemenon. The three points to the triangle are the two sources of the data and the phenomenon. It gives opportunity for blending the strengths of one type of method and neutralizing the weakness of other.

Action Research Design

Lastly, action research design often use both qualitative and quantitative data, but they focus more on procedures useful in addressing practical problems in schools and classrooms. In these designs quantitative and qualitative data is gathered in an educational setting to improve teaching learning of students. Practical problems in a classroom such as discipline, not doing home work, not interested in studying a particular subject are solved. The objective of this research is to empower, transform and emancipate individuals in educational settings.

Interdisciplinary, policy research, baseline studies are few other emerging trends in the area of educational research. Interdisciplinary research is based on this fact that any educational phenomenon can be understood correctly if it is viewed comprehensively in its socio-cultural-economic-geographical-psychological contexts. Hence, in gaining an understanding of an educational phenomenon or for finding out real solutions to educational problems, it would be necessary to recognize that these problems are linked with other related disciplines. There are four ways in which educational research can be made interdisciplinary.

i) Conceptual integration (Skinner - Programmed instruction)

ii) Adoption of conceptual structure of other discipline as a model (cybernetic model information processing - system approach)

iii) Adoption of methodology (psychometry - physics, clinical interviews-psycho analysis)

iv) Studies on pedagogic aspects of various disciplines (science education, language education etc.)

Policy Reasearch

This type of research is undertaken for providing a relevant information base for policy framing. They do not enhance the knowledge of a discipline. They have a bearing on the way educational programmes are to be implemented.

They may be classified in two types :

i) Research flowing out of some policy decisions as universalisation of elementary education.

ii) Research taken up for formulating a policy, as for malnourishment mid-day meal should be provided.

Baseline Studies

For taking any administrative decision or framing a policy, some basic data is required. The studies which provide such basic data are known as baseline studies. For example, Location of the school, infrastructural facilitites available, educational background of the teachers, mid-day meals, enrolment, retention, wastage and stagnation, survey of literacy rate etc.

In the end it can be concluded that emerging approaches and methods should be followed. More emphasis should be given on qualitative aspect of research in curriclum, Combination of both quantitative and qualitative approach will develop deep insight in educational problems and outcomes will be more useful and effective.

References :

A Handbook on Educational Research (1999) NCTE, New Delhi.

Best J.W. (2010), Research in Education, Pearson Prentice Hall Private Limited, New Delhi.

Creswell J.W. (2011) Educational Research, PHI Learning Private Limited, New Delhi.

Curriculum Framework for Quality Teacher Education (1998) NCTE, New Delhi.

Koul Lokesh (1988) Methodology of Educational Research, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.

Some Specific Issues and Concerns of Teacher Education. Discussion Document,(2004), NCTE, New Delhi.

Teacher Education and Gender Awareness

Dr. Rajani Joshi Chaudhary
Associate Prof. Dept. of Education, S.L.B.S.R.S. Vidyapeetha

Teacher education is one of the important sector of our educational system. In this sector we plan about the education of a teacher and prepare them from every point of view. We develop their conative, contive and affective domains as well as their personalities along with their teaching competencies, communication skills and class room behaviour. It can be said that teacher education pay attention towards teachers in preparing them as per the changing demands of the society.

A teacher is very important for our society from the following points of view-

• As we know, in shaping the behaviour of a child, the role of teacher is very significant and next to their parents.

• Another important role of the teacher as an architect of our society or a social engineer. Teacher prepares child who is the future of our country and play a significant role in framing the social structure of our nation. Hence it can be said that if we want to improve our society, the education of teacher should be improved irrespective of their values, perception towards society, changing technology and changing concepts.

• Teacher is the ideal picture for many students who want to imitate many of the characteristics of their teacher.

• Every policy of Education is implemented by the teacher.

Our history reveals that there was no scope and future for the education of women in medieval period, which was again repeated by British period, hence the status of women education was very poor at the time of independence. (literacy rate was 7.93 in 1951. Only few women could get opportunity of going school for

education or getting education. That is why, in every policy of education women education was recommended. But after realizing the progress of India and comparing the growth rate of India with other countries or having the dream of becoming developed country, India also started to think about developing every citizen of the country.

As we know education holds the key of social transformation and national development, the effect of this was reflected in POA 1986 , SSS, EFA. In POA, women education was supported at every stage of education and recommended to start Women's Studies Centers in Universities. Today we have RTE where we do not say only about the education of women but we recommend the education of every boy and girl. This is the paradigm shift from women education to gender education.The reason behind this can be understood by the following table.

Table No (1) : Showing Literacy Rate

Year	Persons	Male	Female
2011	82.14	74.04	65.46
2001	75.3	64.8	53.7

It can be inferred on the basis of this table that the literacy rate is increasing which means females are going for education is increasing

Table No (2): Showing population in Millions

Year	Persons	Male	Famale	Sex Ratio
2001	1,028,737,436	532,223,090	496514346	933
2012	1,220,0	628.8	591.4	940

On the basis of this table No. (2) it can be said the population is increasing day by day which includes male and female both. Hence, the number of students is increasing. It is not only the boys but girls also, who are going for education.

Table (3) : Showing Population Growth Rate in Percentage.

2008	2009	2010	2011	2012
1.58	1·55	1.38	1.34	1.31

This table also says that as per growth rate of India population is increasing which needs education of boys as well as girls for becoming a developed country.

Today, in every planning of Govt, gender is given priority. Hence in every policy we are motivating the whole society for getting education irrespective of their Sex, Cast and Creed.

In last three decades, policies of education supported the education of girl child as well as boy child. Hence there is a need of training of the teacher which can develop understanding about the concept of gender education. Before going ahead we have to understand the concept of Gender.

Concept of Gender

Gender is a sociological concept as this is created by our society. Male and female are the God given sexes of human race but we discriminate them as Beta and Beti/ and treat them differently. The biased thinking towards both started at level of house. After this, this is again repeated in our schools and in our society. Actually this is not a mistake of a parent or a teacher. This is the mistake of stereo type thinking of our society carrying the traditional concepts of unaware and old parents. It does not start at the level of home or at the level of school, it starts from the womb of the mother when a couple decide not to carry the girl child in mother's womb and ultimately decide about the termination of this pregnancy when they came to know that they are going to have a female child. Hence it can be said that biasness starts from the womb of the mother to the society running through the tomb. Therefore, it can be said that this type of feeling or mental set only can be removed by introducing it as compulsory attention for everybody

Need of Gender Sensitization and Awareness Courses

Education can be the correct medium for attention of everybody. Gender awareness and gender sensitization programs should be introduced in education. Such programmes will be faciliated only by the teachers of the schools. Hence, first of all, modifications in our curriculum are needed with inclusion of gender sensitization and awareness programs. All the curriculum is transacted by the teacher, hence teacher his/herself should be aware of the con-

cept of gender and should develop sensitivity towards gender. Therefore the gender awareness courses should be started in those institutions where teachers are educated. If a teacher is sensitized, he/she will be biased free about gender and as result can develop a gender bias free society. Hence of all teacher should be biased free.

Teacher's role in Gender Sensitization.

As we know, teachers are the agent of social change. The foundation of attitude and values are laid from our school. If a teacher her/himself is not sensitized toward gender, there is no question of gender biased free society since the students are the representative of our society. If a teacher in a class will be free from gender biasness definitely the student will follow the same behaviour patterns. Directly or indirectly a good message will be carried to society. Therefore it can be said that teacher can play a significant role in sensitizing society about gender.

Skill of Gender biased free teaching.

Teaching is an important activity of teacher which needs a number of skills for efficiency such as questioning, demonstrating, explanation, lecturing, using black board, evaluation etc. but today we have to add new skill in teaching i.e. gender bias free teaching skill. There is need of defining new components of this skill so that the training teachers can be trained with new skills.

Gender Budgeting in Teacher Education

Gender budgeting came into being in the international context of economic globalization. Countries of the common wealth were the first to take steps towards the implementation. Regarding the definition of terms it reads: ***Gender budgeting is the application of gender mainstreaming in the budgetary process. This entails a gender-based assessment of budgets, incorporating a gender perspective at the all levels of the budgetary process and restructuring revenues and expenditures in order to promote gender equality.*** Hence in planning of education gender budgeting should always in consideration. So that maximum of the institutions can develop gender perspective plan and more of the girls can be motivated and mainstreamed.

Conclusions

From the view of development, we need changes in our policies of education, definitions, mental set, thinking and views. To change the society education is the best medium where teacher play an significant role. Hence, first of all we have to modify the curriculum of the teacher education.

Although number of efforts have been made by our policy makers such as establishment of women's studies centre (POA, 1986), Teacher play a critical role towards the achievement of the Education for All (EFA) goal on gender equity, in many developing countries there is a shortage of female teachers, particularly at secondary and tertiary levels and in the subjects of science and maths, capacity development and awareness-raising, are essential to empower women teachers to the both effective practitioners and gender advocates. UNESCO also works to support gender equity in education, in terms of acess and achievement through partnership with key organizations, research and production of guide-lines and policy briefs.

For the development of the country it becomes necessary to see towards the gender mainstreaming, gender equality, gender bias free teaching and gender budgeting.Through education we can change our society and if society has been changed, our country can be changed and we can inclcate again the values of our ancient India that

"Yatra Pujyantei Nari, Ramentey Tatra Deveta"

and we can develop our Indian heritage again. We can overcome the problem of deterioration of values about women from shakti to Abla and again we can respect of a woman as shakti of the nation.

"Ya Devi Sarvabhuteshu, Shaktirupenh Sanshsiita, Namastasaiy Namastastaiye Namastastaiye Namo Namah."

New Emerging Pedagogy i.e. E- Learning is a Key Contributing Factor

Mr. Jitender Kumar
Ghaziabad

Abstract

E-learning often involves both out-of-classroom and in-classroom educational experiences via technology applications and processes such as Web-based learning, computer-based learning, virtual education opportunities and digital collaboration. Content is delivered via the Internet, intranet/extranet, audio or video tape, satellite TV, and CD-ROM. It can be self-paced or instructor-led and includes media in the form of text, image, animation, streaming video and audio.

It is commonly thought that new technologies can make a big difference in education. Many proponents of e-learning believe that everyone must be equipped with basic knowledge of technology, as well as use it as a medium to reach a particular goal.

Introduction

In the early 1960s, Standford University psychology professors Patrick Suppes and Richard C. Atkinson experimented with using computers to teach math and reading to young children in elementary schools in East Palo Alto, California. Standford's Education Program for Gifted Youth is descended from those early experiments. In 1963, Bernard Luskin installed the first computer in a community college for instruction, working with Standford and others, developed computer assisted instruction. Luskin completed his landmark UCLA dissertation working with the Rand Corporation in analyzing obstacles to computer assisted instruction in 1970.

Early e-learning systems, based on Computer-Based Learn-

ing/Training often attempt to replicate autocratic teaching styles whereby the role of the e-learning system was assumed to be for transferring knowledge, as opposed to systems developed later based on Computer Supported Collaborative Learning (CSCL), which encouraged the shared development of knowledge.

As early as 1993, William D. Graziadei described an online computer-delivered lecture, tutorial and assesment project using electronic mail. By 1994, the First online high school had been founded.

In 1997 Graziadei, W.D., et al., published an article entitled "Building Asynchronours and Synchronous Teaching-Learning Environments: Exploring a Course/Classroom Management System Solution". They described a process at the State University of New York (SUNY) of evaluating products and developing an overall strategy for technology-based course development and management in teaching-learning.

E-learning, sometimes termed **Computer-based training (CBT), internet-based training (IBT), web-based training (WBT), or technology-enhanced learning (TEL)** includes all forms of electronically or technologically supported learning and teaching, including educational technology. The information and communication systems, whether networked learning or not, serve as specific media to implement the learning process.

The worldwide e-learning industry was estimated to be worth over $48 billion in 2000 according to conservative estimates. Developments in internet and multimedia technologies are the basic enabler of e-learning, with consulting, content, technologies, services and support being identified as the five key sectors of the e-learning industry.

Corporate

E-learning has now been adopted and used by various companies to inform & educate both their employees and customers. Companies with large and spread out distribution chains use it to educate their sales staff as to the latest product developments without the need of organizing physical courses. Compliance has also been a big field of growth with banks using it to keep their staff's CPD's

level up.

Approaches

E-learning services have evolved since computers were first used in education. There is a trend to move towards blended learning services, where computer-based activities are integrated with practical or classroom-based situations.

Bates and Poole (2003) and the OECD (2005) suggest that different types or forms of e-learning can be considered as a continuum, from no e-learning, i.e. no use of computers and/or the Internet for teaching and learning, through classroom aids, such as making classroom lecture Powerpoint slides available to students through a course web site or learning management system, to laptop programs, where students are required to bring laptops to class and use them as part of a face-to-face class, to hybrid learning, where classroom time is reduced but not eliminated, with more time devoted to online learning, through to fully online learning, which is a form of distance education. This classification is somewhat similar to that of the Sloan Commission reports on the status of e-learning, which refer to web enhance, web supplemented and web dependent to reflect increasing intensity of technology use. In the Bates and Poole continuum, 'blended learning' can cover classroom aids, laptops and hybrid learning, while 'distributed learning' can incorporate either hybrid or fully online learning.

It can be seen then that e-learning includes a wide range of applications and it is often by no means clear, even in peer reviewed research publications, which form of e-learning is being discussed. However, Bates and Poole argue that when instructors say they are using e-learning, this most often refers to the use of technology as classroom aids, although over time, there has been a gradual increase in fully online learning.

Two popular tools for E-learning are Blackboard Inc. and Moodle:

Blackboard Inc. has over 20 million users daily. Offering six different platforms: Blackboard Learn, Blackboard Collaborate, Blackboard Mobile, Blackboard Connect, Blackboard Transact, and Blackboard Analytics; Blackboard's tools allow educators to de-

cide whether their program will be blended or fully online, asynchronous or synchronous. Blackboard can be used for K-12 education, Highter Education, Business, and Government collaboration.

Moodle is an Open Source Course Management System. It is free to download and provides blended learning opportunities as well as platforms for distance learning courses. The Moodle website has many tutorials for creating a program or becoming a Moodle student. To achive the education goals we will be helped by the following modes of e-learning also:

Computer-based learning

Computer-based training

Computer-Supported Collaborative Learning (CSCL)

Blogs, wikis, and Google Docs are commonly used CSCL mediums within the teaching community. The ability to share information in an environment that is becoming easier for the lay person, has caused a major increase of use in the average classroom. One of the main reasons for its usage states that it is "a breeding ground for creative and engaging educational endeavors."

Locus of Control remains an important consideration is successful engagement of E-learning According to the work of Cassandra B. Whyte, the continuing attention to aspects to motivation and success in regard to E-learning should be kept in context and concert with other educational efforts. Information about motivational tendencies can help educators, psychologists, and technologists develop insights to help students perform better academically.

Communication technologies used in E-learning

Communication technologies are generally categorized as asynchronous or synchronous. *Asynchronous* activities use technologies such as blogs, wikis, and discussion boards. The idea here is that participants may engage in the exchange of idea or information without the dependency of other participants involvement at the same time. Electronic mail (Email) is also *Synchronous* activities involve the exchange of ideas and information with one or more participants during the same period of time. A fact to face discus-

sion is an example of synchronous communications. In an "E" learning environment, an example of synchronous comunications would be a skype conversation or a chat room where everyone is online and working collaboratively at the same time. *Sychronous* activities occur with all participants joining in at once, as with an online chat session or a virtual classroom or meeting.

Content

Content is a core component of E-learning and includes issues such as pedagogy and learning objective re-use.

Pedagogical elements

Pedagogical elements are defined as structures or units of educational material. They are the educational content that is to be delivered. These units are independent of format, meaning that although the unit may delivered in various ways, the pedogogical structures themselves are not the textbook, web page, Video conference, Podcast, lesson, assignment, multiple choice question, quiz, discussion group or a case study, all of which are possible methods of delivery.

Pedagogical approaches

It is possible to use various pedagogical approaches or perspectives for e-Learning which include:

- **Social-constructivist-** this pedagogy is particularly well afforded by the use of discussion forums, blogs, wiki and on-line collaborative activites. It is a collaborative approch that opens educational content creation to a wider group including the students themselves. The One Laptop Per Child Foundation attempted to use a constructivist approach in its project.
- **Cognitive perspective** focuses on the cognitive processes involved in learning as well as how the brain works.
- **Emotional perspective** focuses on the emotional aspectsof learning, like motivation, engagement, fun, etc.
- **Behavioural perspective** focuses on the skills and behavioural outcomes of the learning process. Role-playing and application to on-the-job settings.
- **Contextual perspective** focuses on the environmental

and social aspects which can stimulate learning. Interaction with other people, collaborative discovery and the importance of peer support as well as pressure.

• **Mode Neutral** Convergence or promotion of 'transmodal' learning where online and classroom learners can coexist within one learning environment thus encouraging interconnectivity and the harnessing of collective intelligence.

An excellent example of e-learning that relates to knowledge management and reusability is Navy E-Learning, which is available to Active Duty, Retired, or Disable Military members. This on-line tool provides certificate courses to enrich the user in various subjects related to military training and civilian skill sets. The e-learning system not only provides learning objectives, but also evaluates the progess of the student and credit can be earned toward higher learning institutions. The Internet allows for learning to be directed at one's current objectives. This reuse is an excellent example of knowledge retention and the cyclical process of knowledge transfer and use of data and records.

WHAT ARE SOME KEY ELEMENTS CONTRIBUTING TO THE DEVELOPMENT OF THIS NEW PEDAGOGY?

As professors and instructors become more familiar with digital technologies for teaching and learning, pedagogical challenges and strategies are emerging. The developments listed below have had an impact on how teaching is structured and how and where learning happens.

1. Hybrid Learning

Until recently, there was a clear dichotomy between classroom-based teaching, often supplemented by technologies, a learning management system, and digital resources, and fully online teaching, in which the entire course is provided online.

Now there is a much closer integration of classroom and online teaching under the generic term of hybrid learning, where classroom time is reduced but not eliminated, with the rest of the time being used for online learning.

2. Collaborative approaches to the construction of

knowledge/building communities of practice

From the early days of online learning, there has been an emphasis on enabling learners to construct knowledge through questioning, discussion, the analysis of resources from multiple sources, and instructor feedback. Social media have encouraged the development of communities of practice, where students share experiences, discuss theories and challenges, and learn from each other. The professor is no longer responsible for delivering all of the knowledge or even all of the sources for learning- but maintains a critical role as guide, facilitator, and assessor of the learning.

Most professors would not have experienced learning, much less teaching, in such collaborative environments, especially when facilitated through technology. It requires a re-consideration of roles, authority, and how learning is achieved and measured.

3. Use of multimedia and open education resources

Digital media, You Tube videos such as TED talks or the Khan Academy, and, increasingly, open educational resources (OERs) in the form of short lectures, animations, simulations, or virtual worlds enable professors and students to access and apply knowledge in a wide variety of ways. There are now many thousands of examples of stand-alone, open eduational resources that can be downloaded free for educational use. Examples include MIT' OpenCourseWare, Apple's iTunes University, and the UK Open University's Open Learn.

Even text books are changing to incorporate video and audio clips, animations and rich graphics and become more interactive, allowing both instructors and students to annotate, add or change material including interactive assessment questions and feedback. These electronic texts will of course be accessible via mobile phones, iPads or e-readers.

Using multimedia for education is not new, but, with the Internet, the selection and integration of appropriate sources- by both professors and students- raises questions of quality, appropriate and timely usage, multiple points of view, and packing of a wide range of resources within the framework of course-specific learning objectives and assessment practices. Balancing the use of mul-

timedia and open educational resources with professor-delivered content raises issues of course ownership and of measurable learning outcomes.

4. Increased learner control, choice, and independence

Students can now access content, free of charge, from multiple sources via the Internet. They can have tools, such as mobile phones and video cameras that can collect digital examples and data that can be edited, stored and used in student work. Thus strictly managing a set curriculum in terms of a limited content chosen by the instructor becomes less meaningful. The emphasis shifts to deciding what is important or relevant both within a subject domain, and to the needs of a particular learner.

5. Anywhere, anytime, any size learning

The development of 'any size' learning can be seen in the creation of smaller modules, such as those offered through the 'Learn on Demand' program at the Kentucky Community and Technical College System, that can also be used as stand-alone free open resources. These smaller modules fit the needs of many full-time students who are working part-time, as well as those needing greater flexibility or additional help with their learning. Instructors can incorporate open resources into their courses and students can use them for independent learning and research.

6. New forms of assessment

Digital learning can leave a permanent 'trace' in the form of student contributions to online discussion and e-portfolios of work through the collection, storing and assessment of a student's multimedia online actitvities. Peer assessment involves students in the review of each other's work, providing useful feedback that may be used in revision of documents and a better understanding of issues.

7. Self-directed and non-formal online learning

While there has always been a minority of learners fully capable of managing their own learning, and a long history of self-directed and non-formal learning in adult education, recent developments such as massive open online courses (MOOCS) provide

many more potential learners with support and encouragement for self-directed or non-formal learning. The availability of free open educational resources combined with social networking enables large numbers of learners to access knowledge without the ncecessity for meeting institutional prior admission requirements, following a set course, or having a personal instructor. Computerized marking and peer discussion and assessment provide learners with support and feedback on their learning.

THREE EMERGING PEDAGOGICAL TRENDS

Underlying these developments are some common factors or trends:

A move to opening up learning, making it more accessible and flexible. The classroom is no longer the unique centre of learning, based on information delivery through a lecture.

An increased sharing of power between the professor and the learner. This is manifest as a changing professorial role, towards more support and negotiation over content and methods, and a focus on developing and supporting learner autonomy. On the student side, this can mean an emphasis on learners supporting each other through new social media, peer assessment, discussion groups, even online study groups but with guidance, support and feedback from content experts.

An increased use of technology not only to deliver teaching, but also to support and assist students and to provide new forms of student assessment.

It is important to emphasize that these are emerging pedogogical trends. More experimentation, evaluation, and research are needed to identify those that will have lasting value and a permanent effect on the system. Our goal here is to start to conversation on these trends, and others experienced by those working in post-secondary education.

HOW THIS NEW PEDAGOGY IS TRANSFORMING TEACHING AND LEARNING

These new developments are not emerging as nearly as the above analysis suggests. Particular initiatives often combine a range of the methods listed above. Professors and teaching and

learning specialists in post-secondary institutions in Ontario have been re-thinking pedagogy and designing new resources, courses, and programs that illustrate new approaches to teaching and learning.

EDUCATIONAL IMPLICATIONS

There is a ground swell of change taking place in teaching methods. As the Ontario Online Learning Portal for Faculty & Instructors indicates, across the provine, innovativce applications of technology to teaching and learning are being developed, researched, and evaluated. We have presented some of the development and considered their pedagogical impacts and would now like to enter into a broader dialogue about new ways of teaching and learning. What are the implications of these changes?

We are interested in your thoughts, experiences, and responses to the questions below. We would like to work towards a shared understanding of the new pedagogy that incorporates the changes in teaching and learning Educational Implications triggered by online and technology-based learning.

Key Elements

Here, we have outlined, and provided examples of a few of the aspects of online learning that are having an impact on pedagogy.

What additional elements of online learning are having an impact on how you teach or prepare and evaluate resources for teaching and learning?

Three broad emerging trends, concerning accessibility; changing roles of professors and students; and technology for delivery, support, and assessment, are presented above.

Do you agree with our choice of these trends and what others would you highlight?

Impact on teaching and Course Design

A new pedagogy is intrinsically linked to teaching practice and strategies for course design and delivery.

What new factors do you take into account in your teaching and course design and what elements of classroom practice do

you maintain?

What have you learned about student's needs, preferences, concerns, and success rates with online/hybrid learning?

What specific strengths and limitations for online delivery are linked to the subject matter which you teach or for which you prepare resources?

Impact on Student Learning

Student learning is the other key component of an emerging pedagogy, with their success as the goal of all our efforts.

What new demands are udentmaking in terms of how they want to be taught and assessed and what are your responses?

What new roles are students taking in their online or hybrid learning and how has this changed your teaching practice?

What new strategies for and areas of student support are being built into course structures to facilitate effective online learning?

Technological Choice

Matching pedagogy, learning objects, subject matter, and student access and success to appropriate technologies, software, and online strategies is the ongoing challenge of online learning.

Which technologies are you using and what strengths and challenges do they present for online and hybrid course design delivery, assessment, student interaction, and student support?

Conclusion

What other questions should we be asking to develop a better understanding of the new pedagogy?

Technology allows us to teach differently, to meet new as well as old needs. It is helping drive innovation in teaching and learning.But in the end, decisions need to be made about how best to use technology, and for what purposes. We hope what we have discussed here will begin a discussion leading to a better understanding of the new pedagogy i.e. E-learning.

References

1. Allen, I. E. and Seaman, J. (2008) Staying the Course: Online Education in

the United States, 2880 Needham MA: Sloan Consortium

2. Allen, IE. and Seaman,J. (2003) Sizing the Opportunity: The Quality and Extent of Online Education in the United States, 2002 and 2003 Wellesley, MA: The Sloan Consortium
3. Ambient Insight Research (2009) US Self-paced e-Learning Market Moroe WA: Ambient Insight Research
4. Mason. R. and Kaye, A. (1989) Mindweave : Communication, Computers and Distance Education Oxford, UK: Pergamon Press
5. **Bates,** A.(2005)Technology, e-Learning and Distance Education London: Routledge
6. Curriculum and Pedagogy in Technology Assisted Learning
7. "open-source community-based tools for learning". Moodle. org. http://www.moodle.org. Retrieved 2012-10-24.
8. Wiki. Laptop.org
9. Bates, T. (2012) What's Right and What's Wrong with Coursera-style MOOCs, Online Learning and Distance Education Resources, August 5.
10. Daniel, J. (2012) Making sense of MOOCs: Musings in a maze of myth, paradox and possibility Seoul: Korean National Open University.
11. Sharples, M. et al. (2012) Innovating Pedagogy 2012 Milton Keynes UK: The Open University
12. www.ignou.ac.in

Emerging Trends and Problems of Training

Prashant Kumar Nanda
Research Scholar, S.L.B.S.R.S. Vidyapeetha

In the ancient days there was no systematic training for teachers. But the teacher was highly respected member of the society. During middle ages it was provided in maktabs and madrassas.

The need for systematic education of teachers was built during the British period. The Indian education comission of 1881 - 82 favoured the training of teachers. From that time onwards several institutions were established for the training of the teachers. The Kothari commission suggested for the establishment of comprehensive college of education. This was an attempt to eradicate the alienation of education. In the comprehensive college of education all types of teacher training will be organized under one roof.

EMERGING TRENDS

1- Normal School-In these institutions teachers are trained for imparting education to primary classes, and their training comprehends both basic training and general training

2- Secondary Training Schools: In these schools, teachers are trained for giving education to students of middle schools.

3- Training Colleges: Teachers in these institutions are trained to teach high school students.

4- M.Ed.: In these institutions, the emphasis is upon imparting training for research in the curricula of education after the candidate has obtained his B.Ed., degree.

5- Spec ialised Training-In these institutions, teachers are trained for imparting education in home science art, industry, physical education at the pre primary level or in other specialized subjects. Example central institute of English and Foreign Language.

6- Arranging Programmes for the qualitative and quantitative improvement of teacher education.

7- Producing books and other instructional materials for the training school and colleges.

8- Providing advice to institutions.

PROBLEMS

1. IMBALANCE BETWEEN THEORY AND PRACTICE

In training schools, and colleges of education too much stress is laid on the theory of teaching rather than practice of teaching.

2. LACK OF SUITABLE CURRICULUM

The curriculum of training is defective. The student is compelled to study the subject which bears no relationship whatsoever to actual teaching.

3. NEGLECT OF HUMAN VALUES

During training, human values are completely neglected. In the opinion of K.G. Saiden, the candidates are unable to visualize the fact that education is a specific, social and cultural process. Because of lack of foresight and undue emphasis upon mirror details or technical necessities, the close relationship of the school with the society, the living problem of schools and other important issues all lost sight of.

4. ABSENCE OF A FREE ATMOSHPHERE

In training schools, the atmosphere of freedom is noticeably lacking.

5. PROBLEM OF SELECTION FOR TRAINING

At present, training colleges are facing the problem of granting admissions, and undoubtedly the choice of able and suitable individuals for training as teachers is a major problem.

6. IN SERVICE TRAINING

In service training includes activates as refresher courses, short-term intensive curricula, practical knowledge of workshops, seminars, professional conferences, etc. However, even these suffer from numerous problems.

7. TRADITIONAL INFLUENCES

Even today, the curricula is bookish and traditional and lesson are un psychological, teachings aids are not used effectively and intelligently, considerable indifference and neglect are often displayed. In addition, the opportunities for fruitful discussions are few. S.N.Mukherjee has pointed out that in order to raise the standard of teacher training, attention should be paid to a proper management and organization of the teacher's education programme.

SUGGESTIONS

These are some suggestions for overcoming the shortcomings and problems of teacher education :-

1. Each state should with the assistance of its training colleges and department of education, carry out a survey at least once in every five years to ascertain the need of male and female teachers in all the schools of the state. Admissions to teachers training establishments should be based exclusively upon this estimate.

2. Short-term curricula should be prepared for the old and experienced teachers, who, for one reason or the other, could not take admission to trainings colleges. On receiving systematic training these teachers will add to their efficiency win promotions to higher ranks and feel more secure in their jobs.

3. Teacher's training institutions should admit those individuals, who really possess the potential for becoming able and successful teachers.

4. The stereotyped methods used for the selection of new candidates should be replaced by more effective, adequate and scientific techniques of selection. These techniques should be capable of accurate evaluation of aspiring candidate's moral and mental qualities.

5. In order to bridge the gulf between training institutions and schools, there should be extension service departments at the pre-primary and secondary levels in each training establishment.